☐ प्रकाशक—श्री जवाहर विद्यापीठ
भीनासर (बीकानेर) राजस्थान

☐ संस्करण—प्रथम, १००० (सन् १९५१)
द्वितीय, १००० (सन् १९६८)
तृतीय, ११०० (सन् १९८०)
चतुर्थ, ११०० (सन् १९८९)

☐ मूल्य—१४) रुपया मात्र

☐ मुद्रक—
जैन आर्ट प्रेस
समता भवन, बीकानेर-राज.
पिन—३३४००१

प्रकाशकीय

कथा-कहानियो का लोक में सदैव महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विश्व मे किसी भी समय के साहित्य को देखें तो उसका बहुत बड़ा अश कथा-कहानियो एव उदाहरणो से समलकृत मिलेगा, जिसने ऐतिहासिक तथ्यो को प्रस्तुत करने के साथ-साथ मानव को विकास हेतु प्रेरणा दी है। शिक्षण के क्षेत्र मे भी इनकी उपयोगिता सर्वोपरि है। छोटे-छोटे बच्चे कहानी पढ या सुनकर उससे मिलने वाली शिक्षा को शीघ्रातिशीघ्र हृदयगम कर लेते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक मे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा द्वारा अपने प्रवचनो मे प्रसगोपात्त उल्लिेखित कथाओ, रूपको या उदाहरणो का सकलन किया गया है। पूज्य आचार्य श्री जी अपने प्रवचनो के वीच विविध उदाहरणो और उक्तियो का उपयोग करके प्रतिपाद्य विषय को सजीव और प्रभावपूर्ण बनाने की कला में पारगत थे और उनका उपसहार ऐसी अनूठी शैली मे करते थे कि श्रोताओ के हृदय पर उसका सीधा प्रभाव पढे बिना नही रहता था।

प्रस्तुत पुस्तक 'उदाहरणमाला' (तृतीय भाग) में सकलित उदाहरणो का जवाहर साहित्य मे अपना अनूठा स्थान है। पूज्य आचार्य श्री जी के विद्वतापूर्ण विचारो को पूर्ण-रूपेण आत्मसात करने मे असमर्थ पाठको के लिए यह सग्रह

वहुत ही उपयोगी है। वालको को भी नीति की शिक्षा देने मे यह अत्यत सक्षम होगा।

'उदाहरणमाला' के तृतीय भाग के प्रथम तथा द्वितीय सस्करण श्री जवाहर साहित्य समिति की ओर से श्रीमान् सेठ इन्द्रचन्द जी सा गेलडा द्वारा अपनी पुण्यश्लोका मातेश्वरी श्रीमती गणेशबाई की पुण्यस्मृति मे साहित्य प्रकाशन हेतु दिए गए ६०१०)०० से प्रकाशित हुए थे तथा इसके तृतीय सस्करण का प्रकाशन धर्मनिष्ठ सुश्राविका वहिन श्रीमती राजकु वर वाई मालू, बीकानेर द्वारा श्री जवाहर साहित्य समिति भीनासर को सत्साहित्य प्रकाशन के लिए प्रदत्त धनराशि से हुआ था। सत्साहित्य के प्रचार प्रसार के लिए वहिन श्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

अब यह उदाहरणमाला (तृतीय भाग) कुछ समय से अप्राप्य थी तथा पाठको की वरावर माग होने से श्री जवाहर विद्यापीठ द्वारा अपने कोप से इसका चतुर्थ सस्करण छपवाने का तय किया गया लेकिन आजकल कागज एव मुद्रण आदि का व्यय काफी वढ जाने के कारण इस चतुर्थ सस्करण की कीमत वढाने के लिए हमे वाध्य होना पडा है।

प्रकाशन कार्य मे श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ और उसके द्वारा सचालित जैन आर्ट प्रेस का श्री जवाहर विद्यापीठ को पूर्ण सहयोग रहा है एतदर्थ श्री जवाहर विद्यापीठ उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती है।

सुमतिलाल बांठिया
मत्री, श्री जवाहर विद्यापीठ
भीनासर (बीकानेर) राज

अनुक्रमणिका



अध्यवसाय

एक नगर में दो मित्र रहते थे । उसी नगर में कुछ महात्मा भी आये थे और वेश्या भी आयी थी । एक ही समय पर एक जगह तो महात्मा का उपदेश होने वाला था और दूसरी जगह वेश्या का नाच । एक मित्र ने दूसरे मित्र से कहा कि चलो उस नयी आई हुई वेश्या का नाच देखने चले । दूसरे मित्र ने कहा—नही मै नाच देखने नहीं चलू गा, मै महात्मा का उपदेश सुनने जाऊगा । दोनो मित्र अपनी-अपनी रुचि के अनुसार दोनो स्थानो पर गये ।

वेश्या का नाच हो रहा था । वेश्या चारो ओर घूम-घूम कर कटाक्षपूर्वक सब की ओर देखती हुई नाच रही थी । लोग वेश्या की प्रशसा के पुल बाध रहे थे । उसी समय वह मित्र उस नाच की महफिल मे पहुचा । वेश्या को इस प्रकार नाचते और लोगो को उसकी प्रशसा करते देखकर उस मित्र को विचार हुआ कि आत्मा तो इस वेश्या का भी शुद्ध है, परन्तु न मालुम किन पापो के कारण इसके आत्मा पर अज्ञान का आवरण है । इसी से यह अपने इस सुन्दर शरीर को विषय-भोग मे लगा रही है और थोड़े से धन के लोभ मे अपना शरीर कोढी को सौपने मे भी सकोच नही करती है । हाय ! हाय !! यह तो साक्षात् ही नरक की खान है । ये देखने वाले भी कैसे मूर्ख हैं, जो इसके चारो ओर इस प्रकार लगे हुए है, जैसे मरे हुए पशु को कुत्ते घेर लेते

है । यद्यपि यह वेश्या किसी व्यक्ति विशेष को नही देखती है—सबको उल्लू बनाने के लिये उनकी तरफ देखती है—फिर भी ये सब लोग अपने–अपने मन मे यही समझ रहे है कि यह मुझे ही देख रही है । मैं इस पापस्थान मे कहाँ आ गया ! मित्र ने कहा था, फिर भी मैं महात्मा का उपदेश सुनने के लिये नही गया । धन्य है मित्र को, जो इस समय महात्माओ के पास बैठा हुआ धर्मोपदेश श्रवण कर रहा होगा और अपना कल्याण साधता होगा ।

वेश्या की महफिल मे गया हुआ मित्र तो इस प्रकार विचार कर रहा है तथा महात्माओ का उपदेश सुनने के लिए गये हुए मित्र को धन्य मान रहा है, परन्तु जो मित्र महात्मा के समीप गया था, वह कुछ और ही विचारता है । जिस समय वह महात्माओ के समीप पहुचा, उस समय महात्मा लोग विषयो के प्रति घृणोत्पादक वैराग्य का उपदेश सुना रहे थे । इस मित्र को महात्माओ का उपदेश रुचिकर नही हुआ, इससे वह अपने मन मे कहने लगा कि मै कहाँ आ गया ! मित्र ने कहा था, फिर भी मैं नाच देखने नही गया । धन्य है मित्र को, जो इस समय महफिल में बैठा हुआ आनन्द नाच देख रहा होगा और गाना सुन रहा होगा ।

दोनो मित्र इस प्रकार अपने-अपने मन मे विचार कर रहे है और अपनी निन्दा करते हुए दूसरे मित्र की प्रशसा कर रहे है । वेश्या के यहा गया हुआ मित्र, वेश्या के नाच को घृणापूर्वक देखता है, उसका मन साधुओ के उपदेश मे लगा हुआ है, और साधुओ के यहा गये हुये मित्र का मन वेश्या के नाच मे लगा हुआ है तथा वह नाच देखने

के लिये गये हुए मित्र की प्रशसा कर रहा है। इस तरह वेश्या के नाच—जो पापस्थान है, मे वैठा हुआ मित्र तो पुण्य-प्रकृति बाध रहा है और साधु के स्थान—जो धर्मस्थान है, में बैठा हुआ मित्र पाप-प्रकृति बाध रहा है। क्योकि पाप, पुण्य या धर्म अध्यवसाय पर निर्भर है और वेश्या के नाच मे बैठे हुए मित्र के अध्यवसाय अच्छे तथा साधुओ के उपदेश स्थान मे बैठे हुए मित्र के अध्यवसाय बुरे है।

२ : सज्जन स्वभाव

एक ब्राह्मण गगा के किनारे खडा हुआ था। किनारे के वृक्ष पर एक बिच्छू चढा था। वह गगा के जल मे गिर पडा और तडफडाने लगा। यह देखकर ब्राह्मण को दया आ गई। उसने एक पत्ता लेकर बिच्छू को उठाया। लेकिन बिच्छू हाथ पर चढ गया और उसने हाथ मे डक मार दिया। डक लगते ही ब्राह्मण का हाथ हिल गया और बिच्छू फिर पानी मे गिर पडा। ब्राह्मण ने बिच्छू को फिर उठाया लेकिन फिर भी ऐसा ही हुआ। ब्राह्मण ने तीन-चार बार बिच्छू को उठाया लेकिन हर वार बिच्छू ने उसे काटा। यह हाल देखकर वहा खडे, कुछ लोग कहने लगे यह ब्राह्मण कितना मूर्ख है! बिच्छू इसे बार-बार काटता है और यह उसे बार-बार उठाता है! उसे मरने क्यो नही देता?

इन लोगो के कथन के उत्तर में ब्राह्मण ने कहा—विच्छू अपना स्वभाव प्रकट कर रहा है और मैं अपना स्वभाव दिखला रहा हू । जब विच्छू अपना स्वभाव नही त्यागता तो मैं अपना स्वभाव कैसे त्याग दू ?

३ : हृदयबल

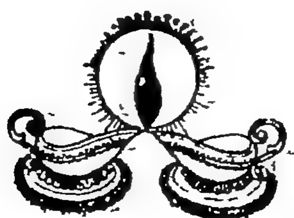
सुना है, एक अमेरिकन पुरुष भारत मे आया । एक भारतीय से उसकी मित्रता हो गई । अमेरिकन अपना कार्य समाप्त करके अमेरिका लौट गया । उसका वह भारतीय मित्र जब अमेरिका गया, तब उसने अपने अमेरिकन मित्र से मिलने का विचार किया । वह उसके घर पहुचा । साहव उस समय घर नही था । उसकी पत्नी ने भारतीय अतिथि का सत्कार करके उसे बिठलाया । भारतीय ने पूछा—साहव कहा गये हैं ? मेम साहिबा ने कहा—आप बैठिये, अब उनके लौटने मे कुछ ही समय बाकी है । आते ही होगे ।

भारतीय सज्जन बैठे रहे । थोडी देर बाद ही उन्होंने देखा कि साहव आ रहे है मगर उनके दोनों कन्धो पर दो कुदाल रखे हैं और वे मिट्टी से लथपथ हैं । भारतीय सज्जन मन ही मन सोचने लगे—भारत मे यह इतने ऊंचे पद पर कार्य करता था और बड़े ठाट से रहता था । यहा इसका यह कैसा हाल है ? क्या इसका दिवाला निकल गया है ?

इस प्रकार सोचते हुए वह भारतीय उससे मिलने के लिए आगे वढे । उन्होने साहव का अभिवादन किया । मगर साहब उससे कुछ भी न वोले । जब साहब की लड़की ने उन्हे पानी दिया और साहव स्नान करके अपनी बैठक में आये, तब वह अपने मित्र से मिले ।

भारतीय मित्र ने साहव से पूछा—आप भारत मे तो वडे पद पर थे । अब यहा इस प्रकार क्यो रहना पडता है ? साहव बोले—हम लोग भारतीयो सरीखे नही है । भारतीय तनिक आगे वढे कि वास्तविकता को और अपने असली धधे को भूल जाते हैं । हम लोग नही भूलते । खेती करना हमारे बाप-दादो का धंधा है । मैं जब तक भारत मे था, दूसरा काम करता था । लेकिन जब यहा आया हू तो अपने पैत्रिक धधे मे लगा हू ।

इस प्रकार की विचारधारा हृदयवल से ही उत्पन्न होती है । भारतीय लोग हृदयबल को जल्दी भूल जाते है । इस कारण जहा कोई बी ए एल एल बी होता है कि दो-चार आदमियो के लिए भी भारभूत हो जाता है । कारण यही है कि उसका हृदयबल दव जाता है और मस्तिष्क का वल उमड आता है ।



४ : शिक्षा

एक राजा था । उसके एक लडका था, जो गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करता था । इधर राजा को अपने शरीर पर कुछ ऐसे चिह्न दिखाई दिये जो वृद्धावस्था के द्योतक थे । उन चिन्हो को देखकर राजा ने विचारा कि बुढापे का नोटिस आ गया है, इसलिये मुझे कोई ऐसा काम करना चाहिये, जो भावी सन्तान के लिए आदर्श-रूप भी हो और जिसके करने से मेरे आत्मा का भी हित हो । इसलिये मुझे राजपाट राज-पुत्र को सौंप कर दीक्षा ले लेनी उचित है ।

इस प्रकार निश्चय कर, राजा ने प्रधान को बुलाकर अपने विचार प्रकट करते हुये राजकुमार के राज्याभिषेक की तैयारी करने का हुक्म दिया । सारे नगर मे यह समाचार फैल गया कि राजा अपने राजपाट का भार पुत्र को सौप कर आप दीक्षा ले रहा है । होते-होते यह खबर उस गुरुकुल मे भी पहुची, जिसमे कि कुमार पढ रहा था । कुमार को पढाने वाले शिक्षक ने विचार किया कि राजकुमार कल राजा बनेगा, लेकिन अभी इसे वह शिक्षा तो देनी रह ही गई है, जिस शिक्षा से जनता का हित होने वाला है । आज तो मैं इसका गुरु हू और यह मेरा विद्यार्थी है । आज मैं इसे जैसी और जिस तरह चाहू शिक्षा दे सकता हू, परतु कल जब कि यह राजा हो जाएगा, इसे कुछ न तो कह ही सकू गा, न यह मानेगा ही । इसे जो शिक्षा देनी है, वह कई

दिन मे दी जाने की है और यह मेरे पास केवल ग्राज भर है। कल तो चला ही जाएगा। ग्रब बहुत दिन मे दी जाने वाली शिक्षा इसे ग्राज ही कैसे दे दू ?

शिक्षक इस चिन्ता में पड़ गया। सोचते-सोचते उसने वह उपाय सोच लिया, जिससे कुमार को वह ग्राज ही मे शेष शिक्षा दे सके। उसने कुमार को एकान्त में वुलाकर उसके हाथ-पैर बाध दिये ग्रौर एक वेत से खूव पीटा। राजकुमार एक तो सुकुमार था, दूसरे उसने मार के नाम पर कभी एक थप्पड भी नही खाया था, इसलिये उसे शिक्षक का उक्त व्यवहार वहुत दु खदायी हुग्रा। उसके शरीर की चमडी निकल ग्राई। वह ग्रपने मन में दु ख करने के साथ ही शिक्षक के विषय मे वहुत से वुरे सकल्प कर रहा था। यद्यपि इस मार से राजकुमार को वहुत पीडा हुई, परन्तु शिक्षक ने उसे इतने में ही नही छोडा, ग्रपितु एक ग्रन्धेरी कोठरी मे वन्द कर दिया। निश्चित समय तक राजकुमार को एक कोठरी में वन्द रखकर शिक्षक ने उसे कोठरी से निकाला और ग्रपने शिष्यो के साथ उसे उसके घर भेजकर राजा से कहलावा दिया कि तुम्हारा पुत्र सव शिक्षा प्राप्त कर चुका है, ग्रत शिक्षक ने इसे ग्रापके पास लौटा दिया है।

राजकुमार ग्रपने पिता के पास पहुचा। अपने शरीर को बताते हुए उसने राजा से शिक्षक के निर्दयतापूर्ण व्यवहार की शिकायत की। पुत्र के शरीर पर मार के चिन्ह देख ग्रौर उसकी शिकायते सुनकर राजा को शिक्षक के ऊपर वहुत ही क्रोध हुग्रा। उसनें उसी क्रोधावेश में यह ग्राज्ञा दी कि शिक्षक को पकड़ कर फासी लगा दी जावे।

राजा की आज्ञा पाकर राज-सेवक शिक्षक को पकड़ लाये । शिक्षक अपने मन मे समझ गया कि यह सजा राजकुमार को शिक्षा देने की ही है । उसने राजकर्मचारियो से पूछा कि मैं क्यो पकड़ा जाता हू ? उन्होने उत्तर दिया कि यह हम नही जानते, परन्तु राजा की आज्ञा तुम्हे फासी देने की है । अत तुम फासी पर चढने को तैयार हो जाओ ।

फासी के समय नियमानुसार शिक्षक से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी गई । शिक्षक न कहा कि मेरी इच्छा केवल यही है कि मैं राजा से मिलकर एक वात पूछ लू । अधिकारियो ने शिक्षक की इस इच्छा की सूचना राजा को दी । राजा ने पहिले तो यह कह कर कि ऐसे आदमी का मुह नही देखना चाहता, शिक्षक से मिलना अस्वीकार कर दिया, परतु अधिकारियो के समझाने-बुझाने पर उसने शिक्षक से मिलना और उसकी वात का उत्तर देना स्वीकार कर लिया ।

शिक्षक को राजा के सामने लाया गया । राजा को शिक्षक का प्रसन्न चेहरा देखकर आश्चर्य हुआ । शिक्षक के चेहरे मे यह ज्ञात होता था कि जैसे इसे मरने का दु ख नही, किन्तु सुख है । राजा ने शिक्षक से कहा कि तुम क्या कहना चाहते हो ? कहो ! शिक्षक ने कहा कि मैं आपके पास प्राण-भिक्षा के लिये नही आया हूं । मुझे फासी लगने का किंचित् भी भय नही है । मैं केवल आपसे यह जानना चाहता हू कि आपने मुझे किस अपराध पर फासी का हुक्म दिया है ? सब को मेरा अपराध मालूम हो-जाना अच्छा है, नही तो मुझ पर यह कलक रह-जायेगा कि शिक्षक ने न मालूम कौनसा गुप्त अपराध किया था, जिससे उसे फासी दे दी गई ।

शिक्षक की इस बात ने तो राजा का आश्चर्य और भी वढा दिया । वह विचारने लगा, कि यह भी कैसा विचित्र आदमी है, जो मरने से भय नही करता है ? उसने शिक्षक की वात के उत्तर मे कहा कि क्या तुमको अपने अपराध का पता नही है ? तुमने कुमार को वड़ी निर्दयतापूर्वक पीटा और कोठरी मे बन्द कर दिया, फिर अपराध पूछते हो !

राजा के उत्तर के प्रत्युत्तर मे शिक्षक ने कहा कि मैंने तो कुमार को नही मारा ! शिक्षक की यह बात सुनकर राजा का आश्चर्य क्रोध मे परिणत हो गया । वह, शिक्षक तथा वहा पर उपस्थित लोगो को कुमार का शरीर दिखा कर कहने लगा कि मैं शिक्षक की अव तक की वात से तो प्रसन्न हुआ था, परन्तु अव यह मरने के भय से झूठ बोलता है देखो, इसके शरीर पर अब तक मार के चिह्न मौजूद है, फिर भी यह कहता है कि नही मारा ।

राजा ने कुमार के मु ह से घटना की समस्त बातें कहलवाई । सब लोग शिक्षक की निन्दा करते हुए कहने लगे कि वास्तव के इसने फासी का ही काम किया है । शिक्षक ने कहा कि मैंने इसे मारा जरा भी नही है, जिसे आप मार कहते हैं, वह तो मैंने शिक्षा दी है । यदि शिक्षा देने के पुरस्कार में ही आप मुझे फासी दिलवाते है तो यह आपकी इच्छा । मुझे आपसे इतनी बात कहनी थी, अब आप मुझे फासी लगवा दीजिये ।

शिक्षक की वात ने तो सभी को आश्चर्य मे डाल दिया । राजा ने शिक्षक से कहा कि तुम्हारी इस बात का

अर्थ समझ मे नही आया कि तुमने इसको इतना कष्ट दिया और फिर कहते हो कि मैने मारा नही, किन्तु शिक्षा दी है ? बतलाओ, तुम्हारे इस कथन का रहस्य क्या है ? शिक्षक कहने लगा कि मुझे मालूम हुआ कि राजकुमार कल राजा होगा । मैंने विचारा कि कुमार अब तक सुख मे ही रहा है, दु ख का इमे किंचित् भी अनुभव नही है । इससे यह राज्याधिकार में मत्त होकर बिना विचार किये ही प्रजा मे से किसी को कैद करन की आज्ञा देगा । यह इस बात का विचार नही करेगा कि मारने, बाधने और कैद करने से इसे कैसा दु ख होगा । इस प्रकार विचार कर मैंने निश्चय किया कि कुमार को इसका अनुभव करा दिया जाए, जिससे यह आज्ञा देते समय अपने अनुभव पर से दूसरे के कष्ट को जान सके और विचार कर आज्ञा दे । यद्यपि यह मैं पहिले ही जानता था कि कुमार को मैं जो शिक्षा दे रहा हू, इसके बदले मे सम्भव है कि मुझे फासी की सजा भी मिले । लेकिन इसके लिए मैंने यही निश्चय किया कि मेरी फासी से अनेको आदमी कष्ट से बचेंगे, इसलिए मुझे फासी का भय नही करना चाहिये और कुमार को शिक्षा दे देनी चाहिये । यही विचार कर मैंने कुमार को शिक्षा दी है, कुमार को मारा नही है ।

शिक्षक की बात सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ । वह शिक्षक की प्रशसा करने लगा कि तुमने वह काम किया है, जिसके विषय मे मुझे अब तक चिन्ता थी । तुमने मुझे चिन्तामुक्त कर दिया । यद्यपि तुम्हारे इस कार्य से प्रसन्न होकर मेरे लिए उचित था कि मैं तुम्हे पुरस्कार देता, परन्तु मै इस रहस्य को अब तक न जान सका था, इसलिए मैंने तुम्हे

फांसी देने की आज्ञा दे दी । अब मैं तुम्हे फांसी देने की अपनी आज्ञा को वापिस लेता हू और इस गाव की जागीर देकर तुम्हारे सिर पर यह भार देता हू कि जिस तरह इस वार तुमने अपने प्राणो की परवाह न करके कुमार को शिक्षा दी है, इसी प्रकार सदा शिक्षा देते रहना । राजा की वात के उत्तर मे शिक्षक ने कहा कि आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु मैं जागीर नही ले सकता । यदि जागीर लू गा तो फिर आपकी आज्ञा का पालन नही कर सकू गा क्योकि तव मैं शिक्षक न रहूगा किन्तु गुलाम होऊगा । मुझे अपनी जागीर छिन जाने का सदा भय वना रहेगा, जिससे मैं सच्ची वात न कहकर ठकुर-सुहाती वात कहूगा ।

५ : प्यासा

एक आदमी गगा के किनारे खडा रो रहा था । वह इतने जोर से रो रहा था कि राहगीरो को भी उस पर दया आ जाती थी । किसी राहगीर ने उससे पूछा—भाई, रोते क्यो हो ? तुम्हे क्या कष्ट है ?

वह आदमी रोते-रोते बोला—मुझे जोर की प्यास लग रही है ।

राहगीर—तो रोने से मतलव ? सामने गगा वह

रही है। निर्मल जल है। शीतल है, मधुर है। पी ले। प्यास बुझा ले।

रोने वाले ने कहा—हाय! गगा-जल पीऊ कैसे? गंगा की धारा इतनी चौडी है और मेरा मुह जरा-सा है। यह धारा मुह में समाएगी कैसे?

राहगीर का करुण-रस हास्य-रस मे परिवर्तित हो गया। उसने हसते हुए कहा—मूर्खराज, तुझे अपनी प्यास मिटाने में मतलब है या गगा की धारा मुह मे भरने से? अगर तू इसी विचार मे डूबा रहेगा तो प्यास का मारा प्राण खो बैठेगा। न गगा की धारा इतनी छोटी होगी कि तेरे मुंह में समा जाय, न तेरा मुह इतना बड़ा होगा कि वह उसे अपने भीतर घुसेड सके।

तात्पर्य यह है कि आजकल अनेक लोग तो हिंसा की व्यापकता को देखकर उससे जरा भी निवृत्त होने की चेष्टा नही करते और कुछ लोग सूक्ष्म हिंसा को अपनी जवाबदेही समझते है। ऐसे लोग न स्थूल हिंसा से बच पाते है, न सूक्ष्म हिंसा से ही। वे न इधर के रहते है, न उधर के रहते है।



६ : कुम्भकलश

एक मनुष्य ने एक सिद्ध की सेवा करके उसे प्रसन्न किया। सिद्ध ने प्रसन्न होकर उस मनुष्य से कहा कि मेरे पास कुम्भ-कलश है और कुम्भकलश बनाने की विधि भी मैं जानता हूं। कुम्भकलश में यह गुण है कि किसी भी वस्तु की इच्छा करने पर वह वस्तु उस कुम्भकलश से उसी समय प्राप्त हो जाएगी और कुम्भकलश बनाने की विधि जानने पर जब चाहो तभी कुम्भकलश बन सकता है। यदि तुम चाहो तो मुझ से कुम्भकलश ले सकते हो और यदि चाहो तो कुम्भकलश निर्माण की विधि सीख सकते हो।

सिद्ध की बात सुनकर सिद्ध के सेवक ने विचार किया कि प्रत्यक्ष लाभ को छोडकर अप्रत्यक्ष लाभ के पीछे दौडना मूर्खता है कुम्भकलश से तो मैं अभी ही लाभ उठा सकता हूं परन्तु कुम्भकलश बनाने की विधि सीखने पर अभी लाभ नही उठा सकता। इसके सिवाय क्या ठीक है कि उस विधि से कुम्भकलश बन ही जाएगे। इसलिये यही उत्तम है कि मैं सिद्ध के पास वाला कुम्भकलश ले लू।

इस प्रकार विचार कर उसने सिद्ध से कुम्भकलश ले लिया और प्रसन्न मन घर को आया। घर आकर उसने अपने सब कुटुम्बियो से कह दिया कि अब अपने को न तो कोई काम करने की ही आवश्यकता है, न चिन्ता करने की हो।

इस कुम्भकलश से जो वस्तु चाहेगे, यह वही वस्तु देगा। इसलिए अब कोई काम मत करो और जो कुछ चाहिए, वह कुम्भकलश से मागकर आनन्द उडाओ।

कुटुम्ब के सभी लोग, कुम्भकलश के आश्रित हो गये। उन्होने खेती-बाडी, पीसना-कूटना, वाणिज्य–व्यापार आदि सब कुछ छोड दिया। सभी लोग अकर्मण्य वन कर उस कुम्भकलश से माग–माग कर खाने लगे और इस प्रकार से जीवन को आनन्द का जीवन मानने लगे। कुम्भकलश से वे जो कुछ चाहते, कुम्भकलश उन्हे वही वस्तु देता।

एक दिन सब ने उस कुम्भकलश से अच्छी से अच्छी मदिरा मागी। कुम्भकलश से मिली हुई मदिरा को सब लोगो ने खूब पिया और उसके नशे मे मस्त वन गये। फिर उस कुम्भकलश को एक आदमी के सिर पर रखकर सब लोग नाचने लगे। शराव से मस्त होने के कारण उस समय उन लोगो को त्रैलोक्य की भी परवाह नही थी तो कुम्भकलश की परवाह वे क्यो करने लगे। कुम्भकलश को सिर पर रख कर उपेक्षापूर्वक नाचने और आपस मे धौल–धप्पे करने से कुम्भकलश सिर पर से गिरकर फूट गया। कुम्भकलश के फूटते ही उन लोगो को नशा भी उतर गया। जिस कुम्भकलश की कृपा से अब तक कार्य चल रहा था, वह तो नष्ट हो गया और जिन उपायो से कुम्भकलश मिलने के पहले जीवन-निर्वाह होता था, उन्हे वे लोग भूल गये थे तथा उनके साधन भी नष्ट हो गये थे, इसलिये वे सब लोग एक साथ ही कष्ट मे पड गये।

मतलब यह है कि जो कुम्भकलश फूट गया है, उसके

वनाने की विधि यदि उन लोगो मे मे किसी को मालूम होती, तो उन लोगो को कष्ट मे न पडना पड़ता । इसलिए पदार्थ देकर सुख देने की अपेक्षा, सुख-प्राप्ति का उपाय वताना वहुत वड़ा उपकार है । साधु लोग यही उपकार करते है । वे पदार्थ द्वारा सुख देकर अकर्मण्य नही वनाते किन्तु धर्म सुनाकर सुख-प्राप्ति का उपाय ही वता देते है, जिससे फिर दुःख हो ही नही । वे लोग आध्यात्मिक विद्या सिखाते है । सव ऋद्धि इस विद्या को जानने वाले की दासी है । यह विद्या जानने वाले को किसी भी प्रकार की कमी नही रहती ।

७ : सच्चा सुख

सुख के लिए कही भी वाहर की तरफ नजर फैलाने की जरूरत नही है । अपनी ही ओर देखने से, अपने मे ही लीन होने से सुख की प्राप्ति होगी । वाह्य वस्तुए सुख नही दे सकती । उनसे जो सुख मिलता मालूम होता है, वह सुख नही, सुखाभास है । शहद लपेटी हुई तलवार की धारा चाटने से क्षणभर सुख सा प्रतीत होता है, मगर उसका परिणाम कितना दु खप्रद है ? यही वात ससार की समस्त सुख–सामग्री की है । अन्तत राजपाट, महल-मकान, मोटर, गाडी, भोजन, वस्त्र, कुटुम्ब-परिवार आदि सभी पदार्थ धोखा देने वाले है अथवा इनमें मनुष्य का जो अनुराग है वह चिर-

दु ख का कारण है । अतएव इन सबसे निरपेक्ष होकर एक-मात्र आत्मपरायण बनना ही सुख का सच्चा मार्ग है ।

जहा वाह्य पदार्थों का ससर्ग होगा, वहा व्याकुलता होना अनिवार्य है और जहा व्याकुलता है, वहा सुख नही है । निराकुलता ही सुख है और निराकुलता तभी आती है, जब सयोग-मात्र का त्याग कर दिया जाता है ।

एक व्यक्ति सुख रूपी पुरुष को पकडने दौडा । सुख रूपी पुरुष भागा । पकडने वाला उसके पीछे-पीछे दौडा और सुख आगे-आगे भागता ही गया । आखिर सुख हाथ न आया । पकडने के लिए दौडने वाला पुरुष थक गया । वह अशक्त होकर एक झरने के समीप, वृक्ष की छाया मे बैठकर सुख न पा सकने की चिन्ता मे मग्न हो गया । सुख को न पा सकने से उसे इतना दु ख हुआ कि उसे अपने कपडे और यहा तक की शरीर भी भारी मालूम होने लगे । उसके पास खाने को था, मगर चिन्ता के कारण उसे खाना न सूझा ।

इतने में ही उधर से एक मनुष्य निकला । उसने इस चिताग्रस्त पुरुष से चिल्लाकर कहा—"मुझे सुख दे !"

यह चिन्ताग्रस्त पुरुष आश्चर्य मे डूब गया । सोचा—यह कौन है जो मुझ से सुख माग रहा है ? अगर मेरे पास सुख होता तो इतना भटकने की जरूरत ही क्या थी ? उसने उसकी ओर मुड कर देखा तो एक दरिद्र-सा पुरुष उसे नजर आया । उस दरिद्र ने फिर उससे कहा—"मुझे सुख दे ।"

इसने उत्तर दिया—मेरे पास सुख कहा है ? मैं कहां से तुझे सुख दू ?

दरिद्र ने कहा—तेरे पास सुख न होता तो मैं मागता ही क्यो ?

पी ले प्याला हो मतवाला, प्याला प्रेम-दया रस का रे।
नाभिकमल विच है कस्तूरी, कैसे भरम मिटे मृग का रे।।
।।पी ले।।

दरिद्र पुरुष ने फिर कहा—मृग की नाभि मे ही कस्तूरी होती है। फिर भी वह कस्तूरी की खोज में इधर-उधर भागता फिरता है और यह नही जानता कि कस्तूरी मेरी ही नाभि मे है। इसी प्रकार तू सुख के लिए दौड-दौड कर थक गया परन्तु तुझे यह पता नही कि सुख तो तेरे ही पास है। और वह सुख भी थोडा नही, अनन्त है, असीम है, अद्भुत है।

दरिद्र पुरुष की यह बात सुनकर वह आश्चर्य मे आ गया। वह सोचने लगा—क्या यह मेरी हसी करता है ? फिर उससे पूछा—मेरे पास सुख कहा है ?

दरिद्र ने कहा—मैं बता सकता हूं। तुम्हारे पास यह जो खाना पडा है, यह मुझे दे दो तो मैं बतलाऊं।

सुख के अभिलाषी पुरुष ने अपना खाना उसे दे दिया। दरिद्र खाना खाकर हसते हुए चेहरे से उसके सामने आ खड़ा हुआ। फिर कहने लगा—अब देख ! मैं कितना सुखी हो गया

हूं । यह सब तेरा ही प्रताप है । तूने मुझे सुख दिया, इसी कारण मैं सुखी हो गया हू ।

दरिद्र पुरुष की बात सुनकर वह कहने लगा—अब मै समझ गया । वास्तव मे दूसरे से सुख मागने मे सुख नही है, किन्तु दूसरे को सुख पहुचाने में सुख है । सुख भिखारी को नही, दाता को होता है ।

८ : सांप का जहर

सर्प के जहर ने आपके शरीर मे प्रवेश किया । दूसरा आपका जहर आपके शरीर मे विद्यमान है । दोनो के मिलने से जहर की शक्ति बढ जाती है और वह आपको मारने वाला हो जाता है । साप के काटने पर आपको तनिक भी क्रोध न आएगा तो जहर नही चढेगा ।

बिहार प्रान्त मे एक आदमी घास का छप्पर बाध रहा था । एक सर्प छप्पर मे बध गया और उसने उस आदमी को काट खाया । आदमी को खबर न हुई । उसने समझा—कोई काँटा चुभ गया है । अगले साल जब वह आदमी छप्पर खोलकर नये सिरे से बाधने लगा तो उसे मरा सर्प दिखाई दिया । उसे गत वर्ष की घटना याद आ गई । सोचा—अरे ! जिसे मैंने काटा समझा था, वह कांटा

नही, साप था । क्रोध आते ही जहर ने असर किया और वह आदमी मर गया । सोचिये, इतने दिनो तक जहर कहां छिपा वैठा था ?

९ : धर्म का फल

अगर तुम्हारी आशा पूरी नही होती तो यह धर्म का दोष नही है, तुम्हारी करनी मे ही कही कमी है । अतएव काक्षा पूरी न होने के कारण धर्म को मत छोडो । काक्षा ही तुम्हारी मुराद पूरी नही होने देती । कांक्षा ही तुम्हे धर्म-श्रद्धा से डिगा देती है । अतएव जहा तक हो सके, काक्षा को ही छोडने का प्रयत्न करो । निष्काक्ष हो जाने पर तुम्हारी समस्त काक्षाए पूरी हो जाएगी । एक वृद्धा स्त्री की वात कहता हू—

किसी वृद्धा को धर्म से बडा प्रेम था । वह सदा साधुसन्तो के दर्शन करने जाती और उनका धर्मोपदेश सुनती । इतना ही नही, वह आस-पास की स्त्रियो को भी साथ ले जाती । स्त्रियो मे धर्म-भावना फैलाती । उन्हे सीख देती ।

एक दिन उसे विचार आया—मैं इतना धर्म-ध्यान करती हूं । धर्म के लिए उद्योग करती हू । अतएव मेरे पोता अवश्य होगा । इसके बाद पोता होने की आशा में

दिन पर दिन और वर्ष पर वर्ष बीत गये परन्तु पोता नही हुआ । पोता न होने से उसकी धर्म-भावना मन्द पड़ने लगी । वह विचार करने लगी—"यह कौनसा धर्म है, जो मेरी साधारण-सी अभिलाषा भी पूरी नही करता । जो धर्म पोता नही दे सकता, वह मोक्ष क्या देगा ? इस प्रकार वृद्धा की श्रद्धा घटने लगी । ठीक ही कहा है—"श्रद्धा परम-दुर्लभा ।" सब कुछ सरल हो सकता है, मगर श्रद्धा कायम रहना बहुत कठिन है । उस वृद्धा की श्रद्धा जोखिम मे पड गई । धीरे-धीरे उसे धर्म के प्रति इतनी अरुचि हो गई कि स्वय साधु सन्तो के समीप न फटकती और जो जाती उन्हे भी हटकती । कहती—क्या रखा है दर्शन करने मे ! क्यो घर के काम का नुकसान करती हो ? वहा कुछ लाभ होता तो मैं ही क्यो छोड बैठती ?

वृद्धा जहा की थी, वहा अकसर साधु पहुचा करते थे । एक पुराने साधु वहा गये । बहुत सी बहिने दर्शन करने आई । मगर साधु ने वृद्धा को न देखा । वह किसी समय महिला-समाज मे अगुआ थी । धर्म मे उसे बड़ा उत्साह था । अतएव साधुजी ने पूछा—बहिनो ! यहा एक धर्मशीला वृद्धा बाई थी । वह आज दिखाई नही दी । क्या कही गई है ?

एक स्त्री ने मुह मटका कर उत्तर दिया—"महाराज, वह तो मिथ्यात्विनी हो गई । खुद नही आती और दूसरों को भी आने से रोकती है ।

साधु—अच्छा, यह बात है ! उससे जरा कह देना

कि अमुक मुनि आये है । व्याख्यान सुनना । अगर इच्छा न हो तो भी जैसे मिलने वालो से मिल जाते हैं, उसी प्रकार समझ कर व्याख्यान सुनना ।

यह समाचार वृद्धा के पास पहुच गया । वह कहने लगी—मैंने वहुत दर्शन किये । कई व्याख्यान सुने । कोई मुराद पूरी नही हुई । अव वहा जाकर क्या करूंगी ?

साधु प्राणीमात्र का भला चाहते है । उन्हे किसी पर क्रोध नही होता । उन्होने वृद्धा को सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से एक बार फिर कहला भेजा ।

वृद्धा आई । अनमनी होकर, हाथ जोड नीचा सिर किये गुमसुम वैठ गई ।

साधुजी ने कहा—वहिन, आजकल तुम धर्मध्यान नहीं करती । पहले तो वहुत धर्मक्रिया करती थी । क्या कारण है?

लम्बी सास लेकर वृद्धा बोली—क्या कहू महाराज !

साधु—नही, नही वहिन, कुछ कहो । वात क्या है ? क्या श्रद्धा हट गई ?

वृद्धा—पूछ कर क्या करोगे महाराज !

साधु—वन सकेगा तो उपाय करेंगे ।

वृद्धा उत्सुक होकर—आप सुनना चाहते है ?

साधु—हा, वहिन !

वृद्धा—तो सुनिये । मेरा लडका है । आप जानते ही

है कि मैं पहले कैसा धर्म करती थी और कैसी सेवा वजाती थी । मैं समझती थी कि धर्म के प्रताप से मेरे पोता होगा । आशा ही आशा मे कई वर्ष व्यतीत हो गए, किन्तु पोता नही हुआ । धर्म वह जो आशा पूरी करे । वहुत धर्म करने पर भी आशा निराशा में पलट गई । पोते का मुह देखने को न मिला । इस कारण धर्म आस्था घट गई ।

साधुजी ने समवेदना दिखलाते हुई कहा—वहिन, सच कहती हो । जो धर्म आशा पूरी न करे, वह कैसा धर्म ।

अपने पक्ष का समर्थन होते देखकर वृद्धा कहने लगी—महाराज, आप सच फरमाते है । झूठ कहती होऊ तो आप बताइये ।

साधु—नही वहिन, तुम झूठ नही कहती । अच्छा, एक वात तुमसे पूछता हू । धर्म ने पोता नही दिया यह मैंने माना मगर वहिन, ससार सम्वन्धी ऐसी कुछ वाधाए भी होती है कि धर्म भी विचारा क्या करे ? अगर अकेला धर्म ही पोता दे देता तो तुम घर मे वहू आने से पहले ही मागती । पर ऐसा नही, ससार सवन्धी भी कुछ कारण मिलते हैं, तव पोता होता है ।

वृद्धा सिर हिलाकर—वात सच है ।

साधु फिर कहने लगे—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इसमे कोई सासारित वाधा ही कारण होगी ।

वृद्धा—नही महाराज,सासारिक वाधा कुछ भी नही है ।

साधु—वहिन, हो सकता है कि तुम्हे मालूम ही न हो । मान लो, पति-पत्नी मे मेल-मिलाप ही न हो तो ?

वृद्धा—नही महाराज, दोनो मे इतना प्रेम है, जितना सीता और राम मे था ।

साधु—सभव है वहू रोगिणी हो ! रोगिणी के भी वच्चा नही होता ।

वृद्धा—अजी, उसके तो नख मे भी रोग नही है, वह खूव भली-चगी है ।

साधु—तुम्हारे लडके मे कोई त्रुटि नही हो सकती ?

वृद्धा—यह भी नही है । ऐसा होता तो सन्तोष कर लेती कि जब लडके मे कमी है तो पोता कैसे हो ? पर वह तो बलिष्ठ और सुन्दर है । देखती हू, कई लडके खाट पर पडे रहते है, पर मेरा ऐसा नही है । वह पहाड सा वलवान् है ।

साधु—इसके अतिरिक्त एक वात और हो सकती है ।

वृद्धा—वह क्या ?

साधु—सब कुछ ठीक हो, पर यदि तुम्हारा लड़का परदेश चला जाता हो और वहू तुम्हारे पास रहती हो तो पोता कैसे हो ? एक वात और भी है । सभव है, पति-पत्नी साथ ही रहते हो किन्तु मनुष्य को धन की चिन्ता बहुत बुरी होती है । इस चिन्ता से तुम्हारा लड़का घुलता हो तो भी पोता न होना सभव है ।

वृद्धा व्यग की हसी हसकर बोली—मैं ऐसी भोली नही हू । काले केश पक गये है । ऐसा होता तो समझ जाती, मगर यह सब कुछ नही है ।

साधु—एक वात पूछना फिर भूल गया ।

वृद्धा—वह भी पूछ लीजिए ।

साधु—जो माता-पिता की सेवा नही करते, उनके भी प्राय पुत्र नही होता ।

वृद्धा—महाराज, मेरा लडका और मेरी वहू मिलकर मेरी इतनी सेवा करते है कि शायद ही किसी को नसीव होती हो । सव वातें आपने पूछ ली । अव वताइये, किसका दोप है ?

साधु—यह तो धर्म का ही दोप है ।

वृद्धा जरा तेज स्वर में—मैं पहले कहती थी कि यह धर्म का ही दोप है । इसी कारण मैंने धर्म छोड़ दिया । स्त्रिया मुझे मिथ्यात्विनी कहती है, कहती रहे । मेरा क्या विगड़ना है ? सच्ची वात तो कहनी पडेगी ।

साधू—मैं समझ गया वहिन, यह दोप धर्म का ही है । धर्म से जाकर अर्ज करनी पडेगी कि वहुत से लोग वेचारे वूढे होकर मर जाते हैं पर वेटे का मुंह नही देख पाते । तुमने उस वृद्धा को लडका देकर और दुःखी कर दिया । नही तो वह धर्मध्यान करती । अव पोते के विना उसे चैन नही पड़ती । उसे रात-दिन चिन्ता रहती है ।

वृद्धा चौंक कर वोली—ऐ महाराज! यह क्या कहते है?

साधु—सच ही तो कह रहा हूं ।

वृद्धा—नही महाराज ! यह तो धर्म का ही प्रताप है। अच्छा पुण्य किया तो वेटा मिला है,

साधु—कई लोग विवाह के लिए भटकते-फिरते हैं। तुम्हारे लडके का विवाह जल्दी हो गया, यह बुरा हुआ ?

वृद्धा—नही अन्नदाता, यह तो धर्म का ही प्रताप है।

साधु—लोग पैसे-पैसे को मोहताज रहते है। तुम्हे पैसा देकर धर्म ने बुरा किया ?

वृद्धा—हुजूर, यह क्या फरमाते है ! यह भी धर्म का ही प्रताप है।

साधु यह क्या ? सभी बातो मे धर्म ही धर्म का प्रताप बतलाती हो !

वृद्धा—सच बात तो कहनी ही चाहिये न ?

साधु—अच्छा तो पति-पत्नी की जोडी स्वस्थ मिली,यह बुरा हुआ ? नही तो सन्तोष मानकर धर्म तो करती।

वृद्धा—यह भी धर्म का प्रताप है।

साधु—पति-पत्नी अविनीत, माता-पिता से झगड़ने वाले मिलते तो ठीक था ?

वृद्धा—जिसने खोटे कर्म किये हो, उसी को ऐसे लड़का-वहू मिलते हैं। आपकी कृपा से मैंने कुछ पुण्य-धर्म किया, उसी का यह प्रताप है।

साधु—तुम सभी बाते धर्म के प्रताप से कहती हो ! ऐसा है तो जो धर्म सभी कुछ दे, सिर्फ एक पोता न दे, उस पर इतनी नाराजी क्यो ?

वृद्धा हाथ जोडकर बोली—क्षमा कीजिये महाराज !

मुझसे भूल हुई। मैंने धर्म का उपकार न माना। मैं बड़ी कृतघ्नी और पापिनी हू। अब मैं समझ गई। मेरा मोह दूर हो गया। आपने मुझ पर असीम दया की, ठीक रास्ता दिखला दिया। अब मैं फिर यथाशक्ति धर्म की सेवा करूगी।

आपने यह दृष्टान्त सुना। ऐसे विचार वाले भाई—वहिन आप मे कम नही होगे, जो अपनी आशा पूरी होते न देख कह उठते है—वाह! धर्म ने इतना भी न किया!

इस प्रकार की तुच्छ भावना से धर्म की दुर्दशा नही, आपकी ही दुर्दशा होती है। तुम सच्चे धर्मात्मा वनो। तुम्हारी मुराद तो क्या, त्रिलोकी तुम्हारे चरणो में लौटने लगेगी।

१० : बहिरात्मा

एक देहाती मनुष्य वहुत बुद्धिमान् और होशियार आदमी था। उसने सोचा—देहात मे जैसी चाहिए, वैसी इज्जत नही होती और न कोई काम ही है। ऐसा सोचकर वह शहर मे गया। शहर मे पहुचकर वह किसी सेठ की दुकान पर गया। सेठ साहव ने उससे कुछ भी वात नही की, क्योकि वह देहाती था और सादी पोशाक पहने था। सेठ अपनी धुन मे मग्न था। दुकान पर दस-पाच मुनीम काम कर रहे थे। कोई हुंडी लिख रहा था, कोई कुछ और कर रहा था। उस देहाती से किसी ने कुछ न पूछा।

आगुन्तक पुरुष देहाती होने पर भी बुद्धिमान् था। वह समझ गया कि मेरी सादी पोशाक देखकर मुझसे कोई बात नही करता। वह वहां से उठा और धोबी के पास गया। धोवी से कहा—भाई, तुम्हारे पास किसी अमीर की पोशाक धुलने आई हो तो कुछ समय के लिए मुझे दे दो। मैं वापिस लौटा दूगा। तुम उसे दोबारा धोकर दे देना। अपना मेहनताना चाहे पहले ही ले लो।

धोवी ने उसकी बातचीत से समझा—कोई भला आदमी है। उसने उसे कपडे दे दिये। देहाती ने कपड़े पहने और कही से वढिया जूते भी खोज लिये। हाथ मे एक बेत ले लिया। अब वह अकड के साथ चलता हुआ उसी सेठ की दुकान पर जा पहुचा। उसे आता देख सेठ खडा हो गया और बोला—पधारिये साहब, कहा से तशरीफ लाये है? कैसे पधारना हुआ?

देहाती बोला—आप ही से मिलने आया हू।

सेठ—ठीक, विराजिये।

देहाती शान के साथ वैठ गया। सेठजी ने पूछा—आपको भोजन आदि करना होगा न?

देहाती—हा कर लेगे। जल्दी क्या है?

सेठजी की आज्ञा होते ही कोई नौकर रसोई की तैयारी मे लगा, कोई पानी लाने लगा। देहाती बुद्धिमान् तो था ही, इधर-उधर की दो–चार बाते बनाई। सेठ उसकी वुद्धिमता पर रीझ गया। खूब खातिर की। भोजन

तैयार हो गया तो भोजन के लिए कहा । देहाती भोजन करने गया । आसन पर बैठकर दो लड्डू इस जेब मे डालने लगा और दो बर्फिया उस जेब मे । तीसरी मिठाई साफे मे बाधने लगा और कुछ सामान रूमाल मे रखने लगा । यह देखकर सेठ भौचक्का-सा रह गया । वह बोला—आप यह क्या कर रहे है ?

देहाती ने धीमे स्वर मे कहा—जिनके प्रताप से मुझे यह मिठाई मिली है, उन्हे तो पहले जिमा दू ।

सेठ–सो कैसे ?

पहले सादी पोशाक पहन कर मैं आपकी दुकान पर आया था । तब आपने मुझसे बात भी न की । जब यह कपडे पहनकर आया, तब यह खातिर हुई । वास्तव मे यह खातिर इन कपडो की है ।

सेठ बडा लज्जित हुआ और उसने क्षमा मागी ।

आप मे से बहुत से भाई इसी प्रकार का आदर–सत्कार करते है । परन्तु यह सच्चे श्रावक का लक्षण नही है । मित्रो ! सभ्यता सीखो । सभ्यता के बिना धर्म का पालन नही हो सकता ।



११ : साकार से निराकार की ओर

कहा जाता है कि हमने कभी परमात्मा के दर्शन नही किये। विना दर्शन हुए उससे प्रीति किस प्रकार की जाय ? कभी परमात्मा की बोली भी नही सुनी तो उसका स्मरण कैसे किया जाय ? यह प्रश्न ठीक है। इसका समाधान करने के लिए एक लौकिक दृष्टात उपयोगी होगा। आप अशुद्ध वस्तु को अच्छी तरह जानते हैं। उसके सहारे शुद्ध वस्तु को भी समझ जाए गे।

एक मनुष्य किसी सुन्दरी महिला के रूप पर इतना मोहित हो गया कि उसके बिना उसे चैन न पडता। उसे चलते-फिरते सदैव उसी वाई का ध्यान रहता। कव उससे मेरा मिलन हो और कव मैं अपने हृदय की प्यास बुझाऊ, वस ऐसा ही विचार उसके मन मे सदा बना रहता था। उस आदमी की बात किसी दूसरी बाई ने जानी। वह विचारशील और सदाचारिणी थी। उसने सोचा—इस मनुष्य का पतन होने वाला है। यह स्वय तो भ्रष्ट होगा ही, एक मेरी बहिन को भी भ्रष्ट करेगा। अतएव इन्हे भ्रष्ट होने से वचाने का कोई उपाय करना चाहिए।

अगर आपको ऐसे भोगाभिलाषी पुरुष का पता चल जाय तो आप क्या करेंगे ? आप मारेंगे, पीटेंगे या दुत्कारेंगे। इसके सिवाय और कुछ नही करेंगे। परन्तु सुधार का यह

मार्ग ठीक नही है। यह तो उसे और गड्ढे में डालने का उपाय है। किसी को दुत्कार कर, फटकार कर या किसी के प्रति घृणा करके उसे पाप से नही बचाया जा सकता। अगर पापी से प्रेम करो और शान्तिपूर्वक समझाओ तो वह वहुत आसानी से समझ जायगा।

उस दूसरी वाई ने यही रास्ता अख्तियार किया। वह उस कामी पुरुष के पास जाकर वोली—भाई तू इतनी चिन्ता क्यो करता है ? तेरे मन की वात मैं जानती हू। अगर तू मेरा कहना माने तो मैं तुझे उस स्त्री से मिला दू गी।

उस पुरुष ने घवराहट से कहा—ऐं, तुम मेरे मन की वात जानती हो ? और उसे मिला दोगी ? किसने तुमसे यह बात कही है ?

स्त्री—मैं तुम्हारे हाव-भाव से समझ गई हू। फिकर मत करो। मैं उससे मिला दूंगी।

पुरुष को कुछ तसल्ली हुई। उसने सोचा—चलो, अच्छा हुआ। अनायास और मुफ्त दूती मिल गई।

स्त्री ने कहा—मैं तुम्हारा काम तो कर दू गी, पर तुम्हे मेरा कहना मानना होगा। कहो, मानोगे ?

पुरुष—वाह, मैं तुम्हारा कहना नही मानूंगा ? अगर तुम उससे मिला दोगी तो मैं तुम्हारे लिए तन-मन निछावर कर दू गा।

"तो वस ठीक है" इतना कहकर वह वाई चली

गई । वह दूसरे दिन फिर आई । उसने पुरुष से कहा—भाई, चलो ।

पुरुष की प्रसन्नता का पार न रहा । उसने समझा, काम बन रहा है तो ढील क्यो की जाय । वह जल्दी-जल्दी सजकर साथ चलने को तैयार हो गया ।

वह बाई उसे एक बडे सफाखाने मे ले गई । वहा कई रोगियो की चीरफाड की जा रही थी । कई सड रहे थे । कइयो के शरीर से लोहू और मवाद झर रहा था । चारो ओर दुर्गन्ध फैल रही थी ।

यह सब वीभत्स दृश्य देखकर उस पुरुष ने कहा—ऐसे गन्दे स्थान पर क्यो ले आई हो ? मारे दुर्गन्ध से सिर फटा जा रहा है । चक्कर आते है । चलो, जल्दी यहा से ।

स्त्री—"जरा ठहरो, बस चलती ही हूं ।" इतना कहकर वह रोगियो से पूछने लगी—भाइयो, तुम्हे यह रोग कैसे हो गये ?

रोगियो में से एक ने कहा—बहिन, क्या बताएं, यह सब हमारे ही खोटे कर्मों के फल हैं । विषय-सेवन की मर्यादा न पालने से किसी को सुजाक, किसी को गर्मी, किसी को कुछ और किसी को कुछ रोग हो गया है । अगर हम मर्यादा में रहे होते, पराई स्त्रियो को माता-बहिन समझते तो हमारी यह दुर्दशा न होती । मगर क्या किया जाय । अब तो अपने हाथ की बात रही नही ।

स्त्री ने अपने साथी पुरुष का लक्ष्य करके कहा—

सुना आपने, यह रोगी क्या कह रहे है? ध्यान से सुन लीजिये।

वह बोला—हाँ सुना, सब सुना। तुम बाहर निकलो। मेरा सिर दुर्गन्ध के मारे फटा जा रहा है।

दोनो बाहर निकल पडे और अपने-अपने घर चले गये। स्त्री ने सोचा—मेरी दवाई ने पूरा असर नही किया। खैर, कल फिर देखा जायगा।

दूसरे दिन फिर वह उसके घर पहुची। चलने के लिये कहा। तब वह पुरुष कहने लगा—तुम उससे कब मिलाओगी ? चकमा तो नही दे रही हो ?

उत्तर मिला—भैया ! उसी से मिलाने के लिए तो उद्यम कर रही हू।

पुरुष—तो ठीक है। चलो।

आज वह स्त्री उसे जेलखाने मे ले गई। कोई आजन्म कैदी था, कोई आठ वर्ष की और कोई दस वर्ष की सजा पाया हुआ था।

स्त्री ने एक कैदी से पूछा—कहो भाई, तुम किस अपराध में सजा भोग रहे हो ?

कैदी बोला—हम लोग अलग-अलग अपराधो के अपराधी हैं। किसी ने चोरी की, किसी ने जालसाजी की, किसी ने परस्त्री गमन किया। इसी कारण हम लोग इस नरक में पडे सड रहे हैं। किसी को भरपेट रोटी नहीं मिलती। कोई बहुत तंग कोठरी में रखा गया है। उसी

कोठरी मे खाना और उसी मे पाखाना! कइयो को बेत लगते हैं और बहुतो को चक्की पीसनी पड़ती है । हम लोगो को जीवित अवस्था मे ही नरक से पाला पड़ा है ।

स्त्री ने अपने साथी से कहा—सुनो भैया, इनकी बाते। ये वेचारे कितना कष्ट पा रहे है। ध्यान दिया आपने ?

वह पुरुष बोला—होगा, इससे हमे क्या सरोकार है ?

स्त्री ने सोचा—अब भी मेरा उद्देश्य पूरा नही हुआ । कल दूसरा प्रयोग करूगी । यह सोच वह लौट गई ।

प्रात काल होते ही वह उसे समझा-बुझा कर साथ ले गई । उसने आज कसाईखाने मे प्रवेश किया । वहा वकरों की गर्दन पर खचाखच छुरिया चल रही थी । प्राणी अपने प्राणो की रक्षा के लिए "वे—बे" चिल्लाते हुए दूर भागना चाहते थे । मगर कसाइयो के हाथ से उन्हे कैसे छुटकारा मिल सकता था ? बड़ा ही निर्दयतापूर्ण दृश्य था । कही किसी अन्य पशु का सिर कटा पडा था । कही कलेजा कटा पडा थड-थड कर रहा था । कही किसी जानवर का चमडा उघेडा जा रहा था । कही कोई मास को इधर—उधर ले जा रहा था । कही हड्डियो के ढेर लगे थे और कही आगे कटने वाले जानवर खडे थे । दुर्गन्ध की तो बात ही क्या पूछना । वह मनुष्य यह सब देखकर घबरा उठा । बोला—वह सब क्या हो रहा है ?

स्त्री ने कहा—भैया, घबराओ नही । अभी इन आदमियो से पूछ लेती हू । इतना कहकर एक कसाई से पूछा—भाई, तुम इन जानवरो को क्यो मारते हो ?

कसाई—मारे नही तो क्या करे ? पैसा कमावे कि नही ? इन्हे मारकर इनका मास वेचते है और अपने वाल-वच्चो की परवरिश करते हैं।

स्त्री—भाई, इन पर कुछ दया करो न ?

कसाई—दया किस पर ? यह तो हमारे खाने के लिए ही पैदा किए गए है।

साथ का पुरुप वीच ही मे वोला—चलो यहा से। मुझ से यह दृश्य नही देखा जाता।

स्त्री ने सोचा—ठीक है, हृदय कुछ तो पिघला।

दोनो कसाईखाने से वाहर निकले। वाहर निकलने के वाद वह पुरुप कहने लगा—आखिर इतने पशु क्यो मारे जाते है ?

स्त्री—इन पशुओ ने पहले खराव काम किये होगे।

पुरुप—क्या खराव काम किये होगे, इन वेचारो ने ?

स्त्री—खराव काम यही—चोरी करना, विश्वासघात करना, किसी को ठगना, परस्त्री पर मोहित होना आदि।

पुरुप—इन कामो का फल इतना भयकर है ?

स्त्री—सो तो तुमने अपनी आखो देखा है।

अन्त मे दोनो अपने-अपने घर चले गये। उस स्त्री ने विचार किया—ऐसे-ऐसे दृश्य दिखलाने पर भी ठीक

परिणाम न निकला । वह अपनी बात के पीछे पागल हुआ जा रहा है । क्या करना चाहिये ?

सयोग की बात है कि जिस महिला पर वह मोहित था, उसका कुछ ही दिन बाद अचानक देहान्त हो गया । जैसे ही उस स्त्री को उसके देहान्त की खबर लगी कि वह दौड़कर उस पुरुष के पास गई । जाकर उससे बोली—आज उससे मिलने का मौका है । चलो, देरी मत करो ।

वह पुरुष अतीव प्रसन्नता के साथ जल्दी तैयार हो गया । इत्र लगाकर और सुन्दर वस्त्र धारण करके चला ।

पुरुष के साथ आने वाली बाई को सभी जानते और आदर की दृष्टि से देखते थे । उसे वहा आती देख लोगो ने पूछा—आज आपका यहा कैसे पधारना हुआ ?

उसने उत्तर दिया—भाइयो, आज मै एक महत्त्वपूर्ण काम से आई हू । आप सब लोग थोडी देर के लिए जरा बाहर हो जाइये ।

सब लोग बाई का कहना मानकर बाहर चले गये । उन्हे विश्वास था कि यह बाई किसी न किसी धार्मिक काम के लिए ही आई है । अतएव उसका कहना मानने में किसी को आपत्ति नही हुई ।

बाई पहले अकेली अन्दर गई । मृत स्त्री को अच्छे कपडे ओढाये और आभूषण पहनाये । इत्र भी लगा दिया । फिर वह बाहर आई और उस पुरुष को अन्दर ले जाने लगी ।

दोनो भीतर गये । बाई बोली—भैया, लो यह तैयार है । भेट कर लो ।

वह पुरुष कुछ आगे बढा और फिर एकदम एक कदम पीछे लौटता हुआ घबरा कर बोला—यह तो मर चुकी है ।

वाई बोली—मरना कैसा ? वही शरीर है । वही कान और नाक है । वही मुख । वही वस्त्र और आभूषण है । सभी कुछ वही तो है । फिर मर गई का क्या अर्थ ?

पुरुप—इसमे प्राण नही रहे ।

बाई—तुम्हारा प्रेम प्राणो (आत्मा) से है या इस शरीर से ?

पुरुष—यह तो बडा ही भयकर है। मुझे भय मालूम होता है ।

बाई—तो क्या तुम इसकी आत्मा को भ्रष्ट करना चाहते थे ? अरे पागल ! कसाई बकरा मारकर उसके शरीर के मास को लेना चाहता है और तू इसके जीते जी ही इसके मास आदि पर अपना अधिकार जमाना चाहता था? जिसके लिए तू तडफ रहा था, आज उसी से भयभीत हो रहा है ! तेरा प्रेम ऐसा ही था !

पुरुष कुछ कहना ही चाहता था कि बीच मे वाई फिर बोल उठी—अरे मेरे भाई ! जितना प्रेम तू इस शरीर पर करता था, उतना अगर आत्मा पर किया होता तो तिर जाता, क्योकि सब आत्माएं समान है । आत्मा ही अपनी दवी हुई शक्तिया विकसित करके परमात्मा बन जाता है ।

❀ ❀

१२ : पर-सुख में अपना सुख

किसी समय मे एक राजा राज्य करता था। उसके पास बहुत से विद्वान् आते रहते थे। वे लोग राजा मे जो दुर्गुण देखते उन्हे दूर करने का उपदेश राजा को दिया करते थे। पर राजा किसी की कुछ मानता नही था। वह विद्वान् पण्डितो को अपने सुख मे विघ्न डालने वाला समझता था। अगर कोई विद्वान् अधिक जोर देकर उपदेश देता तो राजा उसका अपमान करने से भी नही चूकता था। इस प्रकार किसी की बात पर कान न देने के कारण राजा के दुर्व्यसन बढते गये।

एक रोज राजा अपने साथियो के साथ, घोडे पर सवार होकर शिकार खेलने के लिए जगल मे गया। वहा अपना शिकार हाथ से जाते देख उसने शिकार का पीछा किया। राजा बहुत दूर जा पहुंचा। साथी बिछुड गये पर शिकार हाथ नही आया।

मनुष्य भले ही अपना कुव्यसन न छोडे, मगर प्रकृति उसे चेतावनी जरूर देती रहती है। यही बात यहा हुई। बहुत दूर दूर चले जाने पर राजा रास्ता भूल गया। वह बुरी तरह थक गया। विश्राम के लिए किसी पेड़ के नीचे ठहरा। इतने मे जबर्दस्त आंधी उठी और जोर की वर्षा होने लगी। थोड़ी ही देर में बिजली चमकने लगी। मेघ घोर गर्जना

करके मूसलाधार पानी बरसाने लगे और ओलो की बोछार होने लगी। राजा वडी विपदा मे फस गया । उसने इसी जगल मे न जाने कितने निरपराध पशुओ को अपनी गोली का निशाना बनाया था। आज वह स्वय प्रकृति की गोलियो-ओलो का निशाना बना हुआ था। राजा ओलो से बचने के लिए वृक्ष के तने मे घुसा जाता था पर वृक्ष ओलो से उसकी रक्षा न कर सका। घोडा थका हुआ था ही। ओलो की मार से यह और हाफ गया और अन्त मे उसने भी राजा का साथ छोड दिया। अब राजा को एक भी सहायक नजर नही आता था। उसके महलो मे सैकडो दास और दासियो का जमघट था, मगर आज मुसीबत के समय कोई खोज-खबर लेने वाला भी नसीब नही था। ,

विपत्ति हमेशा नही रहती। कभी न कभी टल जाती है। इस नियम के अनुसार पानी का बरसना, मेघो का गरजना और हवा का चलना वन्द हो गया। धीरे–धीरे वादल भी फटने लगे। अब राजा के जी मे जी आया। उसने चारो तरफ दृष्टि दौडाई तो जल ही जल दिखाई दिया। परन्तु दूर की तरफ नजर दौडाने पर अग्नि का कुछ प्रकाश दिखाई दिया।

प्रकाश देखकर राजा के हृदय में तसल्ली वधी। उसने सोचा—वहा कोई मनुष्य अवश्य होगा। वहा चलना चाहिए। रास्ते मे गिरता-पड़ता-फिसलता हुआ धीरे-धीरे वह अग्नि के प्रकाश की तरफ वढा। वह ज्यो-ज्यो आगे बढता जाता था, एक झोपडी उसे साफ मालूम होती जाती थी। आखिर राजा झोपडी के द्वार पर जा पहुचा।

राजा शिकारी के वेष मे झोपडी के द्वार पर खडा हुआ था । झोपडी मे एक किसान रहता था । राजा को देखते ही उसने कहा "आओ भाई, अन्दर आओ ।"

अहा! ऐसी घोर विपदा के समय यह स्नेह-पूर्ण "भाई" सम्वोधन सुनकर राजा को कितना हर्ष हुआ होगा !

किसान राजा को शिकारी ही समझे था । उसके कपडे पानी में तर देखकर किसान ने कहा—ओह ! तू तो पानी से लथ पथ हो गया है ! आज तुझे वडी तकलीफ उठानी पड़ी होगी !

किसान के सहानुभूति से भरे मीठे शब्द सुनकर राजा गद्‌गद् हो गया । भाटो और चारणो के द्वारा वखान की गई अपनी विरुदावली सुनने मे और अपने मुसाहिवो के मुजरे मे जो आनन्द उसे अनुभव नही हुआ होगा, वह अपूर्व आनन्द किसान के इन थोडे-से शब्दो ने प्रदान किया ।

किसान ने अपनी स्त्री से कहा—देख, इस शिकारी के सब कपडे गीले हो रहे है । इसे ठण्ड लग रही है । अपना कम्वल उठा ला । इसे कम्बल देकर इसके कपडे निचोड कर सूखने डाल दे ।

किसान की स्त्री कम्वल ले आई । राजा ने वहुत-से कीमती दुशाले ओढे होगे, पर इस कम्बल को ओढने मे उसे जो आनन्द आया, वह शायद दुशालो से नसीव न हुआ होगा ।

आज राजा को यह छोटी-सी झोपडी अपने विशाल राजमहलो की अपेक्षा अधिक आनन्ददायिनी प्रतीत हुई

किसान दम्पती की सेवा उसे ईश्वरीय वरदान-सी प्रतीत हुई । राजमहलो को अपना मानकर वह गर्व से इतराता था । जिस वैभव पर फूला नही समाता था, आज वह सब उसे तुच्छ प्रतीत हो रहा था ।

राजा ने जब कम्वल ओढ लिया, तव किसानो ने घास के विछौने की ओर इशारा करके कहा—तू वहुत थका मालूम देता है । उसे विछाकर उस विछौने पर विश्राम कर ले ।

राजा सो गया । थकावट के मारे उसे गहरी नीद आ गई ।

किसान ने स्त्री से कहा—वेचारे की ठण्ड अभी नही गई होगी, जरा आग से तपा दे । स्त्री फटे-टूटे कम्वल के चीथडो का गोटा वनाकर राजा को तपाने लगी । किसान की स्त्री अपने पुत्र के समान विशुद्ध-भाव से राजा की सेवा कर रही थी । सरल हृदय किसान-पत्नी के हृदय मे वही वात्सल्य था, जो अपने वेटे के लिए होता है ।

और किसान राजा के कपडे हिला-हिला कर अग्नि के ताप से सुखाने में लगा हुआ था ।

जव राजा अंगडाई लेता हुआ उठ खडा हुआ, तव किसान ने कहा—अरे अव तो तू अच्छा दिखाई देता है । अव तेरा चेहरा भी पहले से अच्छा मालूम होता है । पर यह तो वता, तू घर से कव निकला था ?

राजा—सुवह ।

किसान—तब तो तुझे भूख लगी होगी। अच्छा (स्त्री की तरफ देखकर) अरी जा, इसके लिए रोटी और डूगरी पालक की तरकारी ले आ।

राजा मोटी रोटी जगली तरकारी के साथ खाने बैठा। उसने अपने ससुराल में, बडी मनवार के साथ अच्छे-अच्छे पकवान खाये होगे। पर कहा वह पकवान और कहा आज की यह मोटी रोटी! उन पकवानो में जड का माधुर्य था, इस मोटी रोटी में किसान दम्पती के हृदय की मधुरता! उन पकवानो को भोगने वाला था राजा और इस रोटी को खाने वाला था साधारण मानव! राजा इस भोजन मे जो नि:स्वार्थभाव भरा हुआ पाता था, वह उन पकवानो मे कहा!

रात वहुत देर हो गई थी। किसान-दम्पती और उसके वाल-वच्चे सो गये। राजा भी उसी झोपडी मे फिर सो गया। मगर राजा को नीद नही आ रही थी। मन ही मन वह किसान की सेवा पर लट्टू हो रहा था। पडितों के उपदेश ने उसके हृदय पर जो प्रभाव नहीं डाला था, किसान की सेवा ने वह प्रभाव उसके हृदय पर डाला। एक ही रात मे उसका सारा जीवन पलट गया। अब तक वह निरा राजा था, आज किसान ने उसे आदमी भी वना दिया।

प्रातःकाल राजा ने अपने कपडे पहने और किसान से जाने की आज्ञा मागी। किसान को क्या पता था कि जिसके नाम-मात्र से बड़ों-बड़ो का कलेजा कांप उठता है, वे महाराजाधिराज ये ही हैं। उसकी निगाह में वह साधारण

मनुष्य था। किसान ने यही समझते हुए कहा—"अच्छा भाई, जा। यह झोपड़ी तेरी ही है। फिर कभी आना।"

इस आत्मीयता ने राजा के दिल मे हलचल मचा दी। वह किसान के पैरो मे गिर पड़ा। किसान को अपना गुरु मान, वह वहा से चल दिया।

राजा अपने महल में पहुचा। राजा के पहुचते ही मुसाहवो ने मुजरा किया। रानियो ने आदर-सत्कार कर कुशल—क्षेम पूछी। पर राजा को यह सव शिष्टाचार फीका मालूम हुआ। राजा के दिल मे किसान की सेवा-परायणता, किसान-पत्नी की सरलता और उन दोनो की सादगी एव वत्सलता ने घर कर लिया था। वह उसे भूल नही सका। बार-बार वही याद करके वह प्रफुल्लित हो जाता था।

विद्वानो ने उसे बहुतेरे उपदेश दिये थे, पर उनका कुछ भी असर नही हुआ था। किसान की सरल और नि.स्वार्थ सेवा ने राजा पर ऐसा जादू डाला कि उसका सारा जीवन—क्रम ही बदल गया। राज्य में त्रुटिया थी, उसने उन्हे दूर कर दिया और आपने तमाम दुर्व्यसनों को तिलाजलि दे दी।

एक गरीब की प्रेम-पूर्ण सेवा ने सारे राज्य को सुधार दिया। राजा उस किसान को अपना आदर्श और महापुरुष मानने लगा। जव भी उसे किसान का स्मरण हो आता, तभी यह किसान के चरणो में अपना सिर झुका देता।

मित्रो! दूसरे के सुख मे अपना सुख मानने वाले का प्रभाव कैसा होता है, यह इस कहानी से समझो। वास्तव मे वही सच्चे सुख का अधिकारी होता है, जो दूसरे के सुख को ही अपना सुख मानता है।❀ ❀

१३ : जिंदगी के गुलाम

एक शहर में डाके वहुत पडते थे । वहा के महाजनो ने सोचा—हमेशा की यह आफत बुरी है । चलो, सब मिल कर डाकुओ का पीछा करे, उन्हे पकडे । सब महाजन तैयार हुए । शस्त्र बाध कर शाम के समय जंगल की तरफ रवाना हुए । रास्ते मे विचार किया—डाकू आधी रात को आएगे । सारी रात खराब करने से क्या लाभ है ? अभी सो जाए और समय पर जाग उठेगे ।

सब महाजन पक्तिवार सो गये । उनमें, जो सबसे आगे लेटा था, वह सोचने लगा– "मैं सबसे आगे हू । अगर डाकू आए तो मेरा पहला नम्बर होगा । सबसे पहले मुझ पर हमला होगा । मैं पहले क्यो मरूं ? डाका तो सभी पर पडता है और मै पहले मरू, यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है ? अच्छा, मै उठकर सब के पीछे चला जाऊ ।"

वह सब के अन्त मे जाकर सो गया । अब तक जिसका दूसरा नम्बर था, उसका पहला नम्बर हो गया । उसने भी सोचा—"पहले मैं क्यो मरू ?" और वह उठा और सब के अन्त में सो गया । इसी प्रकार बारी-बारी सब खिसकने लगे । सुबह होते–होते जहा थे, वही वापस आ गये ।

लडाई का काम वीरो का है। वीर पुरुष ही न्याय की प्रतिष्ठा और अन्याय के प्रतिकार के लिए अपने प्राणो की चिन्ता न करके जूझ पडते है। डरपोक उसमे फतह नही पा सकते। जिसके लिए प्राण-रक्षा ही सब कुछ है, जिन्होने जीवन को ही सर्वोच्च आराध्य मान लिया है, वे अन्याय बर्दाश्त कर सकते है, गुलामी को उपहार समझ सकते है और अपने अपमान का कडवा घूट चुपचाप पी सकते है। वे महाजन जीवन के गुलाम थे। इसी कारण वे लडाई के लिए निकल कर भी ठिकाने पहुंच गये।

मित्रो! जो कदम आपने आगे रख दिया है, उसे पीछे मत हटाओ। तभी आप विजयी होगे।

१४ : सोऽहं

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनो को सोऽह का पाठ पढाया गया और उस पर स्वतन्त्र विचार-अनुभव करने के लिए कहा गया।

दोनो शिष्यो मे एक उद्दण्ड स्वभाव का था। उसने साधना तो कुछ की नही और सोऽह—मैं ईश्वर हू, इस प्रकार कह कर अपने आप परमात्मा बन बैठा। वह अपने परमात्मा होने का ढिंढोरा पीटने लगा। जो मिला, उसी से कहा—

मैं ईश्वर हू । लोगो ने उसकी मूर्खता का इलाज करने के लिए उसके हाथो पर जलते अगारे रखने चाहे । तब वह बोला—है ! क्या करते हो ? हाथ पर अगार रखकर मुझे जलाना क्यो चाहते हो ?

लोगो ने कहा—"भले आदमी ! कही ईश्वर भी जलता होगा ?" फिर भी वह मूर्ख शिष्य अपनी मूर्खता को न समझ सका । वह अपने को ईश्वर कहता ही रहा । एक आदमी ने उसके गाल पर चाटा मारा । वह बोला—तुमने मुझे चाटा क्यो मारा ?

वह आदमी-मूर्ख ! कही ईश्वर के भी चाटा लगता है?

मगर उसकी मूर्खता का रग इतना कच्चा नही था । वह चढा रहा । वह लोगो के विनोद का पात्र बन गया । उससे अधिक वह कुछ न कर सका । पर दूसरा शिष्य साधना मे लगा । वह एकान्तवास करने लगा और सोचने लगा—मैं अनेक प्रकार के रूप देख रहा हू, यह आखों का प्रभाव है । मै अनेक काव्य सुनता हू, यह कानो की शक्ति है । नाना प्रकार के रसो का आस्वादन करना जिह्वा का काम है । किसी वस्तु का स्पर्शज्ञान होना हाथ-पैर आदि का काम है । मैंने जो गध सू घे हैं, सो नाक के द्वारा । अत अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुचता हू कि ये इन्द्रिया ही सोऽहं है ।

वह अपना निष्कर्ष लेकर प्रसन्न होता हुआ गुरुजी के पास पहुचा और गुरुजी से बोला—महाराज, मैंने सोऽहं का पता पा लिया है ।

गुरुजी—कैसे पता पा लिया ?

शिष्य—जो इन्द्रिया हैं, वे ही सोऽह है ।

गुरुजी—जाओ, अभी और साधना करो । तुम्हे अभी तक सोऽह का ज्ञान नही हुआ ।

शिष्य चला गया । उसने सोचा—मै अब तक सोऽहं का पता न पा सका । खैर, अब फिर प्रयत्न करता हू ।

वह फिर साधना में जुट गया । विचार करने लगा—गुरुजी ने कहा—इन्द्रिया सोऽहं नही है । वास्तव में इन्द्रिया सोऽह कैसे हो सकती है ? इन्द्रिया सोऽह होती तो अस्थिरता कैसी होती ? इन्द्रिया बचपन मे जैसी थी, आज वैसी कहां हैं ? इसके अतिरिक्त मैंने भूतकाल मे अनेक शब्द सुने थे । उनका आज भी मुझको ज्ञान है, यद्यपि वे वर्तमान मे नही बोले जा रहे हैं । भूतकाल में मैंने जो विविध रूप देखे थे, वे आज दिखाई नही दे रहे हैं । फिर भी उनका मुझे स्मरण है । अगर इन्द्रिया ही जानने वाली होती तो वर्तमान मे भूतकालीन विषयो को कौन स्मरण रखता ? इससे यह स्पष्ट जान पडता है कि इन्द्रियो से परे कोई ज्ञाता अवश्य है । तब फिर वह कौन है ?

उसने समस्या पर गहराई के साथ विचार किया । तब उसे जान पडा कि इन सब क्रियाओ मे मन की प्रेरणा रहती है । अतएव मन ही सोऽह होना चाहिए । इस प्रकार निश्चय करके वह गुरुजी के पास आया और बोला—गुरु महाराज, मैं सोऽह का मतलब समझ गया ।

गुरुजी—क्या समझे ?

शिष्य—यह जो मन है, वही सोऽह है ।

गुरुजी—जाओ और फिर साधना करो ।

शिष्य फिर चला गया । उसने फिर साधना आरम्भ की । सोचा—मन सोऽहं नही है । ठीक है । मन को प्रेरित करने वाला कोई और ही है । उसी का पता लगाना चाहिए । उसने बहुत विचार किया । तब उसे मालूम हुआ कि मन को बुद्धि प्रेरित करती है । इसलिए मन से परे बुद्धि सोऽह है । वह फिर गुरुजी के पास पहुचा और कहने लगा—गुरुजी, अब मैंने सोऽहं को समझ पाया है ।

गुरुजी—क्या है, बताओ ?

शिष्य—मन से परे बुद्धि सोऽह है ।

गुरुजी—वत्स, जाओ, अभी और साधना करो ।

बेचारा शिष्य फिर साधना में लगा । सोच-विचार के पश्चात् उसने स्थिर किया—गुरुजी ने ठीक ही कहा है कि बुद्धि सोऽह नही है । अगर बुद्धि सोऽहं होती तो उसमें विचित्रता-विविधता क्यो होती ? कभी वह विकसित होती है, कभी उसमें मंदता आ जाती है । कभी अच्छे विचार आते है, कभी बुरे विचार आते है । इससे जान पड़ता है कि बुद्धि के परे जो तत्व है, वही सोऽह है ।

शिष्य बडी प्रसन्नता के साथ गुरुजी के पास पहुंचा और बोला—महाराज, अब की बार सोऽह का पक्का पता लगा लाया हू ।

गुरुजी—क्या ?

शिष्य—जो गुह्य तत्व बुद्धि से परे है, जिसकी प्रेरणा से बुद्धि का व्यापार होता है, वह सोऽहं है।

गुरुजी—(प्रसन्नतापूर्वक) हा, अब तुम समझे। जो कुछ तुम हो, वही ईश्वर है। उसी को सोऽहं कहते हैं।

मित्रो ! आत्मा का पता आत्मा के द्वारा आत्मा को ही लग सकता है।

१५ : बेबुनियाद लड़ाई

चाद नाम का एक मुसलमान था। उसने अपनी बीवी से कहा—मैं एक भैंस लाऊगा।

बीवी बोली—बडी खुशी की बात है। मैं अपने पीहर वालो को भी छाछ भेजा करूंगी।

यह सुनना था कि मिया का पारा तेज हो गया। वे बिगडते हुए उठे और बीबी को लतियाने लगे।

बेचारी बीबी हैरान थी। उसकी समझ मे ही न आया कि मिया साहब क्यो खफा हो उठे हैं? उसने पूछा—

मियां, आखिर बात क्या है ? क्यो नाहक मुझ पर टूट पड़े हो ?

मिया गुस्से में पागल हो गये। बोले—राड कही की, भैंस तो लाऊंगा मैं और छाछ भेजेगी मायके वालो को ?

इसके बाद फिर तड़ातड, फिर तडातड़ !

लोग इकट्ठे हुए। उन्हे मिया के कोप का कारण मालूम हुआ तो उन्हे भी जब्त न रहा। उन्होने मिया को मारना आरम्भ किया। तमाचे पर तमाचे पडने लगे।

अब मियां की अक्ल ठिकाने आई। चिल्ला कर कहने लगे—खुदा के वास्ते माफ करो भाई, आखिर तुम लोग मेरे ऊपर क्यों पिल पड़े हो ?

लोगो ने कहा—तेरी भैंस हमारा सारा खेत खा गई है।

मिया—भैंस अभी मैं लाया ही कहा हू।

लोग—तेरी बीवी ने पीहर वालो को छाछ भेजी ही कहां है ?

मिया समझे। उन्हे होश आया। अपनी भूल समझ कर शर्मिन्दा हुए।

स्त्रीशिक्षा का कार्य जब आरम्भ होगा, तब होगा पर उसके विरुद्ध अभी से काना-फूसी होने लगी है। जो लोग ऐसा करते हैं वे उक्त मियाजी का दृष्टान्त चरितार्थ करते हैं।

एक ही बात नही, अनेक बातो में अक्सर इसी प्रकार बेबुनियाद लडाई-झगडा खडा हो जाता है और लाखो रुपया कचहरी देवी की भेंट चढ जाता है। बेचारे जज हैरान-परेशान हो जाते हैं पर आप लड़ते-लडते थकते नही।

१६ : मूल का सुधार

एक बाबाजी थली की ओर निकले। जगल का मामला था। बाबाजी को भूख-प्यास सता रही थी। ऊपर से सूरज अपनी कठोर किरणे फेंक रहा था। पर विश्रान्ति के लिए न कही कोई वृक्ष आदि दिखाई दिया और न पानी पीने के लिए जलाशय ही नजर आया। बाबाजी हाफते-हाफते कुछ और आगे बढे। थोडी दूर पर, रेतीले टीलो पर तुम्बे के फल की बेल दिखाई दी। बाबाजी पहले कभी इस ओर आये नही थे। इस कारण इसके गुणो और दोषो से अनभिज्ञ से। बाबाजी इन बेलो के पास आये और पीले-पीले सुन्दर फल देखे तो बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने सोचा—अब इनसे मैं अपनी भूख मिटाऊगा।

बाबाजी ने एक फल तोडा और मुह मे डाला। जीभ से स्पर्श होते ही उनका मुह जहर-सा कड़वा हो गया। उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। देखने मे जो फल इतना सुन्दर है, उसमे इतना कड़वापन ! मगर वे धुन के पक्के थे।

उन्होने सोचा—देखना चाहिए, फल में कटुकता कहां से आई है ? कटुकता की परीक्षा करने के लिए बाबाजी ने पत्ता चखा। वह भी कटुक निकला। फिर तन्तु का आस्वादन किया तो वह भी कटुक। अन्त में जड उखाड कर उसे जीभ पर रखी तो वह भी कटुक निकली। बाबाजी ने मन में कहा—जिसकी जड ही कटुक है उसका फल मीठा कैसे हो सकता है ? फल मीठा चाहिए तो मूल को सुधारना होगा।

१७ : अन्धापन

कहा जाता है, एक वार बादशाह ने अपने दरबारियो से पूछा—यहा अन्धे ज्यादा हैं या आख वाले ?

दरबारियो ने कहा—जहापनाह, यह तो साफ दीखता है कि अन्धे थोडे हैं और आख वाले ज्यादा है।

बादशाह इस उत्तर से सन्तुष्ट नही हुआ। उसने यही प्रश्न वजीर से किया। वजीर बोला—अन्धे ज्यादा है और आख वाले कम है। आख वाला तो हजारों-लाखो में कोई एक निकलेगा।

बादशाह ने कहा—तुम्हे अपनी बात सिद्ध करके बतानी होगी।

वजीर—ठीक है। मैं साबित कर दूंगा।

एक दिन वजीर बादशाह को जमना के किनारे ले गया। उसने वहाँ एक स्थान बैठने के लिए विशेष तौर से बनवाया था। उस स्थान पर बादशाह को तथा अन्य साथियों को बिठला कर वजीर अपने आप एक स्वांग ले आया। जब वह स्त्री बन कर आया, तब सब लोग उसे स्त्री कहने लगे। घडी भर स्त्री का स्वांग दिखाकर फिर वह पुरुष बन आया। तब सब लोग उसे पुरुष कहने लगे। इस प्रकार वजीर ने जितने स्वांग दिखाये, लोग उसे वैसा ही कहने लगे। अन्त मे वजीर अपने असली रूप मे आया। सब लोग कहने लगे—वजीर साहब तशरीफ लाये है।

वजीर ने बादशाह से कहा—हुजूर, देखिये, सब लोग अन्धे हैं कि नही ? मैं अभी कई-एक भेष बना कर आया था परन्तु मुझे किसी ने नही पहचाना। कोई भी मेरा असली रूप नही देख सका। सभी लोग मेरे ऊपरी भेष के अनुसार अनेक नामो से मुझे पुकारते रहे। अतएव इन सब को अन्धो की गिनती मे गिनना चाहिए। अब ये ही लोग मुझे वजीर कह रहे हैं, इसलिए ये भी अन्धे हैं। एक दृष्टि से देखा जाय तब तो मैं मनुष्य हूं और दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो मैं आत्मा हूं। स्त्री, पुरुष या वजीर हू, तब भी क्या मनुष्य से भिन्न हू ? मगर लोग असलियत नही देखते। मेरे खयाल से जो असलियत नही देखता, वह अन्धा है।

इसी दृष्टान्त के अनुसार लोग अपने आपको और दूसरो को स्त्री, पुरुष या बच्चा कहते हैं। मगर वास्तव मे

यह कथन ठीक नही है। स्त्री-पुरुष आदि तो आत्मा की औपाधिक पर्यायें हैं। आत्मा, ईश्वर है, यह बात ही सत्य है। लोग कड़े और कठी आदि को सोना कहना गलत मानते हैं और सोने को कडे कंठी आदि कहना सही समझते हैं। उस प्रकार आत्मा को ईश्वर मानना झूठ दिखाई देता है और गरीब, अमीर, पुरुष, स्त्री आदि मानना सत्य मालूम होता है। इसी भ्रम के कारण आत्मा ससार के झंझटो में पड़कर ईश्वर से दूर जा पड़ा है।

१८ : कर्त्तव्य-पथ

कबूतरो की एक टोली जंगल में विचर रही थी। इस टोली का नेता चित्रग्रीव था। वैज्ञानिक कहते है कि सर्वसाधारण जनता जिन्हे अपने से बड़ा मानती है, उनमे कोई असाधारण गुण होता है। इस कथन के अनुसार कबूतरो ने चित्रग्रीव में नेता योग्य गुण देखकर उसे अपना नेता बनाया था और उसकी सम्मति से सब साथ-साथ विचरते थे। विचरते-विचरते कबूतरो ने जगल मे चावल बिखरे देखे। एक पारधी ने चावल बिखर कर उनके ऊपर जाल फैलाया था। चावलो को देखकर कुछ कबूतर कहने लगे—"चलो, चावल पड़े है, उन्हे खाएं।" पर राजा चित्रग्रीव ने विचार कर कहा —

इस निर्जन वन में चावलो के दाने कहां से आये ? मुझे तो इन चावलो को खाने में कल्याण नही जान पडता । अतएव थोडी देर राह देखो, मैं जाच-पडताल कर आता हू ।

राजा चित्रग्रीव ने ऐसा कहा । परन्तु आज के युवक माने तो वे कबूतर माने ! ऐसे थे वे कबूतर ! राजा या नेता बना तो दिया जाता है, पर बहुत बार उसकी आज्ञा मानने मे कठिनाई प्रतीत होती है। इस प्रकार एक हठी कबूतर को राजा चित्रग्रीव का कथन रुचिकर न हुआ । वह बोला— विपदा के वक्त बूढो की बात माननी चाहिए । भोजन के समय बूढो की बात मानने से तो हानि होती है । यदि हम ऐसी शका करते रहेगे तो सभी जगह ऐसी शकाए उत्पन्न होगी और फल यह होगा कि तडप-तडप कर भूखो मरना पडेगा । आखो के आगे चावल पडे है, फिर भी चावल लेगे तो "यह होगा, वह होगा" इस तरह कार्य कारण, भाव का विचार करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? राजा की यह बात हमे तो जचती नही ।

आज के नवयुवक यह कहने लगते हैं कि हम यदि इन बूढो के कथनानुसार चलेंगे तो अणु मात्र भी सुधार न हो सकेगा । कबूतर भी यही कहने लगे । पर ऐसी परिस्थिति मे नेता का क्या कर्त्तव्य है, यह देखिए ।

चित्रग्रीव ने सोचा—"सब कबूतर एक-मत हो गये है । मैं इनके मत से विरुद्ध चलूंगा तो अनैक्य आ घुसेगा ।" इस प्रकार विचार कर उसने कबूतरो से कहा—"यदि सभी का विचार चावल खाने का है, तो चलो । भूख तो मुझे

भी लगी है । चित्रग्रीव ने यह नही कहा कि तुम लोग मेरी बात नही मानते तो तुम जानो, तुम्हारा काम जाने । मैं तो तुमसे अलग ही रहूगा । चित्रग्रीव को भली-भाति ज्ञात था कि यहा सकट है, फिर भी उसने सोचा—सकट–काल में मुझे सब के साथ रहना चाहिए । यही मेरा कर्त्तव्य है । जव सिर पर सकट आ पडेगा, तब आप ही मेरी बात मानेगे ।

यह विचार कर राजा भी सब कबूतरो के साथ चल दिया । कबूतरो ने चावल के दाने तो खाये, पर सब के पैर जाल मे फस गये । वे उडने में असमर्थ हो गये । अब सभी कबूतर उस जवान कबूतर को कोसने लगे कि तूने राजा की आज्ञा नही मानी और सबको जाल मे फसा दिया । राजा ने सबको सान्त्वना देते हुए कहा—जो होनहार था, सो हो गया है । अब उसे कोसना छोडकर जाल में से छुटकारा पाने का उपाय खोजो । उपालम्भ देने से काम नही चलने का ।

राजा की यह बात सुनकर सब कबूतर कहने लगे—आप ही इसका कोई उपाय बताइए । राजा बोला—"तो मेरी वात सब लोग मानोगे न ?" सब ने कहा—"पहले आपकी बात न मानने का कटुक फल यह भोगना पड़ रहा हैं । अब आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे और आप जो आज्ञा देंगे, वही करेंगे ।"

सकट एक शिक्षाप्रद वोध-पाठ है । राजा ने कहा—यदि सब एक-मत हो जाओ तो हम सकट से मुक्त हो सकते है । एक भी कबूतर अगर अलग रहा तो संकट से मुक्त न

हो सकेंगे। अतएव सब हिलमिल कर एक साथ उडो और इस जाल को साथ ही साथ उठाओ तो जाल से मुक्ति पाई जा सकेगी।"

आज भारत मे फूट है और इसी फूट के कारण पारधियो की बन पडी है। फूट न होती तो भारत किसी के जाल मे न फसता।

सब कबूतर मिलकर एक साथ जाल को लेकर आकाश में उड चले। कबूतरो को उड़ते देख पारधी उनके पीछे-पीछे दौड़ा और सोचने लगा—मैं इन कबूतरो को अपने जाल मे फसाना चाहता था, पर ये तो मेरे जाल को लेकर चलते बने। इस समय यह सब एक मत हो रहे है, पर जब इनमे फूट पडेगी तब सारे नीचे आ गिरेगे। यह सोच कर पारधी कबूतरो के पीछे-पीछे भागने लगा। पारधी को पीछा करते देख राजा ने कहा—देखो पीछे अपना शत्रु आ रहा। अतएव आपस मे झगड़ना नही और यह न सोचना कि उडने मे सब अपने बल का उपयोग कर रहे है तो मैं अपने बल का उपयोग क्यो करूं? यदि आपस मे लडोगे-झगडोगे या एक-दूसरे को सहकार न दोगे, तो हम सभी नीचे गिर पडेगे, काल का ग्रास बन जायेगे। राजा की यह चेतावनी सुनकर सब कबूतर मिल कर उड़ने लगे। पारधी थोडी दूर तो पीछे-पीछे दौडा पर अन्त मे वह थक गया और वापस लौट गया। पारधी को वापिस लौटा देखकर कबूतरो ने राजा से कहा—शत्रु तो लौट रहा है, अब हमे क्या करना चाहिए? राजा ने कहा—हम लोग एक आपत्ति से मुक्त हो गये हैं, पर अभी जाल से मुक्त होना बाकी है।

जाल को तोडने की शक्ति हम लोगो मे नही है। यह शक्ति जमीन खोदने वालो में ही होती है । अतएव हम आगे उडते चले । हम तो सिर्फ उड़ना जानते है, हमे जाल काटना नही आता !

आज स्वतन्त्रता तो सभी चाहते है किन्तु जो लोग आकाश मे स्वैर–विहार करने की तरह केवल लम्बे-चौडे भाषण ही करना जानते हैं, उनसे परतन्त्रता का जाल कट नही सकता । परतन्त्रता का जाल तो जमीन को खोदने वाले किसान ही काट सकते हैं ।

राजा ने कबूतरो से कहा—गडकी नदी के किनारे हिरण्यक नामक मेरा एक मूषक (चूहा) मित्र रहता है । हालाकि मैं कबूतर हू और वह चूहा है, फिर भी वक्त-बेवक्त कभी एक दूसरे को सहायता पहुचा सके, इस उद्देश्य से हमने आपस मे मित्रता की है । अतएव हम सब उसके पास चलें, तो वह इस जाल के बन्धनो को काट डालेगा और हम लोगों को बन्धन–मुक्त कर देगा ।

सब कबूतर उड़ते–उडते गडकी नदी के किनारे आ पहुचे । जाल के साथ कबूतरों को उड़ते आते देख हिरण्यक अचकचा गया । सोचने लगा—यह कौनसी आफत आई है ! लेकिन उसने अपने बिल मे सौ द्वार बना रखे थे, इसलिए कि आपत्ति आने पर किसी न किसी द्वार से निकल कर बाहर हो सके । कबूतरो को देखकर वह चट से अपने बिल मे घुस गया ।

हिरण्यक के बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने कहा—

"मित्र हिरण्यक ! बाहर निकलो, मैं तुम्हारा मित्र हू ।" मित्र की आवाज पहचान कर हिरण्यक बाहर निकला और चित्रग्रीव से कहने लगा—"तुम इतने बुद्धिमान् हो, फिर जाल मे कैसे फस गये ?" राजा ने उत्तर दिया—यह तो समय की बलिहारी है । राजा ने यह नही कहा कि इन कबूतरो ने मेरा कहना नही माना, इस कारण जल मे फस गये । हिरण्यक यह सुनकर चित्रग्रीव मित्र का जाल काटने के लिए उसके पास आया । पर चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! पहले मेरे इन साथियो के बन्धन काटो । चित्रग्रीव चाहता तो पहले अपने बन्धन कटवा सकता था । पर उसने ऐसा न करते हुए अपने बन्धन काटने का आदेश नही दिया । हिरण्यक ने कहा—मित्र ! मैं बहुत छोटा प्राणी हू । मैं इन सबके बन्धन कैसे काट सकू गा ! मेरे दात भी इतने मजबूत नही है कि सबके बन्धन काट सकूं । अतएव पहले तुम्हारे बन्धन काट देता हू । इसके बाद यदि मेरे दातो मे शक्ति होगी तो दूसरो के भी काट दूंगा ।

हिरण्यक की बात चित्रग्रीव ने स्वीकार न की । नीति कहती है—

आपदर्थे धन रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मान सतत रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥

भावार्थ—आपत्ति के समय के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए और धन का त्याग करके भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, परन्तु आत्म-रक्षण के समय स्त्री की या धन की हानि का भी खयाल नही करना चाहिए । जब

नीति यह कहती है तो चित्रग्रीव ने अपने बन्धनो को पहले क्यो नही कटवा लिया ? उत्तर यह है कि नीति भले ही ऐसा विधान करती हो, पर धर्म तो कुछ और ही बतलाता है। हिरण्यक ने अपने मित्र को जब यह नीति बतलाई तो राजा ने कहा—

नीति भले ही ऐसा विधान करती हो, पर मैं तो नीति से आगे बढ गया हू। नीति मस्तक की उपज है, जब कि धर्म हृदय से अद्‌भुत होता है। नीति अपने आश्रितों की परवाह न करके अपनी रक्षा करने का उपदेश देती है, पर धर्म वतलाता है कि स्वय कष्ट-सहन करके भी दूसरो को सुखी बनाओ! राजा ने कहा—मै तो धर्म का पालन करूगा। प्रिय मित्र! मैं तुम्हारे ऊपर अधिक वोझ लादना नही चाहता। तुम मे जितनी शक्ति हो, उसी के अनुसार मेरे इन आश्रितो के वन्धन काटो।

धर्म का यह विधान है कि दूसरो ले लिए धन और यहा तक कि जीवन का भी उत्सर्ग कर देना चाहिए, जब कि नीति स्वय अपना रक्षण करने के लिए कहती है।

धर्म और नीति मे यही अन्तर है। धर्म कहता है—"लीजिए", नीति कहती है—"लाये जाओ।" नीति स्वार्थ पर नजर रखती है, धर्म परमार्थ की ओर सकेत करता है। जिस प्रकार माता का धर्म बालक को चूमना, पुचकारना ही नही है, किन्तु वालक का पालन-पोपण करना भी है, इसी प्रकार आगे वढते जाइये और इस नीति द्वारा धर्म को हृदय मे स्थान देते चले जाइए।

चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! जब मैं राजा हू तो राजा की हैसियत से अपने आश्रितो की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है या नही ? मित्रता की खातिर तुम्हारा भी यह कर्त्तव्य है कि पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काट कर फिर मेरे बंधन काटो । मित्र ! पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काटकर मेरे इस भौतिक शरीर के बदले मेरे यश रूपी शरीर की रक्षा करो । यह भौतिक शरीर नाशवान् है, जब कि यश अविनश्वर है । अतएव हे मित्र ! मेरे भौतिक शरीर का भोग देकर भी यश-शरीर को बचाओ ।

आज के वृद्ध भी स्वार्थ मे डूबे हैं । इसलिए वृद्धो का कर्त्तव्य भी युवको को बताना पडता है ।

मित्र की यह बात सुनकर हिरण्यक को अत्यन्त आनन्द हुआ । उस हर्ष के आवेश मे उसने सब कबूतरो के बन्धन काट फेंके । हिरण्यक चित्रग्रीव से कहने लगा—मित्र ! तुम्हारे उन्नत और उज्ज्वल गुण तुम्हे तीन लोक का स्वामी बनाने के लिए पर्याप्त है । वास्तव मे त्रिलोकपति वह है, जो स्वय कष्ट-सहन करके दूसरो को कष्ट से बचाता है । यही मानव-धर्म है । स्वय आपत्तियो को झेलकर दूसरो को सुख-शान्ति पहुचाना ही मानव-धर्म है ।

हिरण्यक ने सबके बन्धन काटकर चित्रग्रीव के बन्धन काटे । राजा ने सब कबूतरो से कहा—जो हुआ सो हुआ । "बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहु ।" अब उसे याद न करना, अन्यथा परस्पर मे लडाई होगी ।

हिरण्यक ने कहा—"मैं आपका क्या सत्कार करू ? मेरे पास इतनी भोजन सामग्री भी नही है कि आप सब को भोजन करा सकू ?" राजा ने उत्तर दिया—"भोजन देना

कोई बड़ा काम नही है। तुमने हमें बन्धनो से मुक्त कर दिया है तो अब खाने की क्या चिन्ता है ?"

इसी प्रकार आप भी दूसरो को कष्टो से मुक्त करने का प्रयत्न करो और ऐसा चिन्तन करते रहो कि मैं स्वयं कष्ट झेलकर भी दूसरो को सुखी बनाऊ ! प्राणी–मात्र को आत्म–तुल्य समझू । इसके लिये परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करो.—

दयामय ! ऐसी मति हो जाय ।
औरों के सुख को सुख समझू, सुख का करूं उपाय ।
अपना दु ख मैं सहू किन्तु पर-दु ख न देखा जाय ।

दूसरो को कष्ट से मुक्त करने लिये तुम स्वय कष्ट सहिष्णु वनो, दूसरो के सुख में अपना सुख समझो ।

१९ : मोह का छाला

किसी राजा के हाथ में एक छाला हो गया । उस छाले का नाम मोती–छाला था और वह वडा विषैला था । चिकित्सको ने राजा से कहा—अगर शस्त्र से इसकी चीर–फाड की गई तो आपका बचना कठिन होगा । यह छाला अगर हस की चोच से फूटे तो अच्छा हो जायगा ।

राजा ने चिन्तित होकर कहा—हस मिले और वह छाले को फोडे, ऐसा योग कब और कैसे मिलेगा ?

चिकित्सको ने कहा—उद्योग करने वालो के लिए कोई बात असम्भव नही है। राजहस के मिलने का उपाय हम वतलाते हैं।

राजा के पूछने पर चिकित्सक ने कहा—समुद्र के किनारे, ऊंची छत पर एक तख्ता कटवाकर आप उसके नीचे सो रहिये। कटे हुए तख्ते के नीचे हाथ इस प्रकार रखिये कि केवल छाला ही वाहर दीखे—आपका शरीर और शेप हाथ भी तख्ते के वाहर न दिखाई पडे। उस छाले के आस-पास मोती विखेर दीजिए और वहाँ अन्य पक्षियो का भोजन रख दीजिये, जिससे अन्य पक्षी भी वहा एकत्र हो जावे। पक्षियो को देखकर पक्षी आते हैं। इस उपाय से, सम्भव है, राजहंस भी आ जावे और अपनी चोच से, मोती समझकर आपका छाला भी फोड दे।

मरता क्या न करता! इस कहावत के अनुसार राजा ने ऐसा ही किया। संयोग से अन्यान्य पक्षियो की तरह एक दिन राजहस भी वहा उतर आया। मोती समझकर उसने छाले मे चोच मारी। छाला फूट गया। राजा को अत्यन्त शान्ति का अनुभव हुआ।

राजा को अन्य पक्षियो से प्रयोजन नही था। उसे केवल राजहस की अपेक्षा थी। मगर यदि वह उदारता से काम न लेता—अन्य पक्षियो को दाना न देता, या उनके आने पर उन्हे मार भगाता, तो क्या राजहस उसके पास फटकता?

"नही!"

राजा को जैसा छाला था, वैसा ही छाला आपको मोहनीय कर्म का है। मोहनीय कर्म रूपी विषैले छाले को फोड़ने के लिए आपको महानिर्जरा रूपी चोच की आवश्यकता है और वह भी साधु रूपी राजहस की चोच होनी चाहिए। लेकिन जैसे राजा अगर अन्य पक्षियो को भगा देता तो राजहस उसके पास न आता, इसी प्रकार आप अपने घर आये अतिथि—भिखारी का अपमान करके केवल सुपात्र साधु की इच्छा करोगे तो साधु कैसे आएगे ? पक्षी को उडाते देख दूसरा पक्षी भी उड जाता है। इसी प्रकार साधु जब आपको अन्य अतिथियो—भिखारियो का अपमान करते देखेगा तो वह आपके यहा क्यो आएगा ?

२० : फकीरी और अमीरी

अरब के रेतीले मैदान मे एक फकीर घूम रहा था। प्रथम तो ग्रीष्म-ऋतु थी, जिस पर दोपहर का सूरज आकाश से आग बरसा रहा था। पृथ्वी तवे की तरह तपी हुई थी। फिर भी फकीर अपनी मस्ती में ऐसे घूम रहा था, मानो किसी शीतल उद्यान मे भ्रमण कर रहे हो।

किसी आवश्यक कार्य से, एक आदमी उधर होकर निकला। अमीर ऊट पर सवार था। खाने-पीने का सामान

उसके साथ था। अमीर के पीछे उसी ऊट पर उसका एक नौकर बैठा था। उसके बाये हाथ मे छाता था और दाहिने हाथ मे पखा। अमीर महाशय को धूप और गर्मी से बचाने के लिए नौकर पूरा उद्योग कर रहा था। उत्तम वस्त्र और आभूषण अमीर की शोभा बढा रहे थे।

अमीर की नजर मस्त फकीर पर पडी। उसने कहा—यह भी कोई आदमी है! कैसा बदशक्ल और मनहूस है! इसे अपनी जिन्दगी की भी चिन्ता नही है। धूप में बिना कपडा-लत्ता, बिना छाता, प्रेत की तरह घूम रहा है!

अमीर की उत्सुकता बहुत बढ गई। उसने फकीर को रोका और पूछा—तू कौन है? फकीर ने लापरवाही से उत्तर दिया—जो तू है, सो मैं हू।

अमीर की त्यौरिया चढ गई। यह नाचीज मेरी बराबरी करता है? उसने क्रोध से कहा—मनुष्यता का कोई चिह्न तो तुझ में नजर नही आता, अलबत्ता तू मनुष्य को बदनाम करता है। तुझ जैसे बेवकूफ फकीरो ने ही दुनिया को दु खी बना रखा है। तेरी जिन्दगी से तो तेरी मौत बेहतर है। मौत आ जाय तो मनुष्यो का एक कलंक कम हो जाय।

अमीर लोग मनुष्यता को शायद वस्त्रो और आभूषणो से नापते हैं। अगर मनुष्यता को नापने का यही गज न हो तो वे मनुष्यता की प्रतिस्पर्धा मे बहुत पिछड़ जावे। इसी कारण उन्होने यह गज मान लिया है। उनकी निगाह मे वह मनुष्य निरा जगली पशु है, जिसके पास पहनने को कपड़ा नही और सजने को आभूषण नही। मगर बात उलटी है।

जिनके पास मनुष्यता का वहुमूल्य आभूषण है, उन्हे जड़ आभूषणो की क्या आवश्यकता है ! जिन्हे मनुष्यत्व का वास्तविक और सहज आभूषण प्राप्त नही है, वही लोग ऊपरी आभूषण लादकर अपने आपको आभूषित घोषित करते है ।

अमीर की वात के उत्तर मे फकीर ने कहा—"हम क्यो मरे ! मरेंगे तो अमीर मरेंगे ।"

अमीर ने फकीर को फटकार बताई और सामने से हट जाने को कहा । फकीर पहले की तरह, मस्त भाव से चल दिया ।

थोडी ही देर हुई थी कि वडे जोर की आंधी आई । आंधी मे छाता उड गया और छाता उड़ने के कारण ऊंट भडक उठा । ऊंट भडकने से अमीर और उसका नौकर धडाम से धरती पर आ गिरे । दोनो की मृत्यु हो गई ।

आंधी जव थम गई तो वही फकीर घूमता-घामता उधर से आ निकला, जहा अमीर और उसका नौकर मरा पडा था । फकीर ने अमीर की लाश को पैर की ठोकर लगाते हुए कहा—साली अमीरी ! तूने मेरे दोस्त को इतनी जल्दी मार डाला ! वह था तो मुझ-सा ही मनुष्य, पर वात की वात मे उसके प्राण ले लिये ।

फकीरी इस तरह खुदा को प्यारी हैं । सब लोग फकीर नही हो सकते, मगर इतना तो सभी कर सकते हैं कि वे फकीर की निन्दा न करे ।

❀❀

२१ : धार्मिक की पहिचान

किसी भी प्राणी को दु खी देखकर, हृदय उस दु ख को अपना ही अनुभव करने लगे—हृदय मे सहानुभूति की भावना उमड उठे, तो समझना कि मेरे हृदय मे दया विराजमान है । जो मनुष्य दु खी जन को देखकर उपेक्षा-पूर्वक कहता है—"अपने किये का फल भोग रहा है । इसके और इसके किये के बीच मे पडने की मुझे क्या जरूरत है ?" उसके दिल मे दया का वास नही है । ऐसा विचार आना एक प्रकार की निर्दयता है—क्रूरता है, अधार्मिकता है । खेद है कि आजकल कुछ भाई धर्म के नाम पर इस निर्दयता का पोषण करते है । वे इस दया को मोह-अनुकम्पा कहकर त्याज्य ठहराते है । वास्तव मे पुण्यवान् पुरुष ही दया-धर्म का पालन कर सकता है । एक उदाहरण से यह स्पष्ट होगा—

कहते है, काशी मे एक मेला था । विश्वनाथ के मन्दिर मे सोने का एक थाल आया । किसी देवता ने वह थाल मन्दिर मे रख कर आवाज दी—जो सब से बडा भक्त हो, उसे यह थाल उपहार मे दिया जाय । सबसे बडे भक्त की पहचान यह है कि भक्त का हाथ लगने से थाल देदीप्यमान हो उठेगा और जो सच्चा भक्त न होगा, उसका हाथ लगने से यह लोहे या पीतल का दिखाई देगा ।

थाल को देखकर विश्वनाथ के पडे काप उठे । उन्होने सोचा, यह थाल हमे हजम नही हो सकेगा । इसे किसी को

दान मे ही दे डालना चाहिए । यह सोचकर एक पण्डे ने, ऊचे स्थान पर खड़े होकर थाल का हिसाब बताया ।

एक तो सोने का थाल हाथ लगता है और दूसरे सबसे बड़े धर्मात्मा की पदवी मिलती है । भला किसका मन न चलता ! सबके मुह मे पानी भर आया । सभी थाल लेने दौड पडे ।

मेले मे एक सेठ लाखो का दान करने वाला आया था । उसे अपने दान का बडा अभिमान था । वह समझता था—मुझ-सा दानी-धर्मात्मा कोई है ही नही । वह पुजारी के पास आया और अपने दान-धर्म का बखान करके थाल पाने का अधिकारी बताने लगा । लेकिन पुजारी ने जैसे ही उसके हाथ मे थाल दिया कि थाल काला पड गया । थाल काला होते ही सेठजी का चेहरा भी काला हो गया । वह मन ही मन लज्जित हुआ, पछताया और नीची निगाह किये चलता बना ।

उसके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा और पाचवा व्यक्ति आया । किसी को अपने तप का अभिमान था, किसी को अपने चरित्र पर नाज था । कोई अपने दान के अभिमान मे डूबा था और कोई ठाकुरजी की भक्ति के अहकार मे चूर था । सभी ने थाल को हाथ मे लिया, पर थाल ने सबकी पोल खोल दी । थाल काला पड गया । जब इन्होने थाल को यथास्थान रखा तो पहले की तरह चमकने लगा ।

एक गरीब किसान कन्धे पर हल लादे खेत की तरफ जा रहा था । रास्ते मे उसने एक मूर्च्छित मनुष्य को पडा

देखा। कृषक स्वभाव से दयालु था। उसे दया आ गई। वह उसके पास गया, उसे उठाया और बडे यत्न के साथ अपने झौपडे मे ले गया। वहा उसने अपनी गाय दुह कर उसे ताजा दूध पिलाया, शीतल उपचार किया। तब उसकी मूर्छा हटी। मूर्छा हटते ही उसने कृषक से पूछा—"भाई, तुम कौन हो ?"

कृषक ने कहा—मैं एक गरीब किसान हू। इसी झौंपडे मे रहता हू। इसके सिवाय मेरा और कोई परिचय नही है।

किसान की सरलता से अजनवी मुग्ध हो गया। बोला—"मेले मे मेरे कई जान-पहचान वाले है, कई सबधी भी है। उनमे से किसी ने मुझे सम्भाला नही। तुमने विना किसी जान-पहचान के ही उठा लिया और जीवन दिया। मैं उपकार का बदला कैसे चुका सकू गा।"

कृषक ने कहा—"मैंने अपना कर्त्तव्य पाला है। कर्त्तव्य-पालन मे बदला लेने की प्रभावना नही होती। आप कृपा करके मुझे किसी प्रलोभन मे न डालिये। आपकी सेवा से मुझे जो सन्तोष और सुख हुआ है, वही मेरे कर्त्तव्य का उपयुक्त पुरस्कार है। सेवा को आजीविका बनाना मुझे नही रुचता और आप कहते है कि तुम्हारा हमारा कोई नाता नही, सो वास्तव मे ऐसी बात नही है। आपके साथ मेरा ठाकुरजी के द्वारा नाता है। आप मेरे भाई हैं। मैं अपने एक भाई को बेहोश पडा छोड जाता तो मेरी मनुष्यता मुझे छोड़ जाती।"

अजनवी जब स्वस्थ हो गया, तब किसान खेत पर जाने को उद्यत हुआ। परन्तु वह भी किसान के पीछे-पीछे चला। "किसान बडा धर्मात्मा है", "इस किसान के मुकाबिले का कोई धर्मात्मा नही है", इस प्रकार चिल्लाता-चिल्लाता वह चलता चला। किसान ने कहा—"भाई मेरे, तुम क्यो वृथा चिल्लाते हो ! मैंने कोई बडा काम नही किया है। मैं एक मामूली गरीब किसान हू। "इतने पर भी अजनवी न माना और चिल्लाता ही चला गया।"

लोगो ने चिल्लाहट सुनी तो दग रह गये। किसी ने पूछा—इसने धर्म का कौनसा काम किया है ? उसने उत्तर दिया—"मनुष्य के प्राण बचाये है।"

आखिर दोनो उधर से निकले, जहा पुजारी थाल देने के लिये खडा था। उस मनुष्य ने कहा—"पुजारीजी, थाल इन्हे दो। थाल के सच्चे अधिकारी यही है।"

पुजारी ऐंठ कर बोला—ऐसे एरे-गैरे के लिए यह थाल नही है। यह एक मामूली किसान है। खेत जोत कर पेट भरता है। यह सबसे बडा धर्मात्मा कैसे हो सकता है ?

वह वोला—"तो जाच कर लेने मे हानि ही क्या है ? तुम्हारे पास धर्मात्मापन की पहचान तो है ही। भले ही यह किसान तिलक-छापा नही लगाता, मन्दिर मे आकर अपनी भक्ति की घोषणा नही करता, फिर भी है यह बडा धर्मात्मा है। एक बार थाल हाथ मे देकर देख तो लो !"

पुजारी ने किसान को थाल लेने के लिये बुलाया।

किसान सकोच मे पड गया । वह थाल लेने से इन्कार करने लगा । जो इन्कार करता है, उसे सभी देना चाहते हैं । सभी लोग आग्रह करने लगे । पुजारी ने उसके हाथ पर थाल रख दिया । किसान के हाथ में आते ही थाल एकदम दैदीप्यमान हो उठा, मानो दया का तेज थाल मे से फूट पडा हो ।

लोग दग रह गये । एक स्वर से सभी उसकी सराहना करने लगे । लोगो को जिज्ञासा हुई—"इसने क्या धर्माचरण किया है ?" किसान के साथी ने किसान की मानव-दया का वर्णन करके सव का समाधान किया ।

२२ : अन्याय का धन

एक वकील साहव की पत्नी वडी सुशीला और धर्म-भीरु थी । एक दिन वकील भोजन करने बैठे और उसी समय एक सेठ आया । सेठ को वकील ने एक मुकदमें मे जिताया था । उसने आते ही वकील साहव के सामने पचास हजार के नोट रख दिये । वकील समझ गये मगर अपनी पत्नी के आगे रौव जमाने के लिये पूछने लगे—"ये नोट किस वात के है ?"

सेठ ने कहा—"वकील साहब, मुकदमे मे मेरा पक्ष सरासर झूठा था। जिसे मुझे देना था, उससे आपने मुझे उल्टा दिलवाया है। मुझे आपके बुद्धिकौशल के प्रताप से लाखो की सम्पत्ति मिली है। उसी के उपलक्ष्य मे यह तुच्छ भेंट आपकी सेवा मे उपस्थित की गई है।"

वकील के हर्ष का पार न रहा। वह अपनी बुद्धि के अभिमान मे फूला न समाया। सोचा—कैसी प्रखर बुद्धि है मेरी ! मैं सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा प्रमाणित कर सकता हू।

वकील ने अभिमान भरी आखो से अपनी पत्नी की ओर देखा तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उसकी आखो से अश्रुधारा का प्रवाह फूट रहा था। वकील साहव ने पूछा—"हसने के समय यह रोना कैसा ? तुम रो क्यों रही हो ?"

पत्नी ने कहा—इसमे खुशी की क्या बात है ? क्या आप इसी प्रकार के अन्याय की रोटी हमे खिलाते है ? क्या इसी कमाई से ये जेवर बनाये गये है ? क्या मेरी प्राण-प्यारी सन्तान के उदर मे यही अन्याय का अन्न गया है ? मुझे इस सुख-विलास की आवश्यकता नही है। मुझे आभूषणो की परवाह नही है। मैं भूखी रहना पसद करूंगी, नगी रहना कवूल करूगी, मगर अन्याय के धन से दूर रहूगी। ससार में कोई अजर-अमर होकर नही आया। एक दिन सव छोडकर जाना होगा। फिर पैसे के लिए ऐसे पाप क्यो ? आप अपनी प्रखर बुद्धि का झूठे को सच्चा

वनाने मे उपयोग करते है, यह कल्पना ही मेरे लिए असह्य है । फिर यह तो सच्चाई वन गई है । इसे मैं किस प्रकार सहन करू ?

वकील साहव ने अपनी पत्नी की वाते सुनी तो उनकी अक्ल ठिकाने आ गई ।

वहिनो को चाहिए कि वे इस वकील-पत्नी का अनुकरण करे । पति अन्याय से धन उपार्जन करता हो तो नम्रता से, मगर दृढतापूर्वक प्रार्थना करो—हमे अधिक आभूषणो की आवश्यकता नही है । हम विषय—विलास पसन्द नही करती । आप घर मे अन्याय की दमडी भी न लाइये । वहिनो, अगर तुम इस नीति को अपनाओगी तो इस लोक और परलोक मे तुम्हारा और साथ ही तुम्हारे पति का भी कल्याण होगा । इससे तुम पति के प्रति भी अपना कर्त्तव्य पालन करोगी ।

२३ : सरलता

लोग वालक को वुद्धिहीन और मूर्ख समझ कर उसकी उपेक्षा करते है । परन्तु वालक जैसे निरहकार होते है, वैसे अगर आप वन जाए तो आपका वेडा पार हो जाए । वुद्धि—मत्ता का ढोग छोडकर अगर आप अपने अन्त करण मे

बाल-सुलभ सरलता उत्पन्न कर ले तो कल्याण आपके सामने उपस्थित हो जाय। बालक का हृदय कितना सरल होता है, यह बात एक दृष्टान्त से समझिये—

एक मुहल्ले मे आमने-सामने दो घर थे। उन दोनों घरो मे देवकी और यशोदा नाम की दो लड़किया थी। देवकी और यशोदा नही जानती थी कि हम देवकी और यशोदा है, पर उनके माता-पिता ने उन्हे यही नाम दे दिये थे। फागुन का महीना था। दोनो बालिकाओ के मा-बाप ने उन्हे अच्छे-अच्छे कपडे पहनाये थे। बच्चो को स्वभावतः घर प्यारा नही लगता। वे बाहर घूमना-फिरना और खेलना बहुत पसन्द करते है। शायद अपने शरीर का निर्माण करने के लिए उन्हे प्रकृति से यह अव्यक्त प्रेरणा मिलती है। अगर बालको की तरह आप भी घर से उतना प्रेम न रखें तो आपको पता चलेगा कि इसका परिणाम कितना अच्छा होता है।

देवकी और यशोदा कपडे पहनकर अपने-अपने घर से बाहर निकली। वर्षा होकर बन्द हो चुकी थी किन्तु पानी गलियो मे अब भी बह रहा था। देवकी और यशोदा उसी बहते पानी मे खेलने लगी। दोनो ने पानी मे अपने-अपने पैर छपछपाये। पैरो के छपछपाने से कीचड भरा पानी उछला और कपडो पर धव्वे पड गये। दोनो के कपडो पर धव्वे पड गए है, यह देखकर दोनो एक दूसरी को आपस मे उलाहना देने लगी। उलाहना देती हुई वे अपने-अपने घर लौटी। कीचड से भरे कपडे देखकर और बालिकाओं का आपस मे उलाहना देना सुनकर दोनो घर वाले झगडने लगे।

यद्यपि झगडे का कोई ठोस आधार नही था और अगर दोष समझा जाय तो दोनो बालिकाओ का दोष बराबर ही था, परन्तु दोनो के मा-बाप के दिल में पहले की कोई ऐसी बात थी कि उन्हे लडने का बहाना मिल गया। दोनो ओर से वाग्ययुद्ध हो रहा था कि इतने मे एक वृद्धा वहा आ पहुची। उसने दोनो घर वालो से हाथ जोडकर कहा—आज होली का त्यौहार है। आनन्द मनाने का दिन है। प्रसन्न होने का अवसर है। फिर आप लोग आपस में एक-दूसरे की होली क्यो कर रहे है ? आप दोनो पडौसी है। एक के बिना दूसरे का काम नही चल सकता। दोनो लडकिया खेल रही थी। एक के कूदने से दूसरी के कपड़े गन्दे हो गये तो कौन बडी बात हो गई ? इन नादान बच्चो के पीछे आप बडे-बडे क्यो झगडते हैं ? इससे आपकी ही हंसी होती है।

वृद्धा के बहुत समझाने पर भी वे न माने। लडाई का जोश इतना तीव्र था कि बुढिया की बात सुनने की किसी ने परवाह न की। खूब तपे हुए तवे पर पानी के कुछ बूद कोई असर नही करते। इसी प्रकार तीव्र क्रोध के उत्पन्न होने पर शान्ति की बात व्यर्थ हो जाती है।

इधर दोनो घर वाले झगड रहे थे, उधर मौका देख कर दोनो लडकिया फिर घर से बाहर निकल पडी। वे वहा पहुची, जहा पानी बह रहा था। बहते-पानी को रोकने के लिए दोनो ने मिलकर रेत का बाध बनाया। पानी रुक गया। रुके पानी में दोनो लडकियो ने घास का तिनका या लकडी का टुकडा डाला। उसे पानी मे तैरते देखकर दोनो

उलछने लगी । एक ने कहा—देख, देख मेरी नाव तैर रही है ! दूसरी ने कहा—और मेरी भी तैर रही है । देख ले न !

सयोगवश वह वृद्धा उधर से निकल पडी । उसने देखा—इन लडकियो को लेकर उधर झगडा मच रहा है, सिरफुटौवल की नौबत आ चुकी है और इधर ये मस्त होकर खेल रही है । उसने झगडने वालो के पास जाकर कहा—अरे झगडना बन्द करके एक तमाशा देख लो ! पडौसी हो, चाहोगे तभी झगड लोगे, मगर यह तमाशा चाहे तब नही देख पाओगे । आओ मेरे साथ चलो ।

तमाशे की बात प्यारी लगती ही है । फिर बुढिया के कहने का ढग भी कुछ आकर्षक था । अत झगडने वाले बुढिया के पीछे-पीछे हो लिये और वहा पहुचे जहा दोनो वालिकाए अपनी-अपनी नाव तैरा रही थी । दोनो घर वालो को दिखाते हुए बुढिया ने कहा—यह तमाशा देखो, पानी मे लकडियो के टुकडे तैर रहे है । दर-असल यह नाव है !

एक झगडने वाले ने कहा—यह कौनसा तमाशा हुआ ? तैराई होगी किसी ने !

वृद्धा—और किसी ने नही, यशोदा और देवकी ने तैराई है । इतना कहकर उसने लडकियो से पूछा—इनमें कौन किस की नाव है बेटियो ! जरा बताओ तो सही ।

दोनो ने साथ-साथ उत्तर दिया—यह मेरी है, यह मेरी है !

तव मुस्कराती हुई वृद्धा ने कहा—देखो, दोनो लडकिया इकट्ठी हो गई है और जिनको लेकर तुम लड रहे हो वे लडकिया भी मिल गई है । अब तुम कव मिलोगे ? यह तो नादान वालक होकर भी मिल गई और तुम समझदार होकर भी झगडते रहोगे ! वृद्धा की समयोचित शिक्षा से दोनो घर वाले शर्मिन्दा हो गये । उनकी लडाई समाप्त हो गई और मेल-मिलाप से रहने लगे ।

मित्रो ! वालक लड-झगड कर एक हो जाते है, इसी प्रकार अगर आप लोग भी आपस मे एकतापूर्वक रहे तो कैसा आनन्द हो ? एकता आपको इतनी शक्ति प्रदान करेगी कि आप अपने को अपूर्व शक्तिशाली समझने लगेगे । मगर वडे लोगो की लडाई भी वडी होती है । वे लडकर आपस मे मिलते तक नही है । यहा तक कि धर्मस्थान मे अगर पास-पास वैठना पड जाय तो भी एक दूसरे को देखकर गाल फुलाने लगते है । यह कहा तक उचित है ? ऐसा करने वाले वडे अच्छे या ऐसा करने वाले नादान वालक अच्छे ? वालक वास्तव मे सरलहृदय होते है ।

२४ : ईमानदार मुनीम

सच्चा श्रावक कभी नही सोचेगा कि मैं गुलामी का कार्य करता हू । वह तो यही समझेगा कि मैं जो कुछ करता

हू, अपने धर्म की साक्षी से करता हू । कही ऐसा न हो कि मेरे किसी कार्य से मेरे व्रत मे दोष लग जाय और मेरे धर्म की प्रतिष्ठा मे कमी हो जाय। मै नौकर हू, लेकिन सत्य का । शास्त्र की कथाओ मे उल्लेख है कि ऐसा समझने वालो को अनेक प्रलोभन दिये गये, यहा तक कि प्राण जाने का भी अवसर आ पहुचा—फिर भी वे अपने सत्य धर्म से विचलित नही हुए ।

मतलब यह है कि चाहे कोई मुनीमी करे या मजदूरी करे, अगर वह सच्चा श्रावक है तो यही विचारेगा कि मै पैसे के लिए ही नौकरी नही करता हू । मुझे अपने धर्म का भी पालन करना है। जो ऐसा विचार करके प्रामाणिकता के साथ व्यवहार करेगा, वही सच्चा श्रावक होगा । जो पैसे का ही गुलाम है, वह धर्म का पालन नही कर सकता । सच्चा श्रावक अपने मालिक के बताये हुए अन्यायपूर्ण काम को भी करना स्वीकार नही करेगा ।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एक बात कहा करते थे। वह इस प्रकार है—

किसी सेठ के यहा एक प्रामाणिक मुनीम था। अपने सेठ का काम वह धर्मनिष्ठा के साथ किया करता था। एक बार सेठ ने मुनीम की सलाह नही मानी और इस कारण उसका काम कच्चा रह गया । सेठ ने कुछ दिनो तक तो अपना आडम्बर कायम रखा मगर पूंजी के बिना कोरा आडम्बर कब तक चल सकता था ? जब न चल सका तो एक दिन सेठ ने बडे दु ख के साथ मुनीम से दूसरी जगह

आजीविका खोज लेने को कह दिया । उसने लाचारी दिखलाते हुए अपनी स्थिति का भी हाल वतला दिया, यद्यपि मुनीम से कोई वात छिपी हुई नही थी ।

मुनीम ने कहा—अपना ससार व्यवहार चलाने के लिए मुझे कोई धन्धा तो करना ही पडेगा, लेकिन आप यह न समझे कि मैं पराया हू । जब कभी मेरे योग्य काम आ पडे, आप निस्सकोच होकर मुझे आज्ञा दे । अधिक तो क्या, मैं प्राण देने के लिए भी तैयार हू ।

इस प्रकार वडे दु ख के साथ सेठ ने मुनीम को विदा किया और मुनीम भी वडे दु ख के साथ विदा हुआ ।

मुनीमजी घर वैठे रहे । नगर मे वात फैल गई कि अमुक मुनीमजी आजकल खाली है । उसी नगर मे एक वृद्ध सेठ रहता था । वह खूव धनवान् था । उसके वच्चे छोटे थे । वह चाहता था कि मैं व्यापार और वालको का भार किसी विश्वस्त आदमी को सौप कर कुछ धर्म-कर्म करने मे लगू । मगर उसे अपने नौकरो मे ऐसा कोई नही दिखता था, जो उसका काम-काज सम्भाल कर ईमानदारी से काम कर सके ।

आज के लोग तो अपनी आयु ससार-कार्य मे ही पूरी कर देते है, परन्तु पहले के लोग चौथी अवस्था मे या तो साधु हो जाते थे या साधु न होने की अनस्था मे धर्मस्थान मे लग जाते थे । इससे आगे वालो के सामने एक अच्छा आदर्श खड़ा हो जाता था और वह अपना कल्याण कर लेता था ।

सेठजी को उन मुनीमजी के खाली होने की खबर लगी। वह मुनीम को जानते थे। अपना काम-काज सम्भालने के लिए उन्हे सेठजी ने उपयुक्त समझा और एक दिन बुला कर कहा—मैं आपकी चतुराई से परिचित हू। आप हमारी दुकान का काम-काज सम्भाल ले। मुनीम आजीविका की तलाश मे था ही। उसने सेठजी की दुकान पर रहना स्वीकार कर लिया। सेठजी ने उसे सब नौकरो का अध्यक्ष बनाकर सब काम उसके सुपुर्द कर दिया।

थोडे दिन बाद सेठ ने मुनीम से कहा—अमुक वही के अमुक पाने का खाता निकालिए। मुनीम ने खाता निकाला। खाता उसी सेठ का था, जिसके यहा मुनीम पहले नौकर था और जिसकी आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी। खाते में कुछ रुपया बकाया था। सेठ ने कहा—यह रकम वसूल कीजिए।

मनीम वही लेकर उस सेठ के यहा पहुचे। सेठ ने प्रेम के साथ आदर-सत्कार करके बिठलाया। मुनीम सकोच के कारण मुंह से तकाजा न कर सका। उसने खाता खोल कर सेठ के सामने रख दिया। सेठ समझ गया। उसने आसू भर कर कहा—मुनीमजी, रुपया तो देना है, लेकिन इस घर की दशा आप से छिपी नही है। मैं क्या कहू ?

मुनीम ने कहा—आप दुखी न हो। मैं स्थिति से परिचित हू। अगर मैंने अपने नये सेठ को वही उत्तर दे दिया होता तो ठीक नही रहता। इसी विचार से मैं यहा तक आया हू।

वही-खाता लेकर मुनीमजी लौट आये। सेठ के पूछने

पर उन्होने कहा—खाते मे रकम ज्यादा वकाया है। अभी चुकता कर देने की उनकी शक्ति नही है। कभी उनके दिन पलटेगे तो चुका देगे। वे हजम करने वाले आसामी नही है।

सेठ वोला—पहले के सेठ होने के कारण आप उनकी खुशामद करते है। हमारे नौकर होकर उनका रुख रखना उचित नही है। इतना बडा घर था, बिगड जाने पर भी गहने-बर्तन आदि तो होगे ही। अगर सीधी तरह नही देना चाहते तो दावा करके वसूल करो।

मुनीम—मै जानता हू कि उनकी आमदनी ऐसी नही है। किसी प्रकार अपना निर्वाह कर रहे है और इज्जत लेकर बैठे हैं। उनकी आबरू बिगाडना मेरा काम नही है। मैं तो आपकी और उनकी इज्जत बराबर समझता हू।

कुछ कठोर पडकर सेठ ने कहा– जिसे रोटी की गरज होगी, उसे किसी की आवरू भी बिगाडनी पडेगी।

मुनीम ने यह वात मुनी तो चावियो का गुच्छा सेठजी के सामने रख दिया और कहा—सेठ साहव, मुझे विदाई दीजिये।

सेठ—अच्छी तरह सोच-विचार लीजिए। मैंने आपको रोजगार से लगाया है। सव कर्मचारियो का प्रधान वनाया है और आप मेरे साथ ऐसा सलूक करते है ?

मुनीम—जो अपनी इज्जत के महत्त्व को नही समझता वही दूसरे की इज्जत बिगाडता है। एक दिन वे भी मेरे मालिक थे। आज उनकी स्थिति ऐसी नही है, तो क्या मैं

उनकी इज्जत बिगाडने लगूं। मैंने उनका नमक खाया है और वह मेरे सारे शरीर में व्यापा हुआ है। मैं उनकी प्रतिष्ठा नष्ट नही करूंगा। फिर भी अगर आप रकम वसूल करना ही चाहेगे तो मैं अपनी जायदाद से चुकाऊंगा। मैं सिर्फ पैसे का गुलाम नही हू। मैं धर्म से काम करने वाला हू।

मुनीम की बात सुनकर सेठ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने धन्यवाद देते हुए कहा—मुनीमजी, मैं आपकी कसौटी करना चाहता था। मेरी आज तक की चिन्ता दूर हो गई। ये चाबिया सम्भालिये। अब आप जाने और दुकान जाने। अब यह घर और बाल-बच्चे मेरे नही, आपके है। मेरे सिर का भार आपके ऊपर है।

मित्रो! यदि मुनीम पैसे के प्रलोभन मे पडकर, आजीविका रखने की चिन्ता से धर्म को भूल जाता तो क्या परिणाम निकलता?

२५ : फूलांबाई

आत्मकल्याण का पहला उपाय शास्त्र की बात यथार्थ रूप मे समझना है। शास्त्र का आशय कुछ और हो, आप समझ ले कुछ और ही तो बड़ा अनर्थ होता है। कुछ का कुछ

अर्थ समझ लेने का क्या परिणाम होता है, इस वात को सरलता और स्पष्टता के साथ समझाने के उद्देश्य से एक दृष्टात करता हूं—

एक नामी सेठ था। खूव धनाढ्य था। उसके पाच लड़के थे, लड़की एक भी नही थी। एक दिन सेठ ने विचार किया—"हम दूसरे के यहा से लडकी लाते तो है पर दूसरो को देते नही है। यह मेरे ऊपर ऋण है।" इस प्रकार विचार करने के वाद सेठ के दिल में कन्या का पिता वनने की भावना उत्पन्न हुई।

पुण्ययोग से सेठ की भावना पूर्ण हुई। उसके यहा एक लडकी जन्मी। सेठ का वर वैष्णव सम्प्रदाय का था। घर के सभी लोग विष्णु की भक्ति में तल्लीन रहते थे। वे अपने धन-वैभव आदि को ठाकुरजी का प्रताप समझते थे। इसके अनुसार उन्होने उस लडकी को भी ठाकुरजी का ही प्रताप समझा।

पाच लड़को के वाद गहरी भावना होने पर लड़की का जन्म हुआ था। इसलिए वडे ही लाड़-प्यार के साथ लड़की का पालन-पोषण किया गया। लड़की का नाम फूलावाई रखा गया। इस वात का वहुत ध्यान रखा जाता था कि लड़की को किसी भी प्रकार का कष्ट न होने पाये। लड़की जव कुछ सयानी हो गई, तव भी सेठजी उसे उसी प्रकार रखते थे। लड़की कभी कुछ अपराध या भूल करती तो भी सेठजी एक शव्द न कहते और न दूसरो को कहने देते। इसी प्रकार व्यवहार चालू रहा और लड़की वड़ी हो चली।

जैसे होने वाला होता है, वैसे ही निमित्त भी मिल जाते है । तदनुसार सेठ के यहां एक दिन कोई पडित आये और उन्होने गीता का यह श्लोक पढा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज ।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

फूलांवाई इसका अर्थ समझी—सव धर्मों को छोडकर मेरी शरण में आ जाओ । तुमने कितने ही पाप क्यो न किये हो, मैं उन सवसे मुक्त कर ही दू गा । अब उसने निश्चय कर लिया—नारायण पापो से मुक्त कर ही देते है, फिर किसी भी पाप से डरने की आवश्यकता ही क्या है ? पाप से डरने का अर्थ नारायण की शक्ति पर अविश्वास करना होगा । वस, केवल ईश्वर से डरना चाहिए, पापो से नही ।

ठाकुरजी से डरने का अर्थ उसने यह समझा कि उन्हे विधिपूर्वक नैवेद्य आदि चढाकर पूजना चाहिए—किसी प्रकार की अविधि नही होनी चाहिए । इससे ठाकुरजी प्रसन्न होगे ।

फूलाबाई के हृदय मे यह सस्कार ऐसी दृढता के साथ जम गया कि समय-समय पर वह कार्यों मे भी व्यक्त होने लगा । हृदय का प्रवल सस्कार कार्य मे उतर ही आता है। फूलाबाई का व्यवहार अपने नौकरो-चाकरो और पड़ौसियो के प्रति ऐसा ही वन गया । वह सबसे लडती-झगड़ती और निरकुश व्यवहार करती । इस प्रकार फूलांबाई शूलाबाई बन गई ।

पहले कहा जा चुका है कि उस घर के सभी लोग

सभी बातो के लिए ठाकुरजी का प्रताप समझते थे। घर मे जो भावना फैली होती है, उसी को बालक ग्रहण करते है और वैसी ही भावना बन जाती है। फूलाबाई की भावना भी ऐसी ही हो चली। वह भी हर चीज को ठाकुरजी का प्रताप समझने लगी। सेठजी के यहा यह भजन गाया जाता था—

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहि रूठे तो, सबके काटलू चोटी पटा॥

फूलाबाई ने इस भजन का यह आशय समझ लिया कि सब लोग रूठते है तो परवाह नही। उन्हे रूठ जाने दो। अगर ठाकुरजी अकेले न रूठे तो सब के सिर के बाल उतरवा सकती हू।

फूलाबाई ने सोचा—दुनिया मे बहुत लोग हैं। किन-किन की अलग-अलग खुशामद करती फिरूगी। अतएव अच्छी यही है कि अकेले नारायण को राजी कर लिया जाय, फिर चाहे जिससे चाहे जैसा व्यवहार किया जा सकता है।

फूलाबाई के ऐसे व्यवहार को घर के लोग हसी मे टालते रहे, मगर फूलाबाई समझने लगी कि यह सब नारायण भगवान् का ही प्रताप है। नारायण मददगार हो तो कोई क्या कर सकता है? इस प्रकार फूलाबाई सबके साथ शूल का-सा व्यवहार करने लगी।

फूलाबाई की सगाई एक करोडपति सेठ के घर की गई। यह देखकर तो फूलाबाई के अभिमान का पार ही

न रहा । वह सोचने लगी—मुझ पर ठाकुरजी की बडी कृपा है । यही कारण है कि इस घर मे मैने सभी पर अकुश रखा है, फिर भी मैं करोडपति के घर ब्याही जा रही हू । जैसी धाक मैने यहा जमा रखी है, वैसी ही ससुराल मे जमा सकू तो ठाकुरजी की पूरी कृपा समझू ।

विवाह हो गया । फूलाबाई ससुराल पहुची । ससुराल पहुचकर ससुर-सास के पैर छूना आदि विनीत व्यवहार तो दूर रहा, उसने अपनी दासी को सास के पास भेजकर कहला दिया—"अभी से यह बात साफ कर देना ठीक जचता है कि मैं इस घर मे गुलाम या दासी बनकर नही आई हू । मैं मालकिन बनकर आई हू और मालकिन बनकर ही रहूगी । अपने साथ मे धन लेकर आई हू, कोरी नही आई हू । सब काम-काज मेरे कहने के अनुसार होता रहा तो ठीक, अन्यथा इस घर मे तीन दिन भी मेरा निर्वाह न होगा ।"

फूलाबाई सोचती थी—ठाकुरजी प्रसन्न है तो फिर डर किसका ? आरम्भ मे प्रभाव जम गया तो जम गया, नही तो जमना कठिन है । इसलिए पहिले ही आतक जमा लेना चाहिए । डर—भय की तो परवाह ही नही है !

नवागता पुत्रवधू का यह अनोखा सन्देश सुनकर सास को अचरज भी हुआ और दु ख भी हुआ । वह सोचने लगी—यह कैसी विचित्र बहू आई है ! इसे इतना अहकार क्यो है ? है तो यह बडे घर की बेटी, पर इतने घमण्ड का क्या कारण हो सकता है ? घमण्ड किसी को हो सकता है लेकिन इस प्रकार ब्याही आते ही तो कोई बहू ऐसा नही कहला

सकती । देखने में सुन्दर है, बडे घर की है फिर भी इसकी बोली और प्रकृति ऐसी क्यो है ? जान पडता है, इसके दिमाग में कुछ न कुछ अवश्य है । फिर भी इसे अभी तो प्रसन्न ही रखना चाहिए। कुछ दिनो मे ठिकाने आ जाएगी । ऐसा सोचकर सास ने कहला भेजा—"अच्छा, जैसा बहू कहेगी वैसा ही होगा ।"

फूलाबाई के अहकार को और ईंधन मिल गया । वह सोचने लगी—धन्य है ठाकुरजी, उन्होने यहा भी मेरा बेडा पार लगा दिया । बडी प्रसन्नता और उत्साह के साथ उसने ठाकुरजी की मूर्ति पधराई और कहने लगी—"ठाकुरजी का प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष देखा ।"

थोडे ही दिनो मे फूलाबाई के व्यवहार से घर के सब लोग काप उठे । उसने सब जगह अपना एकछत्र राज्य जमाना शुरु किया । वह न किसी से प्रेम करती, न किसी का लिहाज रखती । सास वगैरह समझ गई कि बहू का स्वभाव दुष्ट है । मगर घर की बात वाहर जाने से इज्जत चली जाएगी, इस विचार से घर के लोग कड़वे घूट के समान फूलाबाई के व्यवहार को सहन करते गये और क्षमा करते रहे । उनकी क्षमा को फूलाबाई ने ठाकुरजी का अपने ऊपर विशेष अनुग्रह समझा । उसका व्यवहार दिन-प्रतिदिन बुरा होता चला गया ।

फूला की ससुराल के किसी सम्बन्धी का विवाह था । उस विवाह मे सपरिवार सम्मिलित होना आवश्यक था । बहू को भी साथ ले जाना जरूरी था । मगर चिन्ता यह

थी कि अगर पराये घर जाकर भी इसने ऐसा ही व्यवहार रखा तो इतनी वड़ी इज्जत कौडी की हो जायेगी। अन्त मे बहू को घर पर ही छोड़ जाने का निश्चय किया। मगर फूलांबाई को छोड जाना भी सरल नही था। इसलिए उसकी सास ने एक उपाय सोच लिया।

मूर्ख लोग अपनी मिथ्या प्रशसा से प्रसन्न होते है। उन्हे प्रसन्न करके फिर जो चाहो वही काम करा सकते हो। वे खुशी-खुशी कर देंगे। सास ने फूलावाई की खूब प्रशसा की। अपनी प्रशंसा सुनकर वह फूल गई। उसके बाद सास ने कहा—इस विवाह में जाना तो सभी को चाहिए। तुम वहुत होशियार हो। अगर घर रहकर इसे सम्भाले रहो तो सब ठीक हो जाएगा।

फूलावाई फूलकर कुप्पा हो चुकी थी। उसने कहा—तुम्हारे बिना कौनसा काम अटका है? तुम सब पधारो। घर सम्भालने के लिए मैं अकेली ही काफी हू।

घर के लोग यही चाहते थे। फूलाबाई को घर छोड़कर सब विवाह मे सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गये।

उधर सब लोग विवाह के लिए गये और सयोगवश इधर सेठ की समानता रखने वाले एक सगे मेहमान सेठजी के यहा आ गये। मेहमान भी ईश्वर में निष्ठा रखने वाला भक्त था। फूलावाई को मेहमान आने का समाचार मिला। उसने भोजन की तैयारी करवा कर उसे जीमने के लिए बुलाया। मेहमान जीमने बैठा और भोजन का थाल उसके सामने

आया । उसने जैसे ही भोजन करना प्रारम्भ किया कि उसी समय फूला ने कडक कर कहा—कभी पहले भी ऐसा भोजन मिला है या नही ? एकदम भूखमरो की तरह भोजन पर टूट पड़े ! कुछ विचार भी नही किया और पेट मे भरने लगे भोजन । दिन के भूखे आये हो ?

ऐसे समय मे क्रोध आना स्वाभाविक था । भोजन करने के अवसर पर ये शब्द कहकर फूलाबाई ने भोजन को जहर बना दिया था । पर मेहमान ने सोचा—मैं भक्त हू । इसने भोजन को जहर बना दिया है, उसको मैं अमृत न बना सका तो फिर मैं भक्त ही कैसा ? इसमे और मुझमें फिर अन्तर ही क्या रहेगा ? मैं तो आज आया हू और आज ही चला भी जाऊगा, मगर इसके घर के लोग कितने दयाशील और सहिष्णु होंगे जो रोज-रोज इसके ऐसे बर्ताव को सहन करते होंगे ! मेरा इसके साथ परिचय नही है, फिर भी इसने पत्थर-सा मारा है । यह घर वालो के साथ कैसा सलूक करती होगी ? सचमुच वे लोग धन्य हैं, जो इसके इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार को शान्ति के सहन करते हैं ! अगर मैं इसके स्वभाव को और भड़का दू तो इसमे मेरी विशेषता क्या है ? मैं इसका मेहमान बना हू । किसी उपाय से अगर इसका सुधार कर सकू तो मेरा आना सार्थक हो सकता है ।

मन ही मन इस प्रकार विचार कर उसने फूलाबाई से कहा—आपने क्या ही अच्छी बात कही है ! यह भोजन की तैयारी और उस पर आपका यह बोलना, मैने आज ही देखा है । आप ऐसी हैं, तभी तो यह तैयारी कर सकी है ।

फूलाबाई मन ही मन कहती है—ठाकुरजी का प्रताप धन्य है कि उन्होने इसे भी मेरे सामने गाय बना दिया है।

प्रकट मे वह बोली—अच्छी बात है, अब आप जीम लीजिए। दो-चार दिन ठहरोगे न ? ऐसा भोजन दूसरी जगह मिलना कठिन है।

मेहमान—आप ठीक कहती है। ऐसा भोजन दूसरी जगह कदापि नही मिल सकता। मैं अवश्य दो-चार दिन रहूगा। आपकी कृपा है तो क्यो नही रहूगा ?

उसने सोचा—इस भोजन को अमृत बना लेना ही काफी नही है। इस बाई को भी मैं अमृत बना लू तो मेरा कर्त्तव्य पूरा होगा।

वास्तव मे सुधार का काम टेढा होता है। यह तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। सुधारक को बड़ी विकट परिस्थितियो का सामना करना पडता है। इन कठिनाइयो में भी जो दृढ रहता है और अपने उद्देश्य की प्रशस्तता का ख्याल रख कर विकट से विकट सकटो को खुशी के साथ सहन कर लेता है, वह अपने उद्देश्य मे सफल होता है।

मेहमान जीम-जाम कर चला गया। पूछताछ करके उसने पता चलाया कि फूलाबाई का स्वभाव ऐसा ही है। यह केवल ठाकुरजी की भक्ति करती है और सबकी कम्बख्ती करती है। मेहमान ने सोचा—चलो, यह ठीक है कि वह ठाकुरजी की भक्ति करती है। नास्तिक को समझाना कठिन

है। जिसे थोडी-बहुत भी श्रद्धा है, उसे समझाना इतना कठिन नही।

मेहमान ने एक-दो दिन रहकर फूला बाई के वाग्वाणो को खूब सहन किया और उसकी प्रकृति का भलीभाति अध्ययन कर लिया। उसने समझ लिया कि यह ठाकुरजी के सामने सबको तुच्छ समझती है और इसने धर्म का स्वरूप उलटा समझ लिया है। उधर फूलाबाई सोचने लगी—कैसा बेशर्म है यह आदमी, जो हंसता हुआ मेरी सभी बातो को सहन करता जाता है। जो लोग मेरे आश्रित है, वे भी मेरे व्यवहार को देखकर अगर मुह से कुछ नही कहते तो भी आखें लाल तो कर ही लेते हैं। मगर इसके नेत्रो मे जरा भी विकार नही दिखाई देता। चेहरा ज्यों का त्यो प्रसन्न बना रहता है। इसे मेरी परवाह नही है, फिर भी इतना शात रहता है। यह मनुष्य कुछ निराला है।

दो-तीन दिन बाद, आधी रात के समय, मेहमान फूलाबाई के कमरे के पास गया और उसे आवाज दी। फूलाबाई ने पूछा—कौन है ? उसने अपना नाम बता दिया। आधी रात के समय आने के लिए फूला बाई उसे धिक्कारने लगी। तब उसने कहा—मैं किवाड खोलने के लिये नही कहता। आपके हिताहित से सम्बन्ध रखने वाली बात सुनाने आया हू। न सुनना चाहो तो मैं जाता हू। सुनना हो तो किवाड की आड मे से सुन लो।

हिताहित की बात सुनने के लिए फूला बाई किवाड के पास खडी हो गई। उसने कहा—जो कहना है, कह डालो।

मेहमान—कहू या न कहू, इसी दुविधा मे पडा हू। कुछ निर्णय नही कर पाया हू।

फूलाबाई—जो कहना चाहते हो, कह डालो। विचारने की बात ही क्या है ? डरो मत।

मेहमान—आपका भी आग्रह है तो कह देता हू। अभी मैं सो रहा था। स्वप्न मे ठाकुरजी ने दर्शन दिये हैं।

फूला—ठाकुरजी ! तुम्हारे भाग्य बड़े है, जो ठाकुरजी ने दर्शन दिये ! उन्होने तुमसे क्या कहा है ?

मेहमान—उन्होने कहा कि भगत ! चल। अब मैं इस घर मे नही रहूगा, तेरे साथ चलूंगा। मैंने ठाकुरजी से कहा—मैंने इस घर का नमक खाया है। आप मेरे साथ चलेगे तो मेरी बदनामी होगी।

फूला—ठाकुरजी मेरे घर से रूठे क्यो है ? किस कारण जाना चाहते है ?

मेहमान—मैंने यह भी पूछा था कि आप इस घर से क्यो रूठ गये है ? उन्होने उत्तर दिया कि मैं इस घर से ऊब गया हू। अब इस घर की सत्ता मुझसे नही सही जाती। मैं धीरज रख रहा था कि अब सुधरे, अब सुधरे, मगर अभी तक कुछ सुधार नही हुआ। उन्होने यह भी कह दिया कि मैं तेरे हृदय मे बसूंगा। तू भक्त है। मैंने ठाकुरजी से पूछा—क्या कपडो की या नैवेद्य की कमी रही ?

फूलाबाई ने चट किवाड़ खोल दिये और कहने लगी—

मै ठाकुरजी के लिए किस चीज की कमी नही होने देती । फिर वे नाराज क्यो हो गये ?

मेहमान—मैंने भी तो उनसे यही प्रश्न किया था । उन्होने उत्तर दिया—तू भी मूर्ख मालूम होता है । मै क्या उसके कपडे-लत्ते के लिए नङ्गा-भूखा वैठा हू । मैं अपनी सत्ता से ससार का ईश्वर हुआ हू । वह क्या चीज है, जो मुझे कपडे-लत्ते और नैवेद्य देगी ? मुझे उसकी परवाह ही कब है ?

फूला—मै जानती थी कि ठाकुरजी इन्ही चीजो से प्रसन्न होते है । फिर मुझ से क्या अपराध हुआ है जो ठाकुरजी जाने की सोच रहे हैं ?

मेहमान—ठाकुरजी ने मुझे एक वात कही है और उसका उत्तर तुम से मागने की भी आज्ञा दी है । उन्होने पुछवाया है कि इस वाई के एक सुकुमार लडका हो । कोई मनुष्य उस लडके को मारे या अपमान करे । फिर उन्हीं हाथो से एक थाल मे पकवान भर कर वह आदमी फूलावाई को देने आवे तो वाई लेगी या नही ?

फूला—जो मेरे वेटे को दुःख देगा, उसके पकवान लेना तो दूर रहा, मै उसका मुह भी नही देखना चाहूगी ।

मेहमान—तुम्हारी तरफ से यही उत्तर मैने ठाकुरजी को दिया था । परन्तु ठाकुरजी कहने लगे—उस वाई के तो एक ही वेटा होगा, किन्तु मेरे तो ससार के सव जीव वेटे हैं । अपने मुह के विष से जो मेरे वेटो को दुःख देती है

उनसे त्राहि-त्राहि कहलाती है, उस पापिनी के घर मे मैं नही रह सकता । इस प्रकार ठाकुरजी अब तुम्हारे घर नही रहेगे । वह सारे ससार के पिता हैं और तुम सबसे बैर रखती हो । ठाकुरजी बेचारे रहे भी तो कैसे ?

फूला का चेहरा उतर गया । वह कहने लगी—मेरी तकदीर खोटी है, जो ठाकुरजी जाते हैं । अब मैं किसके सहारे रहूगी ? मेरी नाव डूबती है, आप किसी तरह इसे किनारे लगाइए । आपकी बडी कृपा होगी ।

मेहमान—घबराओ मत । मुझे तो पहले से तुम्हारी चिन्ता थी । इसलिए मैने अपनी शक्ति भर तुम्हारे लिए सब कुछ किया है। मैंने ठाकुरजी से विनय की कि आप दीनदयाल है । बाई के अपराध को क्षमा करके यही रहिए अन्यथा मेरी बहुत बदनामी होगी । तब ठाकुरजी बोले—मैं अब तक के अपराधो को क्षमा कर सकता हू, पर इससे लाभ क्या होगा ? जो अपराध आगे भी करते रहना है, उसके लिए क्षमा मागने से क्या लाभ है ? जिस अपराध के लिए क्षमा मागनी है, वही अपराध आगे न किया जाय, तभी क्षमा मागना सार्थक होता है । अगर बाई भविष्य मे सबके प्रति आत्मभाव रखे, दूसरे की मार खाकर भी बदले मे न मारे, गाली सुनकर भी गाली न दे और शात बनी रहे, सब के प्रति नम्र हो, सब की प्रिय बने, तो मैं रह सकता हू अन्यथा नही । अब आप बतलाइए कि आपकी इच्छा क्या है ? आप ठाकुरजी की शर्त पूरी करके उन्हे रखना चाहती है या नही ?

फूला—बलिहारी है आपकी ! मैं अब आपकी शरण

मे हू आपको तो ठाकुरजी स्वप्न मे ही मिले और स्वप्न मे ही आपने उनसे बातचीत की, परन्तु मुझे तो आप साक्षात् ठाकुरजी मिले हैं। आपने मेरी आखे खोल दी। वास्तव में मेरी क्रूरता के कारण सब त्राहि-त्राहि कर रहे है। मैं भक्त नही,नागिन हू। मैंने सदा ही अपने मु ह से विष उगला है। आप पर भी मैंने जहर बरसाया पर आपकी आखो से अमृत ही निकला। आपने मुझे सच्ची शिक्षा दी है। सबसे पहले आप ही मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अपराध रहने से ठाकुरजी न रहेगे तो मै अपराध रहने ही नही दूगी। फिर ठाकुरजी कैसे जा सकेंगे?

मेहमान—आपने मुझसे जो कुछ कहा है, उससे मुझे दु:ख नहीं हुआ। परन्तु जो अशक्त है और धर्म को नही जानते है, उनसे क्षमा मागो। इसी मे आपका कल्याण है। मैं तो आपके क्षमा मागने से पहले ही क्षमा कर चुका हू।

प्रात काल होते ही फूलाबाई ने सबसे क्षमा मागी। पडोसियो, नौकर-चाकरो से बडे प्रेम के साथ वह मिली और अपने अपराधो के लिए पश्चात्ताप करने लगी। उसने कहा—आप सब लोग अब तक मुझसे दु खी हुए है। आपने मेरे कठोर व्यवहार को शान्ति के साथ सहन किया है। एक बार और क्षमा कर दीजिए।

अगर फूलाबाई का मेहमान उसकी बातें सुनकर क्रोधित हो जाता तो क्या फूलाबाई का सुधार हो सकता था? नही। वास्तव मे क्षमा बडा गुण है। क्षमा के द्वारा सब का सुधार किया जा सकता है।

विवाहकार्य से निवृत्त होकर फूला के घर के लोग जब लौटे तो फूला आखो से जल बरसाती हुई सब के पैरो मे पड़ी और अपने अनेक अपराधो के लिए क्षमा मागने लगी! वह कहने लगी—आप मुझे क्षमा कर देगे, तभी ठाकुरजी रहेगे, नही तो चले जाएगे ।

सब लोग फूलाबाई के इस आकस्मिक परिवर्त्तन को देखकर चकित रह गए । किसी ने कहा—अब तुमने अपना नाम सार्थक किया ! पर यह तो कहो कि इस परिवर्त्तन का कारण क्या है ?

फूला—अपने घर एक भक्त आये है । यह परिवर्त्तन उन्ही के प्रताप से हुआ है ।

सारा वृत्तान्त जानकर सब परिवार के लोगो ने उन मेहमान की प्रशसा की । उनका बड़ा उपकार माना और देवता की तरह सत्कार किया । सेठ ने कहा—सच्चे भक्त से ही ऐसा काम हो सकता है ! आपने हमारा घर पावन कर दिया । जिस घर मे सदा आग लगी रहती थी, उसमे आपने अमृत का स्रोत प्रवाहित कर दिया ।

फूला ने भक्त मेहमान से कहा—भगतजी ! अच्छा, इस पद का अर्थ बतलाइये—

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा ।
एक नारायण नहिं रूठे तो, सबके काटलूं चोटी पटा ।।

भगत ने कहा—पहले जो अर्थ समझा है, वह बतलाओ । फिर मैं कहूगा ।

फूला—मैनें यह अर्थ समझा था कि एक ईश्वर को खुश रखना और सब के चोटी पट्टे काट लेना ।

भगत—यही तो भूल है । इसी भूल ने तुम्हे चक्कर मे डाल दिया था । इस पद का सही अर्थ यह है कि दूसरा रूठता है तो रूठने दे । हे मन ! तू मत रूठ । अर्थात् दूसरा अगर मारता और गाली देता है तो तू क्रोध मत कर ।

"एक नारायण नही रूठे तो सबके काटलू चोटी पटा" इसका अर्थ स्पष्ट है। अगर मैं तुम्हारी वातो पर क्रोध करता तो क्या तुम मेरे पेरो मे पडती ? मैंने अपने मन को नही रूठने दिया तो तुम मेरे पैरो मे गिरी ! यही तो चोटी-पट्टा काटना कहलाता है ।

फूला—वहुत ठीक, अव मैं समझ गई पर एक श्लोक का अर्थ और समझा दीजिए ।

भगन—कौनसा श्लोक ?

फूला—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज ।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच. ।।

भगत—इसका अर्थ यह है कि तुझ में काम, क्रोध, आदि जितने पाप है, मेरी शरण मे आने पर वे सब छूट जाएगे । तात्पर्य यह है कि जहा पाप है, वहा ईश्वर की शरण नही है और जहा ईश्वर की शरण है, वहा पाप नही है ।

फूला—मै आपकी कृतज्ञ हू । आपने मेरा भ्रम दूर

कर दिया । आज मेरे नेत्र खुल गये । मैं कुछ का कुछ समझ बैठी थी ।

इस कथा से स्पष्ट है कि शास्त्र के अभिप्राय को विपरीत समझ लेने से बड़ी गडबडी हो जाती है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि सच्चे धार्मिक या परमात्मा के आराधक को अन्य प्राणियो के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए ? अगर आपको भगवान् के वचन पर श्रद्धा है तो जगत् के सब जीवो को अपना ही मानो । ऐसा करोगे तो भगवान् आपके है, अन्यथा भगवान् रूठ जाएगे ।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु" और "सव्वभूअप्पभूअस्स" अर्थात् समस्त प्राणियो को अपना समझो । अपनी आत्मीयता की सीमा क्षुद्र मत रहने दो । तत्त्वदृष्टि से देखो तो पता चलेगा कि अन्य जीवो मे और आपके अपने माने हुए लोगो मे कोई अन्तर नही है ।

२६ : माता-पिता का उपकार

वास्तव मे माता-पिता के उपकार का बदला नही चुक सकता । कल्पना कीजिए—किसी आदमी पर करोड रुपयों ऋण है । ऋण मागने वाला ऋणी के घर गया । ऋणी ने उसका आदर-सत्कार किया और हाथ जोडकर कहा—

"मैं आपका ऋणी हू और ऋण को अवश्य चुकाऊंगा ।" अब आप कहिए कि आदर-सत्कार करने और हाथ जोडने से ही क्या ऋणी ऋण–रहित हो सकता है ?

"नही !"

एक राजा ने बाग तैयार कराया और किसी माली को सौप दिया । माली ने बाग में से दस-बीस फल लाकर राजा को दे दिये, तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो गया?

"नही !"

मित्रो ! इस शरीर रूपी बगीचे को माता–पिता ने बनाया है । उनके बनाये शरीर से ही उनकी सेवा की तो क्या विशेषता हो गई ? यह शरीर तो उन्ही का था । फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार ने मुक्त किस प्रकार हो सकता है ?

एक माता ने अपने कलियुगी बेटे से कहा—मैंने तुझे जन्म दिया है, पाल–पोसकर बडा किया है । जरा इस बात पर विचार तो कर, बेटा !

बेटा नयी रोशनी का था । उसने कहा—फिजूल बडबड मत करो । तुम जन्म देने वाली हो कौन ? मैं नही था, तब तुम रोती थी और बाझ कहलाती थी । मैंने जन्म लिया तब तुम्हारे यहा बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार में पूछ होने लगी, नही तो बाझ समझ कर कोई तुम्हारा मुंह भी देखना पसन्द नही करता था । फिर मेरे इस कोमल

शरीर को तुमने अपना खिलौना बनाया । इससे अपना मनोरंजन किया—लाडप्यार करके आनन्द उठाया । इस पर भी उपकार जतलाती हो ?

माता ने कहा—मैंने तुझे पेट मे रखा सो ?

बेटा—तुमने जान-बूझ कर तुझे पेट में थोडे ही रखा था ! तुम अपने सुख के लिए प्रयत्न करती थी, बीच में हम आ गये । इसमे तुम्हारा उपकार ही क्या है ? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट मे रहने का किराया ले लो !

यह आज की सभ्यता है ! भारतीय सस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार वनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूंजी को नष्ट कर रही है ।

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाड़ा देने को तैयार है, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है !

वेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती ! तेरे स्तन फटने लगते । अनेक वीमारिया हो जाती । मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रखा है !

माता ने सोचा—यह बिगडेल बेटा यो नही मानेगा । तब उसने कहा—अच्छा चल, हम लोग गुरुजी से इसका फैसला करा ले । अगर गुरुजी कहेगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नहीं है तो मै अब से कुछ भी नही कहूगी । मैं माता हूं । मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुह नही मोड़ सकूंगी ।

माता की वात सुनकर लडके ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते ही है कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है। इसके अतिरिक्त गुरुजी माता–पिता की सेवा करने को एकान्त पाप भी कहते है। फिर चलने मे हर्ज ही क्या है।

यह सोचकर लडके ने गुरुजी से फैसला करवाना स्वीकार किया। वह गुरुजी के पास चला गया। परन्तु माता के गुरु दूसरे ही थे। वे उन गुरु कहलाने वालो मे नही थे, जो माता-पिता की सेवा करना एकान्त पाप वतलाते है। दोनो माता–पुत्र गुरुजी के पास पहुचे। वहा माता ने पूछा—"महाराज, शास्त्र मे कही माता–पिता के उपकार का भी हिसाव वतलाया है या नही?" गुरु ने कहा—जिसमे माता-पिता के उपकार का वर्णन न हो, वह शास्त्र ही नही। वेद में माता–पिता के सम्वन्ध मे कहा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।

ठाणागसूत्र मे भी ऐसी वात कही गई है।

गुरु की वात सुनकर मा ने पूछा—माता–पिता का उपकार पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता-पिता पर है?

गुरु ने ठाणागसूत्र निकाल कर वताया और कहा—वेटा अपने माता–पिता के ऋण से कभी उऋण नही हो सकता, चाहे वह कितनी ही सेवा करे।

गुरु की वात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा—देख तो, शास्त्र मे यही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र,

माता-पिता के उपकार से मुक्त नही होता ! फिर सेवा करने से क्या लाभ है ?

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले—मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है। इस कारण वह उपकार से मुक्त नही हो सकता। पावनेदार जब कर्जदार के घर तकाजा करने जाये, तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है। उस सत्कार मे ऋण नहीं पट सकता। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार है। इतना करने मात्र से पुत्र उनके उपकारो से मुक्त नही हो सकता। पर इससे यह मतलब नही निकलता कि माता-पिता की सेवा नही करनी चाहिए। अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा करनी ही चाहिए। माता-पिता ने अपने धर्म का विचार कर तेरा पालन-पोषण किया है, नही तो क्या ऐसे माता-पिता नही मिल सकते, जो अपनी सन्तान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बधा। उसने कहा—"अब सुन ले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नही ?" इसके बाद उसने गुरुजी से कहा—महाराज, यह मुझसे कहता है कि तूने मुझे पेट मे रखा है तो उसका भाडा ले ले। इस विषय में शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकाल कर बतलाया। उसमें लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अग माता के, तीन अग पिता के और शेष अग दोनो के हैं। मास, रक्त और

मस्तक माता के है, हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं, शेप भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित हैं ।

माता ने कहा—वेटा ! तेरे शरीर का रक्त और मास मेरा है । हमारी चीजे हमे दे दे और इतने दिन इससे काम लेने का भाड़ा भी साथ ही चुकता कर दे ।

यह सब सुनकर वेटे की आखे खुली । उसे माता और पिता के उपकारो का ख्याल आया तो उनके प्रति प्रवल भक्ति हुई । वह पश्चात्ताप करके कहने लगा—मै कुचाल चल रहा था । कुसगति के प्रभाव से मेरी वुद्धि मलिन हो गई थी । इसके वाद वह गुरुजी के चरणो मे गिर पडा और कहने लगा—माता-पिता का उपकार तो मैं समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है ! आपके अनुग्रह से मैं माता-पिता का उपकार समझ सका हूं ।

२७ : विद्वान् और मूर्ख

विद्वान् और मूर्ख के वुरे और अच्छे कामो मे भी अन्तर होता है, इस विषय मे ग्रन्थकारो ने एक दृष्टान्त इस प्रकार दिया है—

एक विद्वान् को जुआ खेलने का व्यसन लग गया था। जुए के फदे में फसकर उसने गाठ की सारी पूंजी गंवा दी। और अपनी पत्नी के आभूषण भी बेच डाले। उसकी दशा बड़ी हीन हो गई। लोग भी उसे दुत्कारते थे।

धन सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उस विद्वान् को चोरी करने के सिवाय और कोई मार्ग दिखाई न दिया। अन्त मे लाचार होकर उसने यही करने का निश्चय कर लिया। वह सोचने लगा—चोरी किसके घर करनी चाहिए? अगर किसी सेठ के घर चोरी करूगा तो वह चोरी में गये धन को भी हिसाब मे लिखेगा। सेठ लोग पाई पाई का हिसाब रखते हैं। जब-जब वह हिसाब देखेगा तब तक गालिया देगा। अगर किसी साधारण आदमी के घर चोरी करूगा तो वह रोएगा। उस बेचारे के पास पूजी ही कितनी होती है?

इस प्रकार विद्वान् ने सब का विचार कर देखा। अन्त में उसने निश्चय किया कि औरो के घर चोरी करना तो उचित नही है, राजा के यहा चोरी करना चाहिए। इस प्रकार निश्चय करके वह राजा के यहा चोरी करने गया।

राजा ने एक बन्दर पाल रखा था। बन्दर राजा को बडा प्रिय था। वह उसे अपने साथ खिलाता और साथ ही रखता था। रात के समय जब राजा सोता तो बन्दर नगी तलवार लेकर पहरा दिया करता था। राजा बन्दर को अपना बड़ा प्रिय मित्र समझता था।

राजा सो रहा था। बन्दर नंगी तलवार लिए पहरा

दे रहा था । इसी समय विद्वान् चोरी करने के लिए पहुचा ।

बन्दर राजा का मित्र है, लेकिन वह विद्वान् चोरी करने आया है इस कारण शत्रु है । फिर भी देखना चाहिए कि विद्वान् शत्रु मे और मूर्ख मित्र मे कितना अन्तर है ? और दोनो में कौन अधिक हितकर या अहितकर है ?

राजा गाढी निद्रा मे लीन था । उसी समय मकान की छत पर एक साप आया । साप की छाया राजा पर पडी । बन्दर ने साप की छाया को साप ही समझ लिया और विचार किया कि यह साप राजा को काट खाएगा ! वह चपल और मूर्ख तो था ही, आगे पीछे की क्यो सोचने लगा ? उसे विचार ही नही आया कि छाया पर तलवार चलाने से साप तो मरेगा नही, राजा ही मर जायगा । वह सम्भलकर छाया रूपी साप को मारने के लिए तैयार हुआ ।

मूर्ख मित्र की बदौलत राजा के प्राणपखेरू उडने में देरी नही थी । विद्वान् खडा-खडा यह सब देख रहा था । उसनें सोचा—"इस मूर्ख मित्र के कारण वृथा ही राजा की जान जा रही है । चाहे मैं पकडा जाऊ और मारा जाऊ, मगर राजा को बचाना ही चाहिए । अपनी आखो के आगे राजा का वध मैं नही होने दूगा !" यह सोचकर विद्वान् एकदम झपट पडा और उसने बन्दर की तलवार पकड ली । वन्दर और विद्वान् मे झगडा होने लगा । इतने मे राजा की नीद छूट गई । वह हडबडा कर उठा और बन्दर तथा विद्वान् की खीचतान देखकर और भी विस्मित हुआ । राजा के पूछने पर विद्वान् ने कहा—"यह वन्दर आपके प्राण ले

रहा था पर मुझसे यह नही देखा गया। इसी कारण झपट कर मैंने तलवार पकड ली है।

राजा—तू कौन है ?

विद्वान्—मैं चोर हूं !

राजा—बन्दर मुझे कैसे मार रहा था ?

विद्वान्—आप सो रहे थे और मैं चोरी करने की ताक मे आया था। छत पर साप आया। उसकी छाया आपके शरीर पर पडी। छाया को साप समझ कर यह बन्दर तलवार चलाने को उद्यत हुआ। मुझसे यह नही देखा गया। मैंने झपट कर तलवार पकड़ ली।

विद्वान् की बात सुनकर राजा सोचने लगा—प्रजा को अशिक्षित रखकर बन्दर के समान मूर्ख बनाये रखने से क्या हानि होती है, यह बात आज मेरी समझ मे आई। मगर राजा ने पण्डित से पूछा—तुम पण्डित होकर चोरी करने आये हो ?

पण्डित—मैं जुआ खेलने के व्यसन मे पड़ गया। एक दुर्व्यसन भी मनुष्य के जीवन को किस प्रकार पतित कर देता है, किस प्रकार विवेक को विनष्ट कर देता है इसके लिए मैं उदाहरण हू। जुए के दुर्व्यसन ने मेरी पण्डिताई पर पानी फेर दिया है। मेरी विद्वत्ता जुए से कलकित हो रही है। मैं आपके सामने उपस्थित हूं। जो चाहे, करे।

मतलब यह है कि नादान दोस्त की अपेक्षा ज्ञानवान् शत्रु भी अधिक हितकारी होता है। ज्ञानवान् अपने कल्याण—

अकल्याण को शीघ्र समझ जाता है। ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को शीघ्र ही सन्मार्ग पर ले आता है। पथभ्रष्ट मनुष्य भी, अगर उसके हृदय में ज्ञान विद्यमान है तो एक दिन सत्पथ पर आये बिना नही रहेगा। अतएव प्रत्येक दशा में ज्ञान जीवन को उन्नत बनाने मे सहायक होता है।

अगर आप लोग ज्ञान का सच्चा महत्त्व समझते है तो अर्हन्त भगवान् के ज्ञान का प्रचार कीजिए। आप स्वय ऐसे काम कीजिए, जिससे ज्ञान का प्रचार हो। अर्हन्त के ज्ञान का प्रचार अक्षरज्ञान के बिना नही हो सकता। यह विचार कर ही भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी को लिपिज्ञान दिया था। भगवान् के आशय को आप समझिए और अपनी सन्तति को मूर्ख मत रहने दीजिए। ज्ञान का प्रचार करने का उद्योग कीजिए। ज्ञान की वृद्धि उन्नति का मूल मन्त्र है। आपके पास जो भी शक्ति हो, ज्ञान के प्रचार मे लगाइए। इतना भी न कर सके तो कम से कम ज्ञान और ज्ञान-प्रचार का विरोध तो मत कीजिए। ज्ञान की, शिक्षा की निन्दा करना, उसमे रोडे अटकाना और जो लोग ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं, उसका विरोध करना बुरी बात है। ज्ञान प्रचार शासन की प्रभावना का प्रधान अङ्ग है। सच्चे ज्ञान का प्रचार होने पर ही चरित्र के विकास की सम्भावना की जा सकती है। आप लोग ज्ञान और चारित्र की आराधना करके आत्म-कल्याण मे लगे, यही मेरी आतरिक कामना है।



२८ : राजा और चोर

शेखपुर मे एक चालाक चोर रहता था। वह इस चालाकी से लोगो के घर चोरी करता था कि यह पता लगाना तक कठिन हो जाता था कि चोरी कब और किस प्रकार हुई है ? चोरी के कारण प्रजा परेशान हो गई। प्रजा ने प्रयत्न किया मगर चोर का पता नही लगा। किसी के घर का ताला टूटा नही, दीवार मे सेध लगी नही, फिर भी घर मे चोरी हो गई। इस चतुर चोर की चालाकी से प्रजा थक गई। आखिरकार प्रजा इकट्ठी होकर राजा के पास पहुची। शेखपुर की प्रजा छोटी-छोटी बातो के लिए राजा के पास नही पहुचती थी। अतएव राजा समझ गया कि आज प्रजा पर कोई मुसीबत आई है। इसी कारण लोग मेरे पास आये है।

राजा ने प्रजाजनो से पूछा—तुम्हे, क्या कष्ट है ? स्पष्ट कहो।

प्रजा ने चोर द्वारा चारो ओर फैलाये हुए हाहाकार का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया। राजा चोर की चालाकी की वात सुनकर आश्चर्यचकित हो कहने लगा—वह चोर वास्तव मे कोई महान् चोर है। खोज करके जल्दी ही उसे पकड़ना चाहिए। चोर को पकडकर मैं प्रजा का दु ख दूर करने का यथासम्भव प्रयत्न [करू गा। सच्चा राजा

हूं तो अपने प्राणों को होम करके भी सात ही दिन में चोर को पकड़ लूंगा । इस प्रकार कहकर राजा ने प्रजा को आश्वासन दिया ॥

आज ऐसे प्रजाप्रेमी नरेश बहुत कम नजर आते हैं, जो प्रजा के दुःख को अपना दुःख समझकर उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं । प्रजाप्रिय राजा, प्रजा की रक्षा के लिए अपने प्राण भी निछावर कर देता है ।

राजा ने चोर को पकडने की प्रतीज्ञा की है, यह बात चारों ओर नगर भर में फैल गई । मडूक चोर ने भी राजा की प्रतिज्ञा की बात सुनी । वह विचार करने लगा—राजा ने प्राण का होम देकर भी मुझे पकडने की प्रतिज्ञा की हैं । अब मेरा बचना कठिन है । फिर भी मुझे तो राजा के पंजे से बचने का ही प्रयत्न करना चाहिए । वीर पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह पराजित भले ही हो जाय मगर पुरुषार्थ न छोडे । पुरुषार्थ छोडकर बैठना कायरता है ।

चोर का पता लगाने के लिए राजा भेष बदलकर शहर मे निकला । इधर चोर भी अपना भेष बदलकर यह देखने के लिए निकला कि देखें, राजा क्या करता है ? चोर पैर मे पट्टी बाधकर, हाथ मे लाठी लेकर बीमार दरिद्र की तरह शहर में घूमने निकला । राजा ने मडूक चोर को इस भेष मे देखा । मडूक चोर की आख देखते ही राजा मन में समझ गया कि यही चोर है । परन्तु जब तक प्रमाण द्वारा अपराध साबित न हो जाय तब तक उसे दण्ड नही दिया जा सकता । दोनो एक—दूसरे के सामने आये और आपस मे

पूछने लगे—"तुम कौन हो ?" किसी ने अपना परिचय नही दिया। अन्त में चोर ने कहा—मैं कौन हूं, यह जानने की तुम्हे क्या आवश्यकता है ? तुम अपना काम करो, मैं अपना काम करता हू। चोर के इस कथन का आशय राजा ने यह समझा कि चोर ठीक ही कह रहा है कि—"मैं चोर हूं। चोरी करने जाता हू। तुम राजा हो तो मुझे पकड लो।"

इस प्रकार विचार कर राजा वहा से चलता बना। जाते-जाते राजा ने यह भी निश्चय कर लिया कि चोर सामने के पहाड मे रहता है और इस रास्ते से शहर में आता है।

दूसरे दिन राजा ने भिखारी का भेष बनाया। वह उसी रास्ते पर चुपचाप बैठ गया, जिस रास्ते से चोर आया-जाया करता था। चोर भी भेष बदल कर शहर मे आया। रात अन्धेरी थी। भिखारी के भेष में पडे हुए राजा पर उसकी निगाह न पडी। अत राजा के पैर मे चोर की ठोकर लग गई। ठोकर लगते ही वह चिल्ला उठा। चोर ने पूछा—तू कौन है ?

राजा ने कहा—मैं गरीब भिखारी हू। रहने को कही जगह नही। इसलिए यहा पडा हू।

चोर बडा ही चालाक था। समझ गया, यही राजा है। उसने सोचा—किसी भी उपाय से राजा को नष्ट किया जा सके तो फिर कोई आफत ही न रहे।

चोर बोला—क्या इस तरह रास्ते मे पडे रहने से तेरा दुःख दूर हो जायगा ?

राजा—इस तरह पडे रहने से दु:ख दूर नही होगा। दु:ख तो तुम्हारे जैसे की सगति से दूर हो सकता है।

चोर—तू मेरे साथ चल। मैं तेरा दुःख दूर करूंगा।

राजा ने चोर के साथ जाना कबूल किया। राजा साथ हो लिया। दोनो एक दूसरे को मार डालने की घात में थे, इस कारण दोनो ही सावधान थे।

चोर ने चोरी की। धन आदि की दो पेटिया भरी। राजा से कहा—एक पेटी तू उठा ले। पर देखना, भाग मत जाना।

राजा—नही, मैं भागूगा क्यो ?

चोर—तो ठीक। चल, आगे चल। मैं तेरे पीछे-पीछे चलता हूं।

राजा—"तुम्हे कहा जाना है, सो मुझे मालूम नही। अतएव आगे तुम चलो। मैं पीछे-पीछे चलूंगा।"

चोर—ठीक है, तू पीछे-पीछे ही चलना। मगर तू कही भाग न जाय, इसलिए तुझे रस्सी से बाध लेता हू।

चोर ने राजा को रस्सी से बाध लिया। चोर आगे-आगे चलने लगा। राजा चोर नही था। फिर भी मडूक चोर ने राजा को चोर की तरह बाध लिया।

राजा को साथ लेकर चोर घर आया। मडूक चोर ने अपनी लडकी को पास बुलाकर कहा—मैं एक आदमी को

साथ लाया हूं । वह मेरे व्यवसाय मे विघ्न डालता है । किसी उपाय से उसे मार डालना है ।

पुत्री ने कहा—आपकी आज्ञा के अनुसार सब काम हो जायगा ।

तब लडकी राजा के पास पहुची और बोली—भोजन तैयार है । जीमने चलो ।

राजा ने मन ही मन कहा—भोजन करने तो जाना चाहिए, मगर भोजन करते समय सावधान रहना होगा । इस समय मैं चोर के घर में हू ।

राजा ने लडकी से कहा—पहले तुम जीम लो । तुम्हारे जीमने के बाद मै भोजन करूगा । मै भिखारी हू, फिर भी इतनी सभ्यता जानता हू । जब तक घर वाले न जीम ले, मैं कैसे जीम सकता हूं ?

राजा की बात सुनकर लडकी समझ गई—यह भिखारी नही है। दरअसल भिखारी होता तो ऐसा न कहता वरन् खाने बैठ आता ।

चोर की कन्या ने राजा से कहा—अगर तुम सभ्य हो तो भोजन से पहले स्नान करना चाहिए ।

राजा—अगर यह नियम है तो इसका पालन करना मेरा कर्त्तव्य है ।

चोरकन्या—राजा को स्नान करने के लिए कुएं पर ले गई । चोरकन्या का यह नियम था कि वह जिसे स्नान

कराने कुएं पर ले जाती, उसके पैर पकड कर कुएं मे फेंक देती थी । राजा को कुएं में डालने के लिए उसने उसके पैर पकड़े । पर राजा के सुलक्षण-युक्त पैर देखकर वह सोचने लगी—यह तो कोई महापुरुष है ! पैर के चिह्नो से मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर का हाल मालूम हो जाता है । इस कथन के अनुसार चोरकन्या ने राजा के लक्षणयुक्त पैर देख कर विचार किया—यह कोई महान् पुरुष है । ऐसे महान् पुरुष को पिताजी मार डालना चाहते है, यह उचित नही है ।

चोरकन्या कहने लगी—मेरे पिता अत्यन्त क्रूर है । वे तुम्हे मार डालना चाहते है । मैं तुम्हारे लक्षणयुक्त पैर देखकर समझ गई हू कि तुम राजा हो । मैं तुमसे यही कहना चाहती हू कि अगर अपने प्राण बचाना चाहते हो तो इस रास्ते से जल्दी भाग जाओ वर्ना तुम्हारे प्राणो की खैर नही ।

राजा ने चोरकन्या की बात मानली । वह उसके बताये मार्ग से भाग निकला । राजा जब दूर जा पहुचा तो चोरकन्या ने मडूक को आवाज दी । कहा—वह भिखारी तो भाग गया ।

भिखारी के भागने का समाचार पाते ही मडूक की आखे लाल हो गई । कक नामक पत्थर से बनाई गई तीखी तलवार लेकर वह राजा के पीछे दौडा । तलवार इतनी तीखी थी कि जिस चीज पर उसका प्रहार हुआ, तत्काल उसके टुकडे-टुकडे हो जाते थे ।

चोर ने दूर से ही राजा पर तलवार का प्रहार किया । मगर वह प्रहार पत्थर के खम्भे पर जा लगा ।

खम्भा टुकडे-टुकडे होकर गिर पड़ा। राजा बड़ी कठिनाई से बच सका। चोर समझ गया—राजा बच गया है और खम्भा टुकडे–टुकडे हो गया है।

चोर निराश होकर घर लौट आया। उसने अपनी कन्या से कहा—राजा धोखा देकर भाग गया। वह अपने घर की छिपी बातें जान गया है। अब हमे बहुत होशियारी के साथ रहना चाहिए।

चोरकन्या ने कहा—पिताजी! जान पड़ता है, अब आपके पापो का घडा भर गया है।

मंडूक ने क्रुद्ध होकर कहा—क्यो अपशकुन की बात मुह से निकालती है ?

चोरकन्या—पाप का अन्त होने मे बुराई क्या है, पिताजी!

लड़की की बात मडूक को बहुत बुरी लगी। फिर भी वह मौन रहा।

दूसरे दिन चोर व्यापारी बनकर शंखपुर के बाजार मे क्रय–विक्रय करने आया। इधर राजा भी वेष बदल कर चोर की फिराक मे शहर में घूमने लगा। घूमता–घूमता राजा उसी दूकान पर आ पहुचा, जहां चोर व्यापारी के रूप मे क्रय–विक्रय कर रहा था। राजा, चोर व्यापारी को देखते ही पहचान गया। राजा ने पूछा—"तुम क्या बेचने आये हो ? तुम्हारे पास क्या है ?"

चोर—हमारे पास सभी कुछ है। तुम्हे क्या चाहिए ?

राजा—भाई, मुझे और कुछ नही चाहिए । सिर्फ तुम्हारी आवश्यकता है ।

चोर—मेरा क्या काम है ?

राजा—तुम चोर हो, इसीलिए तुम्हारी जरूरत है ?

चोर—मैं साहूकार हू । कौन मुझे चोर कहता है ?

राजा—तुम्हारे चोर या साहूकार होने का निर्णय अभी हो जायगा । तुम्हारे चोर होने की खातिरी मैंने तो पहले से ही कर रखी है ।

आखिर राजा ने चोर को पकड लिया । चोर विचार करने लगा—मुझे पकडने वाला कोई मामूली आदमी नही है । राजा ने मुझे पकडा है । मुझे सख्त सजा मिलेगी ।

राजा बोला—अब तुम पकडे जा चुके हो । कहो अब तुम्हे क्या करना है ?

चोर बोला—जो आप कहे, वही करने को तैयार हू ।

राजा—सबसे पहले तुम अपनी कन्या का मेरे साथ विवाह कर दो ।

चोर—ठीक है । यह कहकर उसने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या राजा को ब्याह दी ।

राजा ने चोरकन्या से कहा—तुमने मेरे शरीर की रक्षा की थी । अब यह शरीर मैं तुम्हारे सुपुर्द करता हू ।

चोरकन्या बोली—नाथ, आप उदार हैं इसी से ऐसा कहते हैं। मैं तो वास्तव मे चोर की कन्या हू। मैं आपके सम्मान के योग्य नही। आपने मेरा सम्मान करके मुझ पर उपकार किया है।

राजा—अब तुम्हे किसी प्रकार की चिंता नही करनी चाहिए। तुम्हारे पिता अब मेरे ससुर है। मैं उनका भी सम्मान करूगा और गौरव बढाऊगा।

राजा ने मडूक चोर को प्रधान मन्त्री बना दिया। जब यह बात नगर में फैली तो सभी लोग राजा को धिक्कारने लगे। राजा इसके लिए तैयार था। वह जानता था कि पहले पहल लोग मेरे कार्य से अप्रसन्न होगे मगर जब इसका नतीजा सुनेगे तो प्रसन्न हुए बिना नही रहेगे।

राजा चोर-प्रधान को धमकाकर या समझा-बुझाकर चोरी के रत्न निकलवाता रहता था। उसके पास अभी कितने रत्न हैं, यह बात राजा चोरकन्या अर्थात् अपनी पत्नी से मालूम कर लेता और फिर उन्हे किसी उपाय से निकलवा लेता। इस प्रकार कभी धमकी देकर और कभी फुसलाकर राजा ने चोर-प्रधान के पास से सभी रत्न निकलवा लिए। जब उसके पास कुछ भी शेष न रहा, तब राजा ने नगरजनो को बुलाया और कहा—यह प्रधान नही, चोर है। चोर से सब रत्न निकलवाने के उद्देश्य से ही मैंने इसे प्रधान बनाया था। अब इसके पास कुछ बाकी नही रहा। अतएव चोरी करने के अपराध में इसे फासी की सजा दी जाती है।

चोरी गये सब रत्न राजा ने वापिस कर दिए।

प्रजाजन राजा की बुद्धिमत्ता और चतुराई की प्रशसा करने लगे । राजा–प्रजा मे प्रेम की वृद्धि हुई । राज्य का अच्छी तरह सचालन होने लगा ।

यह एक दृष्टान्त है । साधुजीवन पर यह दृष्टान्त दिया गया है । इस दृष्टान्त से क्या सार ग्रहण करना चाहिए, यह विचारणीय है ।

साधु के लिए कहा गया है कि यह शरीर मंडूक चोर के समान है । बुद्धि शरीर रूपी चोर की कन्या है । शरीर यद्यपि चोर के समान है, फिर भी अनेक रत्न इसके कब्जे मे है । इस शरीर के बिना मोक्ष प्राप्त नही हो सकता । हे मुनियो ! तुम्हारे शरीर मे रहा हुआ आत्मा राजा है । शरीर चोर है और बुद्धि चोरकन्या है । मनुष्य मे जैसी बुद्धि है वैसी अन्य प्राणियो मे नही है । आत्मारूपी राजा शरीररूपी चोर के घर मे आया है । आत्मारूपी राजा खान–पान के प्रलोभन में न पडकर बुद्धिरूपी चोरकन्या को पहले खिला-कर ही आप खाता है । अर्थात् शास्त्र मे खान–पान संबधी जो विधि बतलाई गई है,बुद्धि द्वारा उसका निर्णय करने के बाद ही खाता है । इस प्रकार बुद्धि द्वारा निर्णय करके जो खाता है, वही आत्मारूपी राजा है । बुद्धिरूपी चोरकन्या आत्मा–राजा को पैर पकडकर कुंए मे डाल देना चाहती है, पर आत्मा–राजा के लक्षणयुक्त चरण देखते ही वह उसे महान् समझकर बचा देती है । चरण का अर्थ पैर भी है और आचरण भी है । जब बुद्धि के हाथ चरण आता है और वह उसके अच्छे लक्षण देखती है, तब कहती है—ऐसे पुण्यात्मा को कूप मे पटकना ठीक नही । इस प्रकार बुद्धि–

रूपी चोरकन्या आत्माराजा को मुक्त होने का मार्ग बतलाती है और आत्माराजा उस मार्ग पर चलकर मुक्त हो जाता है। जब आत्मा-राजा ससार के पदार्थों का ममत्व तजकर भाग जाता है तो काम, क्रोध, मान, लोभ रूपी चोर वासनावृत्ति की तलवार हाथ में ले आत्मा के पीछे दौडता है। वासना-वृत्ति रूपी तलवार बहुत तीखी है। यह तलवार जिस पर पडती है, उसका जीवन नष्ट हो जाता है।

आत्मा-राजा सावधान होने के कारण वासनावृत्ति रूपी तलवार के प्रहार से कुशलतापूर्वक बच गया और राजमहल में आकर चोर को पकडने का उपाय सोचने लगा। गहरा विचार करने के बाद राजा, चोर को भरे बाजार में से पकड लाता है। चोर के पास से रत्न निकलवाने के लिए वह युक्ति से काम लेता है। वह सब से पहले बुद्धिरूपी चोरकन्या के साथ लग्न-सम्बन्ध जोडता है और चोर को प्रधान बनाता है। वह विविध उपायो द्वारा उसके कब्जे में से रत्न निकलवाने के लिए ही उसे प्रधान बनाता है। चोर को प्रधान बनाने से, प्रजा राजा की निन्दा करने लगी थी, उसी प्रकार कुछ लोग यह कहकर साधुओ की निन्दा करते हैं कि साधु हो जाने पर भी इन्हे खाने और कपड़ा पहनने की क्या आवश्यकता है? परन्तु साधुआत्मा लोगो की निन्दा की परवाह न करके शरीर-चोर के कब्जे में से ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्न लेने के लिए शरीर-चोर को आदर देते हैं। जब आत्मा को बुद्धि द्वारा मालूम होता है कि अब शरीर-चोर के पास एक भी रत्न शेष नही रहा, तब साधु-आत्मा शरीर रूपी चोर को सथारारूपी शूली पर

चढा देता है और आप स्वावलम्बी बन जाता है। स्वावलम्बी आत्मा रूपी राजा ही प्रजा को स्वावलम्बी बना सकता है। जब तक नायक स्वय स्वावलम्बी नही बन जाता, तब तक वह जनसमाज को कैसे स्वावलम्बी बना सकता है?

इस कथा का सार यह है कि महावीर भगवान् ने भत्त (भोजन) के त्याग के विषय मे जो कुछ कहा है, वह निर्दयता से नही, वरन् आत्मा के कल्याण के लिए कहा है। पर सथारा करने और कराने मे विवेक की खास आवश्यकता है। अगर सथारा करने-कराने मे विवेक से काम न लिया जाय तो जैनधर्म का उद्योत नही होता। जब ससार के पदार्थो पर ममता नही रहती और सासारिक पदार्थों की जरा भी सहायता नही ली जाती, तभी भोजन का त्याग करके सथारा लिया जा सकता है। आत्मा की पूर्व तैयारी के बिना सथारा लिया जाय तो मृत्यु पर विजय नही प्राप्त की जा सकती। यही नही, वरन् आत्मा का घात होता है। सथारा तो मृत्यु को जीतने का एक श्रेष्ठ साधन है। मृत्यु को आह्वान करना साधारण आत्मा का काम नही। जो आत्मा ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र का बल पाकर बलिष्ठ और निर्भय बन चुका है, वही बलवान आत्मा भोजन का त्याग करके मृत्यु का आह्वान कर सकता है। वही मृत्यु को जीत सकता है। शरीर का प्रत्याख्यान करने के साथ ही भोजन का प्रत्याख्यान किया जा सकता है।



२६ : वक्रता

जिसके भाव मे सरलता होगी, उसकी भाषा मे भी सरलता होगी और काया मे भी सरलता होगी । इसके विपरीत जिसके कार्यों में और जिसकी भाषा मे वक्रता होगी, उसके भावो मे सरलता नही हो सकती । जो वृक्ष ऊपर से हराभरा दिखाई देता है, उसकी जड़ भी मजबूत और हरीभरी है, ऐसा कहा जाता है, परन्तु जो वृक्ष ऊपर से सूखा हुआ नजर आता है, उसकी जड हरी है, यह कैसे कहा जा सकता है ? इसी प्रकार जब काया और भाषा मे वक्रता होती है, तब कैसे कहा जा सकता है कि भाव मे सरलता है । जब काया में वक्रता होती है तो भाव में भी वक्रता होती है, यह बात एक ऐतिहासिक उदाहरण देकर समझाता हू—

बादशाह अकबर का प्रधान हिन्दू था । यह हिन्दू-प्रधान मुसलमानो को शल्य की भाति चुभता था । उनकी मान्यता थी कि मुसलमान राज्य में हिन्दू-प्रधान कदापि नही होना चाहिये । अतएव वे हिन्दू प्रधान के बदले किसी मुसलमान को प्रधान बनाने का प्रयत्न करते थे । जब उनका कोई प्रयत्न सफल नही हुआ तो उन्होने बेगम को भरमा कर अपनी मनोकामना पूरी करनी चाही । कुछ मुसलमान बेगम के पास पहुंचे और बोले—"आपका भाई शेखहुसेन हर तरह

से काविल है, फिर भी उसे दीवान न वनाकर एक हिन्दू काफिर को सल्तनत का दीवान वनाया गया है ! क्या यह ठीक कहा जा सकता है ?

वेगम मुसलमानो के भ्रम-जाल मे फस गई। जव वादशाह महल मे गए तो वेगम ने तिरिया-चरित द्वारा उन्हे वचन मे वाध लिया। वादशाह ने वेगम से कहा—तुम चाहती क्या हो ? जो चाहती हो, वताओ ! मैं वही देने को तैयार हूं। वेगम वोली—तुम मेरे भाई की कई वार तारीफ किया करते हो। अगर दरअसल वह होशियार है तो उसे दीवान न वनाकर एक हिन्दू काफिर को दीवान क्यो वनाया है ? वादशाह वेगम का मतलव समझ गया। उसने मन-ही-मन विचार किया—वेगम को इस वात का यकीन करा देना चाहिये कि दरअसल उसका भाई कितना काविल है। इस प्रकार विचार कर वादशाह ने कहा—तुम्हारा कहना सही है। मुझ से भूल हुई कि अपने ही घर मे शेखहुसेन जैसे काविल शख्स के होते हुए भी मैंने एक हिन्दू को सल्तनत का वजीर वना दिया। मैं कल से शेखहुसेन को वड़ा वजीर वना देने का इन्तजाम करूंगा।

जव वादशाह राजमहल मे से चले गये तो वे धूर्त मुसलमान फिर वेगम के पास आये और पूछने लगे—'क्या हुआ?' वेगम ने उत्तर दिया—सव काम हो गया है। कल मेरा भाई शेखहुसेन प्रधान वना दिया जायगा। यह सुनकर वे मुसलमान प्रसन्न हुए और कहने लगे—चलो, हिन्दू-प्रधान रूपी एक काटा तो दूर हुआ।

दूसरे दिन वादशाह ने प्रधान से कहा—"तुमने वहुत

दिनो तक प्रधान-पद भोगा। अब थोडे दिनो के लिए शेखहुसेन को यह पद दे दो।

हिन्दू वजीर ने कहा—"जैसी जहापनाह की मर्जी।"

बादशाह ने प्रधान-पद शेखहुसेन को सौपा और हिन्दू प्रधान को पृथक् कर दिया। बादशाह के इस कार्य से मुसलमान बहुत प्रसन्न हुए। मगर उन्हे पता नही था कि शेखहुसेन इस कार्य के लिए योग्य है या नही ? बादशाह को भली-भाति मालूम था कि शेखहुसेन इस पद को सुशोभित नही कर सकता। उन्होने सोचा—शेखहुसेन को मैंने प्रधान पद सौंप तो दिया है परन्तु वह किसी दिन राज्य को भयकर हानि पहुचाएगा। अतएव ऐसा कोई उपाय करना ठीक होगा कि वह स्वय ही प्रधान-पद छोडकर भाग जाय। इस प्रकार विचार कर बादशाह ने शेख से कहा—रोम के बादशाह से कुछ काम है। तुम वहा जाओ और काम को इस प्रकार कर आओ जिससे मेरी प्रतिष्ठा बढे। शेखहुसेन ने बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य की और रोम जाने की तैयारी शुरू कर दी।

शेखहुसेन रोम गया। उसने वहाँ ऐसा व्यवहार किया कि उसका अपमान हुआ। अपमानित होकर वह वापिस लौटा। वह अपने मन मे कहने लगा—मैं इस झझट मे कहा से पड गया। पहले मैं मौज मे था। प्रधान बन कर मुसीबत गले लगा ली। इस प्रकार सोचता—विचारता वह बादशाह के सामने आया। बादशाह ने पूछा—रोम सकुशल जा आये ? शेखहुसेन ने उत्तर मे कहा—आपने खूब झझट में डाल दिया। वहा मेरा अपमान हुआ और जिस काम के

लिये आपने भेजा था वह भी न हुआ । मुझसे यह वजीरत न होगी । मेहरबानी करके यह पद वापिस ले लीजये । बादशाह ने जवाब दिया—यह सब बात तुम अपनी बहिन से कहो ।

बादशाह चाहते थे कि बेगम इन सब बातो से परिचित हो जाय और फिर कभी ऐसा प्रपच न करे । इसी कारण बादशाह ने सब बातें बेगम से कहने के लिए कहा । शेखहुसेन अपनी बहिन के पास गया और कहने लगा—'बहिन! प्रधान पद की यह मुसीबत तुमने क्यों मेरे सिर मढी ! पहले मैं मजे से रहता था, अब चिन्ता ही चिन्ता में दिन बीतता है ।'

बेगम—तुम प्रधान बनाये गये तो बुरा क्या हुआ ? प्रधान का हुक्म तो बादशाह से भी ऊंचा समझा जाता है ।

शेख—बहिन ! तुम्हारा कहना सही है । प्रधान का पद बडा है, यह ठीक है मगर उसे टिकाये रखने के लिये मुझमे काबलियत भी तो होनी चाहिये । मुझमें यह काब-लियत नही है । इसलिए किसी तरह कोशिश करके मुझे इस मुसीबत से बचाओ ।

बेगम—फलां मुल्लाजी और फला मुसलमानो ने तुम्हें वजीर बनाने के लिए मुझ से कहा था, बल्कि जोर दिया था । उन्होने ही मुझे ऐसा करने के लिए भडकाया था, लिहाजा उन्हे बुलवाकर पूछ लेती हूं ।

जिन मुल्लाओ और मुसलमानों ने बेगम को भरमाया था, उन सबको बेगम ने अपने सामने बुलवाकर पूछा—तुम

लोग मेरे भाई को वजीर बनाने के लिए कहते थे। उसे वजीर बना भी दिया गया है। लेकिन वह वजीर बने रहने के लिए तैयार नही है। अब क्या करना चाहिए ?

उन्होने कहा—हमारी ख्वाहिश तो यही थी कि मुसलमान सल्तनत का वजीर भी मुसलमान ही होना चाहिए। इसी वजह से हमने आपके भाई का नाम पेश किया था। अब अगर वह वजीर होना या रहना नही चाहते तो जाने दीजिये।

आखिर बादशाह ने फिर हिन्दू-प्रधान को प्रधान के पद पर नियुक्त किया। बादशाह ने हिन्दू प्रधान से कहा—शेखहुसेन जो काम बिगाड आया है, उसे तुम सुधार आओ। बादशाह की आज्ञा शिरोधार्य करके हिन्दू प्रधान दलबल के साथ रोम गया। रोम के बादशाह को मालूम हुआ कि भारत का प्रधान आया है। रोम के बादशाह ने कहा—भारत के प्रधान का व्यक्तित्व ही क्या है ? एक प्रधान तो पहले आया था, अब यह दूसरा आया है। मिलना तो चाहिए ही।

रोम के बादशाह ने भारत के प्रधान की परीक्षा करने के लिए एक युक्ति रची। उसने अपने ग्यारह गुलामो को भी अपने जैसी ही पोशाक पहना दी। बारहो आदमी एक समान बैठ गये, जिससे पता न लग सके कि वास्तव मे बादशाह कौन है ? भारतीय-प्रधान रोबदार पोशाक पहन कर रोम की राजसभा मे गया। राजसभा मे पहुंचकर प्रधान ने एक ही नजर मे असली बादशाह को पहचान लिया और उसको सलामी दी। बादशाह ने पूछा कि तुम मुझे

बादशाह समझते हो तो ये दूसरे लोग कौन है ? भारत के प्रधान ने उत्तर में कहा—हमारे यहा भारत में होली के अवसर पर ऐसे अनेक बादशाह बनाये जाते है । यह लोग भी ऐसे ही बादशाह हैं । बादशाह ने फिर पूछा—यह बात तुमने कैसे जानी कि ये लोग असली बादशाह नही है और मैं असली बादशाह हूं । भारत के प्रधान ने कहा—जिस समय मैं राजसभा मे दाखिल हुआ, उस समय यह मेरी पोशाक की ओर वक्र दृष्टि से देखने लगे । अकेले आप ही गम्भीर होकर बैठे रहे । आपकी गम्भीरता देखकर मै जान सका कि वास्तव मे आप ही बादशाह है । यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ । प्रधान के साथ उसने हाथ मिलाया और उसकी पीठ ठोक कर योग्यता का प्रमाण-पत्र दिया । रोम के बादशाह ने भारतीय प्रधान शेखहुसेन के आने का जिक्र करते हुए कहा—तुमसे पहले जो प्रधान आया था, वह तो बिल्कुल अयोग्य था । भारतीय प्रधान ने रोम के बादशाह के मुख से शेखहुसेन की निन्दा सुनकर कहा—जहापनाह ! शेखहुसेन को तो आपकी परीक्षा करने भेजा था । वास्तव में वह अयोग्य नही था । इस प्रकार भारतीय-प्रधान ने अपनी प्रतिष्ठा बढाने के साथ शेखहुसेन की अप्रतिष्ठा भी दूर की ।

प्रधान रोम से लौटकर बादशाह अकबर के समक्ष आया । उसने रोम का सारा वृत्तान्त कह सुनाया । बादशाह सारी बाते सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने मुसलमानो को बुलाकर कहा—'वजीर तो ऐसा होना चाहिये ।' बादशाह का कथन सुनकर मुसलमानो ने कहा—'अब हमारी समझ में आया कि आप जो कुछ करते है, योग्य ही करते है ।"

इस कथा से यह सार निकलता है कि जब भाव में सरलता आती है तब काया में भी सरलता आती है और जब भाव में सरलता नही होती तो काया मे भी सरलता नही होती। भाव मे वक्रता आने से काया मे भी वक्रता आ जाती है। उपर्युक्त उदाहरण मे हम देख चुके है कि नकली बादशाहो ने भी पोशाक तो असली बादशाह सरीखी ही पहनी थी, परन्तु उनके भाव वक्र होने के कारण उनकी काया में भी वक्रता आ गई थी। इसके विपरीत बादशाह के भाव मे वक्रता न थी अतएव उनकी काया मे भी वक्रता न आई। भाव की वक्रता तथा सरलता का पता तो काया की वक्रता और सरलता से सहज ही लग जाता है। अतएव भाव में सरलता रखने के साथ काया मे और भाषा मे भी सरलता रखना आवश्यक है। अगर कोई मनुष्य काया मे वक्रता रखकर अपने भाव सरल बतलाता है तो उसका कथन मिथ्या है।

३० : कषाय-विजय

कषाय की तीव्रता के कारण ही नरक आदि नीच गतियो मे जाना पडता है। नरक कही बाहर से नही आता। वह तो अपने ही परिणामो में है। कितने ही लोग दुःख माथे पर आ जाने के समय हाय-तोबा मचाने लगते हैं।

वे यह नही सोचते कि दु ख कहां से और कैसे आया है ? दु ख न बाहर से आते हैं और न आये ही हैं। वे तो अपने ही मलिन परिणामो की उपज हैं । मलिन परिणामो का त्याग करना ससार पर विजय प्राप्त करने का मार्ग है। साथ ही मलिन परिणामो के अधीन होना संसार के अधीन होने के समान है । अतएव जल्दी–से–जल्दी कषाय का त्याग करना चाहिये । प्रत्येक व्यक्ति को अपने हृदय में यह बात अंकित कर रखनी चाहिए कि—"कषाय की बदौलत ही हमारा स्वाधीन आत्मा पराधीनता में पडा है । आत्मा को स्वाधीन बनाने के लिए कषाय शत्रु पर विजय प्राप्त करनी चाहिए ।"

जो स्थान और कारण कषाय उत्पन्न करने वाला है, वही स्थान और कारण कषाय को जीतने वाला भी है । यह बात स्पष्ट करने के लिये भी उत्तराध्ययनसूत्र मे आया हुआ एक उदाहरण तुम्हे सुनाता हू ।

एक बार एक क्षत्रिय ने दूसरे क्षत्रिय को जान से मार डाला । मृत क्षत्रिय की पत्नी उस समय गर्भवती थी । वह क्षत्रिय–पत्नी विचार करने लगी—मेरे पति मे थोडी कायरता थी, तभी तो उनकी अकालमृत्यु हुई। वे वीर होते तो अकाल में मृत्यु न होती । क्षत्रियपत्नी की इस वीर–भावना का प्रभाव उसके गर्भस्थ पुत्र पर पडा । आगे चल कर वह पुत्र वीर क्षत्रिय बना ।

माता अपने बालक को जैसा चाहे, वैसा बना सकती है । माता चाहे तो अपने पुत्र को वीर भी बना सकती है और चाहे तो कायर भी बना सकती है। साधारणतया सिंह

का बालक सिंह ही बन सकता है और सूअर का बालक सूअर ही बनता है। उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता परन्तु मनुष्य को इच्छानुसार वीर और कायर बनाया जा सकता है।

क्षत्रियपत्नी ने अपने बालक को वीरोचित शिक्षा देकर वीर क्षत्रिय बनाया। क्षत्रियपुत्र वीर होने के कारण राजा का कृपापात्र बन गया।

एक दिन राजा ने क्षत्रियपुत्र की वीरता की परीक्षा लेने का विचार किया। राजा ने सोचा—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए क्षत्रियपुत्र को भेजने से एक पथ दो काज होंगे। एक तो शत्रु वश में आ जायगा, दूसरे क्षत्रियपुत्र की वीरता की परीक्षा भी हो जायगी।

इस प्रकार विचार कर राजा ने क्षत्रियपुत्र को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना के साथ भेज दिया। क्षत्रियपुत्र वीर था। वह तैयार होकर शत्रु को जीतने के लिए रवाना हुआ। उसने शत्रु की सेना को अपनी वीरता का परिचय दिया, परास्त किया और शत्रु राजा को जीवित ही कैद करके राजा के सामने उपस्थित किया। राजा क्षत्रियपुत्र का पराक्रम देख बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उचित पुरस्कार देकर उसका सत्कार किया। सारे गाव में क्षत्रियपुत्र की वीरता की प्रशसा होने लगी। जनता ने भी उसका सम्मान किया। क्षत्रियपुत्र प्रसन्न होता हुआ अपने घर जाने के लिए निकला। रास्ते में वह विचार करने लगा—आज माता मेरी पराक्रमगाथा सुनकर अवश्य प्रसन्न

होगी। घर पहुंचते ही वह सीधा माता को प्रणाम करने और उसका आशीर्वाद लेने गया। पर जब वह माता के पास पहुचा तो उसने देखा कि माता रुष्ट है और पीठ देकर बैठी है। माता को रुष्ट और क्रुद्ध देखकर पुत्र विचार करने लगा—मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध बन गया है कि माता रुष्ट और क्रुद्ध हुई है ?

आजकल का पुत्र होता तो माता को मनचाही सुना देता परन्तु उस क्षत्रियपुत्र को तो पहले से ही वीरोचित शिक्षा दी गई थी कि—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।

अर्थात्—माता देवतुल्य है, पिता देवतुल्य है और आचार्य देवतुल्य है। अतएव माता, पिता और आचार्य की आज्ञा की अवज्ञा नही करनी चाहिए।

यह सुशिक्षा मिलने के कारण क्षत्रियपुत्र ने नम्रतापूर्वक माता से कहा—मा, मुझ से ऐसा क्या अपराध बन गया है कि आप मुझ पर इतनी क्रुद्ध हैं ? मेरा अपराध मुझे बताइए, जिससे मैं उसके लिए आपसे क्षमायाचना कर सकू ?

माता बोली—जिसका पितृहन्ता शत्रु मौजूद है, उसने यदि दूसरे शत्रु को जीता भी तो क्या हुआ ?

क्षत्रिययुत्र ने चकित होकर पूछा—क्या मेरे पिता का घात करने वाला शत्रु अभी तक जीवित ?

माता—हा, वह अभी तक जीवित है ?

क्षत्रियपुत्र—ऐसा है तो अभी तक मुझे बताया क्यो नही?

माता—मैं तुम्हारे पराक्रम की जाच कर रही थी। अब मुझे विश्वास हो गया कि तू वीरपुत्र है। जब तू दूसरे शत्रु को परास्त कर चुका है तब अपने पिता का घात करने वाले शत्रु को भी अवश्य परास्त कर सकेगा। तेरा सामर्थ्य देखे बिना शत्रु के साथ भिड जाने की बात मैं कैसे कहती ?

क्षत्रियपुत्र माता का कथन सुन और उत्तेजित हो कहने लगा—माताजी ! मैं अभी शत्रु को पराजित करने जाता हूं। अपने पिता के वैर का वदला लिये बिना मैं हर्गिज नही लौटूंगा। इतना कहकर वह चल दिया।

दूसरी ओर क्षत्रियपुत्र के पिता की हत्या करने वाले क्षत्रिय ने सुना—जिसे मैंने मार डाला था, उसका वीर क्षत्रियपुत्र क्रुद्ध होकर अपने पिता का वैर भजाने के लिए, मेरे साथ लडाई करने आ रहा है। यह सुनकर उस क्षत्रिय ने विचार किया—वह युवक बडा वीर है और उसके शरण मे चला जाना ही हितकर है। इसी मे मेरा कल्याण है। इस तरह विचार करके वह क्षत्रियपुत्र के सामने गया और उसके अधीन हो गया। क्षत्रियपुत्र उस पितृघातक शत्रु को लेकर अपनी माता के पास आया। उसने माता से कहा—इसी क्षत्रिय ने मेरे पिता की हत्या की है। इसे पकड कर तुम्हारे पास ले आया हू। अब जो तुम कहो, वही दण्ड इसको दिया जाय।

माता ने अपने पुत्र से कहा—इसी से पूछ देख कि इसके अपराध का इसे क्या दण्ड मिलना चाहिए ?

पुत्र ने शत्रु से पूछा—बोलो, अपने पिता के वैर का तुमसे किस प्रकार बदला लिया जाय ?

शत्रु ने उत्तर दिया—तुम अपने पिता के वैर का बदला उसी प्रकार लो, जिस प्रकार शरण मे आये हुए मनुष्य से लिया जाता है।

क्षत्रियपुत्र की माता सच्ची क्षत्रियाणी थी। उसका हृदय तुच्छ नही, विशाल था। माता ने पुत्र से कहा—बेटा, अब इसे शत्रु नही, भाई समझ।

जब शरण में आ गया है तो शरणागत से बदला लेना सर्वथा अनुचित है। शरण मे आया हुआ कितना ही बडा अपराधी क्यो न हो, फिर भी भाई के समान ही है। अतएव यह तेरा शत्रु नही, भाई के समान ही है। मैं अभी भोजन बनाती हू। तुम दोनो भाई साथ बैठकर आनन्दपूर्वक जीमो। तुम सगे भाइयो की तरह साथ-साथ जीमो और प्रेमपूर्वक रहो। मै यही देखना चाहती हू।

माता का कथन सुनकर पुत्र ने कहा—माताजी ! तुम पितृघातक शत्रु को भी भाई बनाने को कहती हो, सो ठीक है, परन्तु मेरे हृदय मे जो क्रोधाग्नि जल रही है, उसे मै किस प्रकार शान्त करूं ?

माता ने उत्तर दिया—पुत्र ! किसी मनुष्य पर क्रोध उतार कर क्रोध शान्त करने मे कोई वीरता नही है। क्रोध पर ही क्रोध उतार कर क्रोध शान्त करना अथवा क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है। भगवान् महावीर

ने तो कहा है—"उवसमेण हणे कोह" अर्थात् उपशम-शांति से क्रोध को जीतना चाहिये। इसी प्रकार बौद्धशास्त्र मे कहा है—

न हि वेरेण वेराणि समन्तीह कदाचन।
अवेरेण वेराणि, एस धम्मो सनन्तनो ॥

अर्थात्—इस ससार मे वैर से वैर कदापि शान्त नही होता। अवैर-प्रेम से ही वैर शान्त होता है। प्रेम से वैर शान्त करना ही सनातन धर्म है।

असली खूबी तो शान्ति-क्षमा से क्रोध को शान्त करने मे ही है। क्रोध भयकर शत्रु है। इस शत्रु को क्षमा से जीतना ही सच्ची वीरता है। नमीराज ने भी इन्द्र से कहा था—

जो सहस्सं सहस्साण सगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाण एस सो परमो जयो ॥

—उत्तराध्ययन, ९

तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रोध को अक्रोध से जीतता है, वही सच्चा वीर है। इसी प्रकार जो कषाय पर विजय प्राप्त करता है, वही सच्चा वीर है। कषायो पर विजय प्राप्त करने मे ही वीरता है।

माता का आदेश पाकर पुत्र ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पितृहन्ता शत्रु को गले लगाया। दोनो ने सगे भाइयो की तरह साथ-साथ भोजन किया।

कहने का आशय यह है कि जो स्थान कषाय उत्पन्न करने का है, वही स्थान कषाय जीतने का भी है। वे वास्तव मे वीर पुरुष हैं, जो अपने शत्रुओ को भी मित्र बना लेते हैं। सच्ची वीरता तो इसी में है कि क्रोध–अक्रोध–शान्ति–क्षमा से जीता जाय और पशुओं को भी मित्र बना लिया जाय। शत्रुता जब मित्रता के रूप मे परिणत हो जाती होगी, तब कैसा अनिर्वचनीय आनन्द आता होगा !

यह तो शास्त्र की बात हुई। इतिहास में भी ऐसे उल्लेख देखने–जानने को मिलते है। उदयपुर के पृथ्वीराज जी और उनके काका सूरजमल्ल जी दिन भर एक दूसरे के साथ युद्ध करते थे और शाम के समय दोनो एक साथ बैठकर भोजन करते थे और फिर युद्ध मे लगे हुए एक दूसरे के घावो पर पट्टी बांधते थे। परन्तु आजकल तो लोगो के मन इतने अधिक संकुचित तथा मलिन हो गये हैं कि साधारण-सी वात मे भी क्लेश करने लगते है।

कषाय को जीतने का सरल मार्ग यह है कि वैरी को भी अपना हितैषी समझ लिया जाय। शत्रु भी मित्र की भाति हमारा उपकार करता है, ऐसा समझकर उसके प्रति सद्भाव प्रकट करने चाहिए। पैर मे चुभे हुए काटे को निकालने के लिये सुई चुभोनी पड़ती है या डाक्टर आपरेशन करता है तो क्या उन पर नाराजगी प्रकट करनी चाहिये ? नही। लोग यही मानते है कि डाक्टर हमारा हित करता है। जिस प्रकार डाक्टर पीड़ा पहुचाने पर भी हितैषी माना जाता हैं, उसी प्रकार तुम्हारा वैरी भी तुम्हारा हित करता है। ऐसा मानो और उसके प्रति वैरभाव न रखो तो तुम

अवश्य ही कषाय को जीत सकोगे। कषाय को जीतने से आत्मकल्याण होगा।

३१ : ईमानदार श्रावक

एक गरीब श्रावक था। उसने सोचा—मेरी नियत साफ है, फिर भी मुझे कोई उधार नही देता। ऐसी दशा मे काम चलाने के लिये कोई उपाय करना चाहिये। पडोस में रहने वाला सेठ धार्मिक है। जब वह सामायिक मे बैठे तो गले मे पहना हुआ उनका कण्ठा क्यो न उतार लिया जाय? ऐसा विचार कर वह श्रावक, सामायिक मे बैठे हुए सेठजी के पास गया और बोला—सेठ जी! आपने सामायिक की ही है। ससार की समस्त वस्तुओ से सामायिक श्रेष्ठ है। अतएव आप अपनी सामायिक मे स्थिर रहे—विचलित न हो। इतना कहकर श्रावक ने सेठ के गले में से कठा निकाल लिया। सेठ सामायिक मे स्थिर बैठे रहे। वह न कुछ भी बोले और न उन्होने अपना चित्त ही चचल होने दिया।

सामायिक पालकर सेठ घर पहुचा। मुनीम आदि ने पूछा—आज आपके गले मे कठा क्यो नही नजर आता? सेठ ने सोचा—सच कह दूगा तो लोग गरीब श्रावक को हैरान करेंगे और उसने कह दिया—पड़ गया होगा कही।

तुम कंठे की इतनी ज्यादा चिन्ता क्यों करते हो ? इस विषय मे किसी को कुछ भी चिन्ता करने की आवश्यकता नही । जब यह शरीर ही मेरा नही तो कठा मेरा कैसे हो सकता है ?

कठा ले जाने वाले श्रावक की नियत साफ थी। जब उसका काम निकल गया तो वह श्रावक कठा वापिस ले आया। सेठ ने कहा—कण्ठा मेरा नही है। जव यह शरीर ही मेरा नही तो कण्ठा मेरा कैसे हो सकता है ? उस श्रावक ने कहा—कण्ठा तुम्हारा नही तो मेरा भी नही है। मैं इसे अपने पास कैसे रख सकता हू ? इतना कहकर श्रावक ने सेठ के सामने कण्ठा रख दिया और वह चलता बना।

३२ : दोष-स्वीकृति

वैर भूलकर किस प्रकार अपने अपराध की आलोचना करनी चाहिये, यह जानने के लिये एक उदाहरण लीजिये।

भारत के प्राचीन राजाओ मे राजा भोज बहुत प्रसिद्ध है। बहुत कम भारतवासी ऐसे मिलेंगे जो भोज के नाम से अपरिचित हो। राजा भोज के समय मे अनेक अच्छी बाते होती थी। भोज स्वयं अच्छे कामो मे भाग लेता था और

किसी को दु.ख नही देता था । भोजराज की मृत्यु होने पर एक विद्वान् ने कहा है—

अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिता खण्डिता सर्वे भोजराजे दिवंगते ।।

अर्थात्—आज भोजराज का स्वर्गवास होने पर धारा नगरी निराधार हो गई, सरस्वती का सहारा न रहा और सब पण्डित खण्डित हो गये ।

इस कथन से स्पष्ट है कि राजा भोज अपनी प्रजा का प्रेम से पालन करता था और विद्या का बड़ा ही अनुरागी था । वह विद्वानो का खूब आदर-सत्कार करता था । भोज स्वय विद्वान् था, अत. विद्या और विद्वानो की कद्र करना उसके लिये स्वाभाविक बात थी । राजा भोज दयालु और गुणवान् था ।

भोज के राज्य मे एक गरीब ब्राह्मण रहता था । ब्राह्मण निर्धन होने पर भी स्वाभिमान का धनी था । जो कुछ मिलता, उसी से वह अपना निर्वाह कर लेता था । सचय के उद्देश्य से वह कभी किसी से कुछ न मागता और न अपना अपमान कराता । वह भिक्षा पर अपना निर्वाह कर लेता था । "ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा ।" उसके घर में तीन प्राणी थे—वह, उसकी माता और पत्नी । पर्याप्त भिक्षा न मिलने पर कभी–कभी उन्हे भूखा रहना पड़ता था ।

एक दिन की बात है कि ब्राह्मण बहुत घूमा परन्तु उसे भिक्षा न मिली । घूमते–घूमते वह थक गया और भूख

उसे सता रही थी। अन्त मे उसने विचार किया—सम्भव है स्त्री ने कुछ बचा रखा हो तो इस समय तो वह खिलाएगी ही, फिर देखा जायगा। इस प्रकार विचार कर वह घर लौट आया। उसकी माता और पत्नी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी और सोच रही थी कि वह कुछ लावे तो बनाये, खायें, और खिलाये। मगर ब्राह्मण को खाली हाथ आया देखा तो बडी निराशा हुई। वह ब्राह्मण से कुछ भी नही बोली। उसने अपनी पत्नी से कहा—लाओ, कुछ हो तो खाने को दो।

पत्नी—कुछ लाए हो तो बना दू। घर मे तो कुछ भी नही है।

ब्राह्मण—रोज लाता हूं। आज नही मिला तो स्त्री होकर एक दिन का भोजन भी नही दे सकती ?

ब्राह्मण बहुत भूखा था। उसे क्रोध आ गया। उधर ब्राह्मणी भी लाल हो गई। ब्राह्मणी ने कहा–कभी एक दिन से ज्यादा का भोजन लाए हो तो मुझसे कहो कि सम्भाल कर क्यो न रखा ? लाकर देना नही और फिर ऊपर से मागना और तकरार करना, यह भी भला कोई बात है ! अगर खिलाने की हिम्मत नही थी तो विवाह किये बिना ही कौनसा काम अटकता था ?

ब्राह्मण तपा हुआ आया था। उसने क्रोध से तमतमाते हुये कहा—शखिनी ! मेरे घर तेरे जैसी स्त्री आई तो अब खाने को कैसे मिल सकता है ? कोई सुलक्षणा स्त्री आती तो मैं कमा लाता। मगर तू ऐसी अभागिनी मिली है कि

मैं भटकते-भटकते हैरान हो गया पर चार दाने अन्न भी न मिल सका। तू अर्द्धाङ्गिनी है। तुझे भी कुछ करना चाहिये था। मेहनत मजूरी करके भी कुछ रखना चाहिये था। स्त्री को यह तो सोचना चाहिये था कि कदाचित् कोई अतिथि आ जाय तो कैसी बीतेगी !

ब्राह्मणी और गरम हो गई। वह कहने लगी—बस बहुत हो गया। अब जीभ बन्द कर लो। धिक्कार है उन सास जी को, जिन्होंने तुम्हे जन्म दिया है। मैं अभागिनी ही सही, तुम्हारी माता तो भाग्यशालिनी है। उनके भाग्य से ही कुछ मिला होता। दरअसल अभागिन मैं नहीं, तुम्हारी माता है, जिन्होने तुम सरीखा सपूत पैदा किया, जिसके पीछे मैं भी कष्ट पा रही हू।

ब्राह्मण ने कहा—तेरे मा-बाप ने तुझे तो खूब पैदा किया है; जो अपनी सास के लिये ऐसे शब्द बोलती है ! निर्लज्जा को लज्जा छू भी नही गई !

यह कहकर ब्राह्मण अपनी पत्नी को पीटने लगा। ब्राह्मणी चिल्लाई—हाय, बचाओ, दौड़ो कोई ! उसके सिर से खून बहने लगा। स्त्री की पुकार सुनकर वहा पुलिस आ गई। पुलिस ने पूछताछ की। ब्राह्मणी कहने लगी—देखो मुझे इतना मारा है कि सिर से खून बहने लगा। लड़ाई का कारण यही है कि घर मे कुछ नही और खाने को मागते हैं। इस राज्य मे ऐसे भी आदमी रहते है ! घर में दाना नही और विवाह करके स्त्री को पकड़ लाते हैं और उसकी मिट्टी पलीत करते है। उन्ही से पूछ लो, लड़ाई का और कोई कारण हो तो।

ब्राह्मण सोचने लगा—वुरा हुआ । मैंने वृथा ही क्रोध में आकर इसे मारा । इज्जत जाने का मौका आ गया ।

पुलिस ने कहा—इसमे स्त्री का कोई दोष नही । यह पुरुष का ही दोष है । ब्राह्मण ! तुमने स्त्री पर अत्याचार किया है । तुम गिरफ्तार किये जाते हो ।

ब्राह्मण गिरफ्तार होकर कोतवाल के पास पहुचाया गया । ब्राह्मण सोचने लगा—क्रोध मे आकर ब्राह्मणी को मार तो दिया, मगर अब कहूगा क्या ? पुलिस के सामने अपनी कष्टकथा कहने से लाभ ही क्या ? सिर्फ लज्जित होने के और क्या होगा ? चाहे जो हो, राजा के सिवाय और किसी को कुछ भी उत्तर न दूगा ।

कोतवाल ने कहा—तुम अपना बयान लिखाओ । तुमने क्या किया है और किस अपराध मे गिरफ्तार किये गये हो ।

ब्राह्मण वोला—मैं महाराज भोज को छोड़कर और किसी के सामने बयान न दूगा । कोतवाल ने वहुत डाट-फटकार बतलाई, मगर ब्राह्मण टस से मस नही हुआ । उसनें बयान नहीं दिया । कोतवाल ने सोचा, ब्राह्मण बडे जिद्दी होते है । इससे जिद्द न करके महाराज के सामने पेश कर देना ही ठीक होगा । उसने ब्राह्मण के कथनानुसार राजा के सामने ही ब्राह्मण को पेश करने का निश्चय किया ।

पहले जमाने मे आजकल की तरह मुकदमे की तारीखो पर तारीखे नही पड़ती थी । मामला मौखिक सुनकर चटपट

फैसला दे दिया जाता था। आजकल का न्याय बडा महंगा और विचित्र है। उस समय का न्याय सस्ता और सीधा था।

दूसरे दिन राजा भोज अपनी राज-सभा मे आये। सिंहासन पर आसीन हुए। क्रम से सब अपराधी उनके सामने पेश किये गये। संयोगवश उस दिन पहला नम्बर उस ब्राह्मण का ही था। राजा भोज ने ब्राह्मण के विषय में पूछा—यह कौन है? इसने क्या अपराध किया है? सरकारी आदमी ने कहा—यह ब्राह्मण है। इसने अपनी स्त्री को इतनी निर्दयता से पीटा है कि उसके सिर से खून आ गया। अगर स्त्री को दरबार मे पेश किया जाता तो न जाने क्या-क्या कहती। परन्तु स्त्री को दरबार मे लाने की आज्ञा नही है। इसलिये उसे पेश नही किया गया। वह कहती थी—यह ब्राह्मण कुछ लाकर तो देता नही है और खाने को मागता है। खाना न मिलने पर इसने स्त्री को बुरी तरह पीटा है।

राजा—ब्राह्मण! क्या ठीक है?

ब्राह्मण—महाराज! और सब वात ठीक है, एक बात गलत है। यह मुझे ब्राह्मण वता रहे है। पर मैं ब्राह्मण नही, चाण्डाल हू।

कोतवाल—हुजूर! यह आपके सामने ही झूठ बोलता है। यह ब्राह्मण है और अपने आपको चाण्डाल प्रकट करता है।

ब्राह्मण—महाराज! यह लोग ऊपर की वातें देखकर मुझे ब्राह्मण कहते हैं। भीतर की वात का इन्हे पता नही।

में असली भीतरी बात कह रहा हूं।

> सत्य नास्ति तपो नास्ति नास्तीन्द्रियविनिग्रहः।
> सर्वभूतदया नास्ति एतच्चाण्डाल-लक्षणम् ॥
>
> सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म, ब्रह्म इन्द्रियनिग्रहः॥
> सर्वभूतदया ब्रह्म, ह्येतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥

महाराज ! सत्य का अभाव, तप का अभाव, इन्द्रियनिग्रह का अभाव और भूतदया का अभाव, चाण्डाल का लक्षण है। जिसमें सत्य हो, तप हो, इन्द्रियनिग्रह हो,प्राणियों की दया हो, वह ब्राह्मण कहलाता है।

जो ब्राह्मण होगा वह आपके सामने अभियुक्त बनकर नहीं आयगा। मुझ में चाण्डाल के लक्षण मौजूद है, अतएव मैंने अपने आपको चाण्डाल प्रगट किया है।

मित्रो ! आप दूसरो पर ही यह लक्षण घटाने का प्रयत्न मत करो। शास्त्र में श्रावक को भी ब्राह्मण कहा है। आप श्रावक होने का दावा करते है तो यह लक्षण अपने ही ऊपर घटाने का प्रयत्न करना।

ब्राह्मण ने कहा—जिसमे ब्राह्मण के ये लक्षण मौजूद हैं, वह ऊपर से चाण्डाल होने पर भी वास्तव मे ब्राह्मण है। जिसमे चाण्डाल के ये लक्षण पाये जाते हैं, वह ऊपर से ब्राह्मण होने पर भी भीतर से चाण्डाल ही है।

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा दंग रह गया। उसने सोचा—यह ब्राह्मण कितना स्पष्टवक्ता और आत्मबली है !

मगर राजा को इस मामले की जड देखनी थी। अत राजा ने कहा—"तुम चाहे ब्राह्मण होओ, चाहे चाण्डाल होओ। जो अपराध करेगा, उसे दण्ड मिलेगा ही। अब यह बतलाओ कि तुमने अपनी स्त्री को क्यो मारा ?"

ब्राह्मण पढा-लिखा था। उसने राजा से कहा—"राजन् ! मेरी बात सुन लीजिए और फिर जिसका अपराध हो, उसे दण्ड दीजिए।"

राजा—हा, सुनाओ, क्या कहना चाहते हो !

ब्राह्मण—

अम्बा तुष्यति न मया न तया, साऽपि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया, वद राजन् ! कस्य दोषोऽयम्॥

महाराज ! आप निर्णय कीजिए कि वास्तव में अपराध किसका है ? और जिसका अपराध सिद्ध हो, उसे दण्ड दीजिए। हम घर में तीन प्राणी हैं—मैं, मेरी माता और मेरी पत्नी। पुत्र कैसा भी हो, मगर माता का धर्म उससे प्रेम करना और उसकी रक्षा करना है। कहावत है—"पूत कपूत हो जाता है, मगर माता कुमाता नही होती।" मगर मेरी माता, मेरी रक्षा तो दूर रही, मीठे शब्द भी नही बोलती। कभी मुझे बेटा कहकर सम्बोधन भी नही करती, वरन् स्नेह के बदले गालिया देती है। किसी-किसी घर मे मा-बेटे मे स्नेह नहीं होता, तो सास-बहू मे ही प्रेम होता है, मगर मेरे घर यह भी नही है। मा मेरी पत्नी को गालिया तो देती है, पर कभी मधुर वचन नही कहती।

में असली भीतरी बात कह रहा हूं।

सत्य नास्ति तपो नास्ति नास्तीन्द्रियविनिग्रह. ।
सर्वभूतदया नास्ति एतच्चाण्डाल-लक्षणम् ॥

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म, ब्रह्म इन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वभूतदया ब्रह्म, ह्येतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥

महाराज ! सत्य का अभाव, तप का अभाव, इन्द्रिय-निग्रह का अभाव और भूतदया का अभाव, चाण्डाल का लक्षण है। जिसमें सत्य हो, तप हो, इन्द्रियनिग्रह हो, प्राणियों की दया हो, वह ब्राह्मण कहलाता है।

जो ब्राह्मण होगा वह आपके सामने अभियुक्त बनकर नही आयगा। मुझ मे चाण्डाल के लक्षण मौजूद है, अतएव मैंने अपने आपको चाण्डाल प्रगट किया है।

मित्रो ! आप दूसरो पर ही यह लक्षण घटाने का प्रयत्न मत करो। शास्त्र में श्रावक को भी ब्राह्मण कहा है। आप श्रावक होने का दावा करते हैं तो यह लक्षण अपने ही ऊपर घटाने का प्रयत्न करता।

ब्राह्मण ने कहा—जिसमे ब्राह्मण के ये लक्षण मौजूद हैं, वह ऊपर से चाण्डाल होने पर भी वास्तव मे ब्राह्मण है। जिसमे चाण्डाल के ये लक्षण पाये जाते हैं, वह ऊपर से ब्राह्मण होने पर भी भीतर से चाण्डाल ही है।

ब्राह्मण की बात सुनकर राजा दंग रह गया। उसने सोचा—यह ब्राह्मण कितना स्पष्टवक्ता और आत्मबली है !

मगर राजा को इस मामले की जड देखनी थी। अतः राजा ने कहा—"तुम चाहे ब्राह्मण होओ, चाहे चाण्डाल होओ। जो अपराध करेगा, उसे दण्ड मिलेगा ही। अब यह बतलाओ कि तुमने अपनी स्त्री को क्यो मारा ?"

ब्राह्मण पढा-लिखा था। उसने राजा से कहा—"राजन् ! मेरी बात सुन लीजिए और फिर जिसका अपराध हो, उसे दण्ड दीजिए।"

राजा—हा, सुनाओ, क्या कहना चाहते हो !

ब्राह्मण—

अम्बा तुष्यति न मया न तया, साऽपि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया, वद राजन् ! कस्य दोषोऽयम्॥

महाराज ! आप निर्णय कीजिए कि वास्तव मे अपराध किसका है ? और जिसका अपराध सिद्ध हो, उसे दण्ड दीजिए। हम घर में तीन प्राणी है—मैं, मेरी माता और मेरी पत्नी। पुत्र कैसा भी हो, मगर माता का धर्म उससे प्रेम करना और उसकी रक्षा करना है। कहावत है—"पूत कपूत हो जाता है, मगर माता कुमाता नही होती।" मगर मेरी माता, मेरी रक्षा तो दूर रही, मीठे शब्द भी नही बोलती। कभी मुझे बेटा कहकर सम्बोधन भी नही करती, वरन् स्नेह के बदले गालिया देती है। किसी-किसी घर मे मा-बेटे मे स्नेह नही होता, तो सास-बहू मे ही प्रेम होता है, मगर मेरे घर यह भी नही है। मा मेरी पत्नी को गालिया तो देती है, पर कभी मधुर वचन नही कहती।

यह सुनकर आप सोचेंगे कि यह माता का अपराध है, मगर वात यही खत्म नही होती । अनेक स्त्रियां ऐसी होती हैं कि सास की जली-कटी वाते सह लेती है—शान्ति के साथ सुन लेती है लेकिन मेरी स्त्री, माता की आधी वात भी नहीं सुन सकती । यह एक के वदले चार सुनाती है । अपनी वातो से उसे शान्त तो करती नही, उल्टे जला देती है । कई जगह सास–वहू मे प्रेम नही होता । मगर पति–पत्नी मे प्रेम होता है । लेकिन मेरे घर यह भी नही है । मुझमे और मेरी पत्नी मे कितना प्रेम है, यह वात तो इसी मामले से जानी जा सकती है । अनेक माताएं कैकेयी के समान होती है, मगर उनके पुत्र रामचन्द्र सरीखे होते है । मगर मैं ऐसा अभागा हू कि अपनी माता को जननी तक नही कहता । सदा अवज्ञा ही करता रहता हू । अपशव्दो की कभी-कभी वौछार कर देता हू । राजन् ! आप ही निर्णय कीजिए, यह सव किसका अपराध है ? जिसका अपराध हो उसे दण्ड दीजिए ।

राजा भोज वडा वुद्धिमान् था । उसने कहा—"मैं सव समझ गया ।" और राजा ने भण्डारी को आज्ञा दी—"इस ब्राह्मण को एक हजार मुहरें दे दो ।" राजा की आज्ञा सुनकर भण्डारी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । सोचने लगा—वात क्या हुई ? ब्राह्मण ने अपराध किया है—अपनी स्त्री का खून वहाया है और महाराज उसे यह इनाम दे रहे हैं । अपराध की सजा एक हजार मुहर इनाम !

भण्डारी की मुखमुद्रा पर विस्मय का जो भाव उदित हुआ, उसे पहचान कर राजा ने कहा—तुम्हे क्या शका है ?

क्यो आश्चर्य हो रहा है ? स्पष्ट कहो न !

भण्डारी बोला—स्त्री को पीटने के बदले इस ब्राह्मण को एक हजार मुहर मिलने की बात नगर मे फैल जायगी तो बेचारी स्त्रियो पर घोर सकट आ पडेगा और राज्य का खजाना खाली होने का अवसर उपस्थित हो जायगा। सभी लोग अपनी-अपनी स्त्री को पीट कर इनाम लेने के लिए आ खड होगे।

राजा ने कहा—भण्डारी, बात तुम्हारी समझ में नही आई। जो आदमी खाता-पीता सुखी है, वह अपनी स्त्री को मारेगा, तो उसे दण्ड देने मे जरा भी रियायत नही की जायगी, चाहे वह मेरा पुत्र ही क्यो न हो ! ऐसे अत्याचारी का पक्ष मैं कदापि नही लूंगा। मैं स्त्री को मारने के बदले इसे मुहर नही दिला रहा हू किन्तु इसे दूसरा दुख है। उस दुख को दूर करने के लिए ही मुहर दिलाता हू। दण्ड और कानून, अन्याय और अत्याचार रोकने के लिए है, बढाने के लिए नही। अगर इस ब्राह्मण को कैद कर लिया जाय तो इसकी इज्जत जायगी, यह निर्लज्ज बन जायगा और अपराध का जो मूल कारण है वह दूर नही होगा। अभी मा, बेटा और स्त्री लड़ते-झगडते भी एक साथ रहते हैं। इसे कारागार मे डाल देने से सब तितर-बितर हो जाएगे। अभी तक किसी न किसी को त्यागा नही है, मगर कैद की हालत मे एक दूसरे को छोडकर भाग जायेगे। इसके अतिरिक्त इसे सजा देने का अर्थ इसकी वृद्धा माता और गरीब पत्नी को सजा देना होगा। ऐसा करने से अनेक प्रकार की बुराइया फैल जायेंगी।

भण्डारी ! तुम इस ब्राह्मण की बुद्धि पर विचार करो । इसने कही बयान नही दिया और यहा आया है । यह जानता था कि कानून के शब्दो को ही सभी कुछ समझ कर उन्ही से चिपटे रहने वाले लोग मेरा दुःख नहीं मिटा सकते । फिर उनके सामने दु.खड़ा रोकर क्यो अपनी इज्जत गवाऊं ? असल मे इसके अपराध का कारण दरिद्रता है । मैंने मुहरे देकर उस दरिद्रता को दण्डित किया है । मेरी समझ मे राजा का यही धर्म है । राजा को अपराध के मूल कारणो पर विचार करना चाहिए । रोग की ऊपरी औषध करना पर्याप्त नही है, मगर रोग के कारणों को दूर करना ही महत्त्वपूर्ण बात है ।

आजकल दरिद्रता का दु ख बेहद बढ गया है । बी० ए० और एम० ए० पास करने वालो को इस दुःख के मारे फासी खाकर मरना पडता है । उन्हे नौकरी नही मिलती और दूषित शिक्षापद्धति के कारण वे मेहनत–मजूरी करना मरने से भी अधिक कष्टकर समझते है ! भारत का राज्य अगरेजों के अधीन है । वह सात समुद्र पार बैठकर शासन करते हैं । प्रजा के प्रति उन्हे अनुराग नही, आत्मीयता नही, सहानुभूति नही । प्रजा को कगाल बनाने वाली नयी–नयी योजनायें और कानून गढ़े जाते हैं और बुरी तरह देश को चूसा जा रहा है ? किसी समय जो देश सब भाति से समृद्ध था, धन-धान्य से परिपूर्ण था, आज उसकी इतनी गयी–गुजरी हालत हो गई है कि थोडे से पैसों के लिए माता अपने पुत्र को बेच देने के लिए उद्यत है ! दरिद्रता के इस घोर अभिशाप ने भारतवासियो का जीवन कितना हीन, दीन, जघन्य और कलुषित बना दिया है ! यह देखकर किसे

मनस्ताप न होगा ! कहां है आज राजा भोज सरीके प्रजा-वत्सल नृपति, जिन्हे प्रजा के कष्टो का सदा ध्यान रहता था और जो प्रजा की भलाई मे ही अपने राज-पद की सार्थकता मानते थे ! प्राचीन काल के भारतीय राजा, प्रजा के सरक्षक थे । सम्पूर्ण राज्य एक बडा परिवार था और राजा उसका मुखिया था । इसी कारण भारतीय प्रजा राजा को अपने पिता के तुल्य मानती थी । राजा और प्रजा मे कितना मधुर सम्बन्ध था उस समय ! आज यह भूतकाल का सपना बन गया है । प्रथम तो आजकल ससार से राजतत्र ही उठता जा रहा है और प्रजा अपने हाथो मे शासनसूत्र ग्रहण करती जा रही है, जहा कही राजतन्त्र शेष है, वहा राजा और प्रजा मे भयकर सघर्ष ही दिखाई देता है। इसका प्रधान कारण यही है कि राजा अपने उत्तरदायित्व से गिर गये । उन्होने अपने को प्रजा का सेवक न समझकर ईश्वर द्वारा नियुक्त स्वच्छन्द भोग का पुतला समझा । प्रजा को चूसना और विलास करना ही अपना ध्येय बना लिया । फल यह हुआ कि राजा और प्रजा विरोधी बन गये । जहां स्वार्थ-साधन करने की प्रवृत्ति होती है वहा सघर्ष अवश्यम्भावी है । यही राजा प्रजा के सघर्ष का कारण है । अर्वाचीन इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि विजय प्रजा-पक्ष के भाग्य मे है । आखिर प्रजा की ही विजय होगी । इस सत्य को समझ कर राजा लोग समय रहते सावचेत हो जाए तो इसमे उन्ही की भलाई है ।

राजा भोज प्रजा-रजन करने के कारण सच्चा राजा था । प्रजा के दु.ख-दर्द को समझना और उसे दूर करना ही उसका मुख्य कर्त्तव्य था । यही उसका राजधर्म था । प्रजा

उसे पुत्र के समान प्रिय थी, इसलिए वह पिता के समान प्रजा का आदरणीय था। उसने ब्राह्मण के कष्टो पर सहृदयता से विचार किया और उन्हे मिटा दिया।

भण्डारी का भ्रम भग हो गया। वह मन ही मन भोज की प्रशसा करने लगा। उसने एक हजार मुहरे लाकर ब्राह्मण के सामने रख दी।

राजा ने ब्राह्मण से कहा—जिसका अपराध था, उसे दण्ड दिया गया है। लेकिन इस कांड की पुनरावृत्ति हुई तो भारी दण्ड दिया जायगा।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज ! आपके उचित निर्णय की प्रशसा करने के लिए मेरे पास शब्द नही है। अब अपराध हो तो मेरे तन के टुकड़े-टुकड़े करवा दीजिएगा।

मुहरो की थैली लेकर ब्राह्मण अपने घर चला। घर मे सास–बहू के बीच कलह मचा हुआ था। सास कहती थी—"तूने उससे ऐसा क्यों कहा ? उसकी बात सुन क्यों नही ली ?" बहू कहती थी—"उन्होने मुझसे ऐसा कहा क्यो ? बस, इन्ही मूल सूत्रो पर भाष्य और टीकाये रची जा रही थी।

उसी समय थैली लिए ब्राह्मण आता दिखाई दिया। उसे देख दोनो शान्त हो गई। थैली देखकर उन्हे कुछ तसल्ली हुई। आज तक इतना अनाज भी कभी घर मे नही आया था। अतएव भीतर की मुहरे न दिखाई देने पर भी उनकी प्रसन्नता का पार नही था। ब्राह्मण निकट आ गया

और थैली मे गोल-गोल चीजे मालूम हुई तो कहना ही क्या था ! उन्होने सोचा—अगर इतने पैसे हो तब भी बहुत हैं ।

दोनों की लडाई बन्द हो गई । उनकी विचारधारा बदल गई । सास बोली—"बेटे को वजन लग रहा होगा, मैं थैली ले लू ।" वहू ने कहा—"तुम बुढी हो, तुमसे क्या बनेगा ! लाओ मैं ही लिये लेती हू ।" सास ने उत्तर दिया—"तुझे चोट लगी है न ! तुझसे कैसे बनेगा ।" वह मुस्करा कर बोली—"इस मार मे क्या रखा है ! पति की मार और घी की नाल बराबर होती है ।"

आखिर दोनो थैली लेने दौडी । सास कहती थी—बहू को चोट लगी है, इसे बोझ मत देना । बहु कहती थी—सास बूढी है, इन्हे तकलीफ मत देना । ब्राह्मण ने कहा—तुम दोनो ही कष्ट मत करो । यह बोझ मेरे ही सिर रहने दो । अपने अपराध का भार मुझे ही उठाने दो ।

थैली लिये ब्राह्मण घर पहुचा । थैली खोली तो उसमे पीली-पीली मुहरे देखकर सास-बहू दोनो चकित रह गई । प्रसन्नता का पारावार न रहा । भूखे घर मे अनाज के इतने दाने भी आते तो क्या कम थे ! फिर यह तो मुहरें ठहरी।

मा कहने लगी—बेटा ! मेरी जैसी कठोरहृदया माता नही और तुझ-सा सपूत बेटा नही । मैं सदा सापिनी ही रही । कभी तुझे शान्ति न पहुचाई । माता का कर्त्तव्य बेटे पर करुणा रखना है, मगर मैंने कभी सीधी बात भी न की । तू धन्य है, बेटा, जो मुझे छोड़कर कही चला न गया,

नहीं तो ऐसी कर्कशा माता का पालन करने के लिए कौन रहता है ! अब तू मुझे क्षमा कर देना ।

बहू ने कहा—यह सब मेरा ही कसूर था ! मैं घर आई तभी से सबको कष्ट में पड़ना पडा । मैंने पति और सास की सदैव अवज्ञा ही की थी ! मेरी जैसी स्त्री जिस घर में हो, वहा पाप न वढे तो क्या हो ! सीता इतने-इतने कष्ट सहन करके भी पति के साथ रही परन्तु मुझ दुष्टा ने आप दोनो को कभी प्रिय वचन भी न कहा ! इतने पर भी आप दोनो ने मुझे त्यागा नही, यह वड़ी कृपा की । अब आप मेरे सब अपराध भूल जावे ।

ब्राह्मण बोला—मा और प्रिय ! तुम मुझे क्षमा करना । मेरा कर्त्तव्य तुम्हारा पालन करना था । सपूत वेटा माता की वृद्धावस्था मे सेवा करता है और सच्चा पति अपनी पत्नी की सदैव रक्षा करता है । मैंने दोनो में से एक भी कर्त्तव्य नही पाला । मैं तुम्हे भरपेट भोजन भी तो न दे सका ! जो पुरुष अपनी जननी और पत्नी का पेट भी नही भर सकता, वह धिक्कार का पात्र है । मैंने भोजन नही दिया, इतना ही नही, वरन् भोजन मागा और उसके लिए झगड़ा भी किया । माता की सेवा करना दरकिनार, उससे कभी मीठे शब्द तक न कहे । मेरे इस व्यवहार के लिए तुम दोनो मुझे क्षमा करना ।

इस प्रकार तीनो ने अपनी-अपनी आलोचना की । ब्राह्मण ने कहा—अब भूतकाल की वात भूल जाओ । हम लोग दरिद्रता से पीड़ित थे, इसीलिये घड़ी भर पहले क्या

थे और अब दरिद्रता दूर होते ही क्या हो गये ! गुण गाओ राजा भोज का, जिसने अपना यह दुःख जान लिया और मिटा दिया।

इस प्रकार ब्राह्मण का यह छोटा-सा कुटुम्ब शीघ्र ही सुधर गया। तीनो बडे प्रेम से रहने लगे। दरिद्रता के साथ ही साथ कलह भी दूर हो गया।

ब्राह्मण अपना दुःख राजा के पास ले गया था। इसी प्रकार परमेश्वर के दरबार मे हम भी यह फरियाद लेकर उपस्थित होते हैं। लेकिन जिस प्रकार ब्राह्मण ने निखालिस हृदय से अपना अपराध स्वीकार किया था, उसी प्रकार हम लोगो को भी अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए। अपने अपराध को दबाने की चेष्टा करने से ईश्वर भी कुछ नही कर सकेगा। अतएव कृत पापो के लिए पश्चात्ताप करो। परमात्मा के प्रति विनम्र भाव से क्षमाप्रार्थी बनो। आगे अपराध न करने का दृढ सकल्प करो। ऐसा करने से कल्याण होगा।

३३ : पोथी का बैंगन

लोग धर्म-धर्म चिल्लाते है, मगर धर्म के मर्म का अनुभव नही करते। पण्डित कहलाने वाले और अपने को

ज्ञानी प्रसिद्ध करने वाले तथा श्रोताओ को आकृष्ट करने वाले शब्दो मे कथा बाचने वाले लोग भी उस कथा को – उसके आशय–भूत धर्म को, अपने सुख के साथ नही जोडते हैं !

एक कथावाचक भट्टजी कथा बाचते थे । एक दिन उनकी लडकी भी कथा सुनने चली गई । उस दिन कथा मे बैगन का प्रसग चल पडा । कथावाचक ने कहा—बैंगन खाना बुरा है । उसमे बीज बहुत होते हैं और वह वायु करता है । कथावाचक ने बहुत विस्तार से यह बात कही । लडकी बैठी हुई यह सब सुन रही थी । उसने सोचा—पिताजी को यह बात शायद आज मालूम हुई है । अब तक तो इनका यह हाल रहा कि बैगन के शाक के बिना रोटी नही खाया करते थे । ये कहा करते थे ।

नीली टोपी श्याम घटा, सब शाको मे शाक भटा

मगर आज उसकी इतनी निन्दा कर रहे है ! इससे जानती हू कि आज ही इन्हें बैगन की बुराई मालूम हुई है । कही ऐसा न हो कि आज घर पर बैगन का ही शाक बन जाय और पिताजी भर पेट भोजन भी न कर पाए ।

यह सोचकर लडकी कथा सुनना छोडकर घर आई और माता से बोली—'मा, आज काहे का शाक बनाया है ?' मा ने कहा—"बिटिया, बैगन तो है ही । साथ मे एक और बना लू गी ।" माता की बात से लडकी को कुछ तसल्ली हुई । उसने पूछा—"अभी बैगन बनाये तो नही है ?" माता के नाही करने पर लड़की ने कहा—तो अब बैगन मत बनाना । मैं अभी कथा सुनकर आई हू । पिताजी ने आज बैगन की

खूब निन्दा की है, उन्होने सब कथा सुनने वालो को बैगन नही खाने का उपदेश दिया है । सब ने उनकी बात की सराहना की है । अब पिताजी भी बैगन न खायेगे । कोई दूसरी तरकारी बना लेना ।

लडकी की बात सुनकर मा ने बैगन का शाक नही बनाया । कथाभट्ट कथा समाप्त कर घर आये । भोजन करने बैठे । थाली मे और तरकारिया परोसी गई, मगर बैगन नजर नही आये । बैगन न देखकर भट्टजी ने पूछा—"क्यो! आज बैगन की तरकारी नही बनी ?"

ब्राह्मणी ने कहा—घर मे बैगन तो थे, मगर जान बूझकर ही आज नही बनाये हैं ।

भट्ट—ऐसा क्यो ?

ब्राह्मणी ने लडकी को बुलाकर कहा—अब इन्हे बता, तूने बैगन का शाक क्यो नही बनाने दिया ?

लड़की बोली—पिताजी, आज आपने कथा मे बैगन की बहुत निंदा की थी । आपने कहा था कि बैगन शारीरिक दृष्टि से भी हानिकारक है, आध्यात्मिक दृष्टि से भी बुरा है और ठाकुरजी को बैगन का भोग भी नही चढता । इसी से मैंने सोचा कि आप इतनी निंदा कर रहे हैं तो आप स्वय कैसे खायेगे ?

भट्ट—मूर्ख लडकी ! तुझे इतना ज्ञान कहा कि कथा के बैगन अलग होते है और रसोई-घर के अलग होते

है । कथा मे जो बात आई थी, सो कहनी पडी । ऐसा न कहे तो आजीविका कैसे चले ? अगर कथा के अनुसार ही चलने लगे ता जीना कठिन हो जायगा ।

बाप की बात सुनकर लड़की के दिल को ठीक तरह समाधान तो नही हुआ, मगर वह कुछ बोल भी न सकी । उसने मन ही मन सोचा—इससे तो हम जैसी मूर्खा ही भली कि आजीविका के लिए ढोग तो नही करती । हाथी के दात दिखाने के अलग और खाने के अलग होते है ।

इस प्रकार कथा मे तो भट्टजी पण्डित रहे और अर्थ मे वह लडकी पण्डित रही । जो केवल कथा मे ही पण्डित हैं—अर्थ मे पण्डित नही है, वे क्या तो अपना कल्याण करेंगे और क्या दूसरो की भलाई करेंगे ! स्वय आचरण करने वाला ही अपने वचनो की छाप दूसरों पर डाल सकता है । जो खुद आचरण नही करता, उसका दूसरे पर कोई विशेष प्रभाव नही पड सकता ।

भक्त कहते है—इस प्रकार की कथा बाचने वाला मानो रिश्वत लेकर गवाही देने वाले है । वे चाहे मान–प्रतिष्ठा के लोभ से या आजीविका के लोभ से गवाही दे, पर है वह रिश्वत लेकर गवाही देने के समान ही । ऐसे लोग सत्य-अर्थ को, परमार्थ को नही जानते ।



३४ : झूठी साक्षी

दो मित्र व्यापार के निमित्त विदेश गये । दोनों ने धनोपार्जन के लिए यथाशक्य उद्योग किया । पर उनमें से एक को अच्छा लाभ हुआ और दूसरे को लाभ नही हुआ । जिसे लाभ नही हुआ था, उसने सोचा—उद्योग करते-करते थक गया, फिर भी कुछ लाभ नही हुआ । अब देश को लौट जाना ही श्रेयस्कर है । उसने अपना यह विचार अपने मित्र के सामने प्रकट किया । मित्र ने सोचा—मुझे यहां काफी आमद हुई है और व्यापार मे इतना उलझा हू कि देश नही जा सकता । लेकिन कुछ रकम अपने मित्र के साथ क्यो न भेज दू, जिसमे स्त्री को सन्तोष हो जाय । लेकिन यह रुपया कहा बाधे फिरेगा ? यह सोचकर उसने एक लाल खरीदा और अपने मित्र को देकर कहा—भाई, जाते हो तो जाओ और यह लाल अपनी भाभी को दे देना । कह देना कि यह लाल कीमती है । इसे सम्भाल कर रखे । कुछ दिनो बाद व्यापार समेट कर मैं भी आ जाऊगा । लाल पहुचने से तुम्हारी भाभी को सन्तोष होगा ।

मित्र का दिया लाल लेकर दूसरा मित्र स्वदेश की ओर रवाना हुआ । रास्ते मे उसके मन में बेईमानी आ गई । मनुष्य दुर्बलताओ का पुतला है । कब कौन-सी दुर्बलता उसे विवश कर देती है, कहा नही जा सकता । उसे विचार

बाया—लाल कीमती है और मित्र ने अकेले मे ही मुझे यह दिया है । देते-लेते किसी ने देखा नही है—कोई गवाह-साख नही है । धन बेईमानी किये बिना आता नही, यह मैंने प्रयत्न करके देख लिया है । ईमानदारी स्वय इतनी बेईमान है कि ईमानदार को भूखो मरना पडता है । ऐसी मुहजली ईमानदारी को लेकर क्या चाटू ? बेहतर यही है कि हाथ मे आये इस लाल को हजम कर लिया जाय । थोडा-सा झूठ बोलना पडेगा । कह दूगा—मैंने लाल दे दिया है ।

लोग सोचते हैं—पाप केवल जीव-हिंसा करने मे ही है । झूठ-कपट मे कौन-सा महा-आरम्भ-समारम्भ करना पड़ता है ? लाल के लिए ललचाने वाले उस व्यक्ति ने भी यही सोचा होगा । धनोपार्जन करने मे अधिक आरम्भ-समारम्भ करना पडेगा और थोड़ी-सी जीभ हिलाने मे आरम्भ-समारम्भ के बिना ही धन मिल रहा है । फिर ऐसे सस्ते धर्म का पालन क्यो न किया जाय ? कौन पाप मे पड कर—आरम्भ करके धन कमाने का झझट करे ?

ऐसा ही कुछ सोचकर वह अपने घर पहुचा । उसने लाल अपने ही पास रख लिया, मित्र की स्त्री को नही दिया ।

मित्र की पत्नी को उसके लौट आने का समाचार मिला । उसने सोचा—वह तो अपने मित्र का कुशल-समाचार कहने आये नही, मगर मुझे जाकर पूछ आने मे क्या हानि है ? वह पति के मित्र के घर पहुची । पूछा—आप अकेले ही क्यो आ गये ? अपने मित्र को साथ नही लाए ?

उसने कहा—वह बड़ा लोभी है । उससे कमाई का

लोभ छूटता ही नही है। खूब धन कमाया है, फिर भी नही आया।

स्त्री ने पूछा—खूब कमाया तो भेजा नही ?

वह—अजी, वह लोभी क्या भेजेगा ? कुछ भी नही भेजा उसने।

मनुष्य जब पाप करता है तो उसे छिपाने के लिए कई पाप करने पडते है। कहावत है—"जिसका पैर खिसक जाता है, वह लुढकता ही जाता।"

स्त्री सन्तोष करके बैठ गई। उसने सोचा—कुछ नही दिया तो न सही, कुशल-पूर्वक तो है और कमाई कर रहे हैं तो आखिर ले कहा जायेंगे ? अन्त मे तो घर यही है।

कुछ समय व्यतीत होने पर वह भी अपना धन्धा समेट घर लौटा। स्त्री ने कहा—सकुशल तो रहे ? आप मुझे तो एकदम ही भूल गये ! अपने मित्र के साथ कुछ भी न भेजा?

पति ने कहा—भूल कैसे गया ? भूल जाता तो तुम्हारे लिए लाल क्यो भेजता ?

पत्नी—कौन-सा लाल ?

पति—क्यो, मित्र के साथ भेजा था न ? तुम्हे मिला नही वह ?

पत्नी—नही, लाल तो मुझे नही दिया। वह तो आपके समाचार कहने के लिये भी नही आये। मैं खुद उनके

घर गई। कुशल-समाचार पूछे। उन्होंने यही कहा कि आपने उनके साथ कुछ भी नही भेजा।

पत्नी की बात सुनकर वह समझ गया कि मित्र के मन मे बेईमानी आ गई। लाल उसी ने हजम कर लिया है। प्रातःकाल होते ही वह उसके घर गया। उसे आया देख पहले मित्र के चेहरे का रंग उड गया लेकिन अपने को सम्भाल कर उसने पूछा—अच्छा आप आ गये ?

'जी हा' कहकर वह बैठ गया। कुशल वृत्तान्त के पश्चात् उसने पूछा मैंने तुम्हे जो लाल दिया था, वह कहा है ?

उसने कहा—वह तो आते ही मैंने तुम्हारी पत्नी को दे दिया।

दूसरे ने कहा—वह तो कहती है, मुझे दिया ही नही।

प्रथम मित्र—झूठी है। स्त्रियो का क्या भरोसा ! न जाने किसी को दे दिया होगा और मुझे चोर बनाती है !

इस प्रकार कहकर वह गरजने लगा—अपनी स्त्री को तो देखते नही और मुझे चोर, बेईमान बनाते हो ! ऐसा जानता तो मैं लाता ही क्यो ? खबरदार, जो मुझसे अब लाल के विषय मे कभी कुछ पूछा।

झूठा आदमी चिल्लाता बहुत है। अत उसका रग-ढग देखकर लाल वाले मित्र ने सोचा—यह लाल भी हजम कर गया और ऊपर से मेरी पत्नी को दुराचारिणी प्रकट करना चाहता है और मुझे धमकी दे रहा है।

आखिर वह हाकिम के पास गया और सारा किस्सा सुनाया । हाकिम ने पूछा तुमने किसके सामने लाल दिया था ? उसने कहा मैंने केवल विश्वास पर ही दिया था । किसी को गवाह नही बनाया । उसकी इस स्पष्टोक्ति से हाकिम को उसके कथन पर विश्वास हो गया । हाकिम ने सान्त्वना देते हुए कहा—मैं समझ गया हू । तुम सच्चे हो । मैं तुम्हारा लाल दिलाने का प्रयत्न करूंगा । कदाचित् लाल न मिला तो तुम्हारी इज्जत अवश्य वापिस आएगी । तुम अपने घर जाओ ।

हाकिम ने उस लाल रखने वाले को बुलाकर कहा— तुम्हारे विषय मे अमुक व्यक्ति ने इस प्रकार की फरियाद की है । अपना भला चाहो तो लाल दे दो ।

उसने उत्तर दिया—आप मुझे व्यर्थ ही धमका रहे हैं । मैंने आते ही उसकी स्त्री को लाल सौंप दिया था । लाल दे देने के गवाह भी मेरे पास मौजूद हैं ।

हाकिम ने उसके गवाह बुलवाये । चार बनावटी गवाह थे । वे थोडे से पैसो के लालच में आकर झूठी साक्षी देने को तैयार हो गये थे । हाकिम के पूछने पर चारो ने गवाही दी कि हमारे सामने लाल दिया गया है । हम ईमान धर्म और परमेश्वर की कसम खाकर कहते हैं कि इसने हमारे सामने लाल दिया है । हाकिम ने चारो गवाहो को अलग-अलग करके कहा—लाल जितना बड़ा था, उसके आकार का एक-पत्थर उठा लाओ । अब झूठे गवाह चक्कर मे पडे । उन्होंने कभी लाल देखा नही था । उसकी बराबरी का पत्थर लाए तो कैसे ? फिर सोचा—लाल कीमती चीज है तो कुछ तो

बडा होगा ही । चारों यही सोचकर अलग-अलग आकार के बडे-बडे पत्थर उठा लाए, जो एक दूसरे से काफी बडे-छोटे थे । हाकिम ने चारो पत्थर अपने पास रख लिए । फिर पूछा—इन चारो मे से लाल किस पत्थर के बराबर था ? यह प्रश्न सुनकर उनकी अकल गुम होने लगी । चारो बुरी तरह चकराये ।

आखिरकार हाकिम ने चारों गवाहो के कोडे लगाने की आज्ञा दी । थोडे से पैसो के लिए झूठ बोलना आसान था, मगर कोडे खाना मुश्किल हो गया । चारो ने गिडगिड़ा कर कहा—हुजूर, कोडे क्यो लगवाते है ? हम लोगो ने तो क्या, हमारे बाप ने भी कभी लाल नही देखा । हम तो इसके मुलाहिजे और कुछ लोभ-लालच में फसकर गवाही देने आये हैं ।

असत्य कितना बलहीन होता है ! सत्य के सामने असत्य के पैर उखडते देर नही लगती । असत्य मे धैर्य नही, साहस नही, शक्ति नही ।

झूठे गवाहो की कलई खुल गई । हाकिम ने पूछा—कहो सेठ, इतना बडा लाल तुमने उसकी स्त्री को दिया था ? सेठ लज्जित था । लोकनिन्दा और राजदण्ड के भय से तथा शर्म से वह धरती मे गडा जा रहा था । वह बोलता क्या ? उसके मुख से एक भी शब्द न निकला । हाकिम ने कहा—तुमने लाल भी चुराया और झूठे गवाह भी तैयार किये । तुम्हारे ऊपर दुहरे अपराध हैं । अब सच बताओ, लाल कहा है ? नही तो गवाहो के बदले कोडो से तुम्हारी पूजा की जायगी ।

मार के आगे भूत भागता है, यह लोकोक्ति है। सेठ ने फौरन लाल दे दिया।

लाल के गवाह झूठे थे और वे प्रकट हो गये। मगर धर्म के विषय मे झूठी गवाही देने वालो पर कौन प्रतिबन्ध लगाए।

जैसे लाल का आकार भिन्न-भिन्न बताया गया था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्ल भी भिन्न-भिन्न प्रकार की बतलाई जाती है। एक कहता है—ईश्वर ऐसा है तो दूसरा कहता है—ऐसा नही, वैसा है। इस प्रकार कहने वालो से पूछो—तुम दोनो ईश्वर की जो दो शक्ले बतला रहे हो, उनमे से ईश्वर वास्तव मे किस शक्ल का है ? तो वे क्या उत्तर देगे ? जैसे उन गवाहो ने लाल नही देखा था, उसी प्रकार ईश्वर की शक्लें बतलाने वालो ने कभी ईश्वर का अनुभव नही किया है। झूठे गवाहो ने जो बात बिना समझे-बूझे सीख ली थी और सीखी बात तोते की तरह कह दी थी, इसी प्रकार यह लोग भी बिना अनुभव किये ही सीखी-सिखाई बाते तोते की तरह उच्चारण कर देते है। उन्हे वास्तविक अनुभव नही है।

प्रश्न होता है—ऐसी अवस्था मे करना क्या चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि घबराने की आवश्यकता नही। अन्त मे तो सत्य और शील ही विजयी होता है।

ईश्वर के विषय मे अगर सुदृढ विश्वास हो गया तो वह सभी जगह मिलेगा। विश्वास न हुआ तो कही न मिलेगा। ईश्वर के शरीर नही है, उसका कोई वर्ण नही है, वह

केवल उज्ज्वल हृदय से किये गये अनुभव से ही जाना जा सकता है।

३५ : अक्षय तृष्णा

माया के पीछे भागने से तृष्णा कभी नही मिटती। इसके लिए एक उदाहरण लीजिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध महात्मा के पास पहुचा। महात्मा ने कहा—मनुष्य शरीर सुलभ नही है। धर्म का आचरण न किया तो शरीर किस काम का? आगत मनुष्य ने कहा—महाराज! घर मे तो बाल-बच्चे हैं, उनका पालन-पोषण करना पडता है। ससार की स्थिति विषम से विषमतर होती जा रही है। सारे दिन दौड़—धूप करने के बाद भर पेट खाना मिल पाता है। कही कुछ आजीविका का प्रबन्ध हो जाय—घर का काम चलने लगे तो धर्मध्यान करूं।

महात्मा ने पूछा—"तुझे प्रतिदिन एक रुपया मिल जाय तब तो तू भगवान का भजन किया करेगा?"

आगत मनुष्य ने प्रसन्न होकर कहा—"ऐसा हो जाय तो कहना ही क्या है? फिर तो मैं ऐसा भजन करू कि ईश्वर और मैं एकमेक हो जाऊं!"

महात्मा ने उसका हाथ ले एक का अक उस पर लिख दिया । उसे किसी भी प्रकार एक रुपया मिल जाता था । एक रुपया रोज मे वह खाता-पीता और अपनी सन्तान का पालन–पोषण करता । मगर उससे अब पहले जितना भी भजन नही होता था ।

एक दिन वह फिर उन्ही महात्मा से मिला । महात्मा ने उससे कहा—"आजकल तू क्या करता है । अब भी भजन नही करता ?" वह बोला—हा, महाराज, अच्छी याद दिलाई आपने । आपने एक रुपया रोज का प्रबन्ध कर दिया है, मगर आप ही सोचकर देखें कि एक रुपया रोज मे खाने–पीने, कपड़े–लत्ते, स्त्री के गहने आदि का खर्च किस प्रकार निभ सकता है ?

महात्मा ने पूछा—"फिर चाहता क्या है ?"

उसने कहा—"महाराज और कुछ नही, दस रुपया रोज मिल जाय तो खर्च बखूबी चल सकता है ।"

महात्मा—"दस रुपया रोज मिलने पर तो भगवान् का भजन किया करेगा ?" फिर गड़बड़ तो नही करेगा ?

उसने उत्तर दिया—"नही महाराज ! फिर काहे की गडबड ? इतने मे तो मजे से काम चल जायगा ।"

महात्मा ने उसके हाथ पर एक का जो अङ्क बना दिया था, उसके आगे एक शून्य और बढ़ा दिया । अब उसे प्रतिदिन दस रुपये अर्थात् तीन सौ रुपया मासिक मिलने लगे । उसने अपना काम खूब बढा लिया । कही कोई दुकान

कही कोई कारखाना चलने लगा। नतीजा यह हुआ कि उसे तनिक भी फुर्सत न मिलती। स्त्री कहने लगी—घर में अच्छे दिन आये है तो मेरी भी कुछ सुध लोगे या नही ? स्त्री के ऐसे आग्रह से उसके लिए भी आभूषण बनने लगे। उसके रहन-सहन का पैमाना (Standard) भी ऊचा हो गया। विवाह-सगाई भी ऊची हैसियत के अनुसार ही होने लगी।

कुछ दिनो के पश्चात् फिर उसे महात्मा मिले। बोले—आज कल तुझे दस रुपया रोज मिलते हैं, अब क्या करता ? अब भी तू भजन नही करता !

उसने उत्तर दिया—"दीनदयाल! खूब स्मरण दिलाया। आपने मुझे दस रुपया रोज पाने की जो शक्ति दी है मैं उसका दुरुपयोग नही करता। आप हिसाब देख लीजिए, इतने से तो कुछ होता ही नही ! संसार मे बैठे है। गृहस्थी का भार सिर पर है। इज्जत के माफिक ही सब काम करने पड़ते हैं।"

महात्मा बोले—"मैंने दस रुपये रोज प्रपच बढाने के लिए दिये थे या घटाने के लिए ?"

उसने कहा—"करुणानिधान ! गृहस्थी मे प्रपच के सिवाय और क्या चारा है ? प्रपच न करे तो काम कैसे चले?"

महात्मा—"फिर तू क्या चाहता है ?

वह बोला—"आपकी दया। आपकी दया हो जाय और कुछ आमदनी बढ जाय तो जीवन सफल हो।"

महात्मा ने उसके हाथ पर एक बिन्दु और बढाकर सौ रुपया रोज कर दिये । अब उसे प्रतिदिन सौ, महीने मे तीन हजार और वर्ष भर मे छत्तीस हजार रुपये मिलने लगे । इतनी आमदनी होते ही उसका धन्धा और बढ गया । मोटर, बग्घी और तागे दौडने लगे । पहले अवकाश मिलने की जो सम्भावना थी, वह भी अब जाती रही । वह इतनी उलझनो मे फस गया कि उसे महात्मा को मुह दिखलाना भी अठिन हो गया ।

आज के श्रीमन्त भी आत्मकल्याण में कितना समय व्यतीत करते है ? वह समझते हैं मानो हमारी सृष्टि ही अलग है । गरीवो और अमीरो की दो भिन्न-भिन्न सृष्टियाँ हैं !

३६ : माया

आत्मा मे ईश्वर का प्रकाश तो मौजूद है, लेकिन थोडी भूल हो रही है । भूल यही कि जिस ओर मुंह करना चाहिए, उस ओर मुह न करके विपरीत दिशा मे कर रखा है ।

सूर्य पूर्व दिशा मे उदित हुआ है । एक व्यक्ति पश्चिम की ओर मुह करके खडा है । उसकी परछाई पश्चिम मे पड रही हैं । उपनी परछाई देखकर वह व्यक्ति उसे पकड़ने

दौडता है । ज्यों-ज्यों वह आगे बढता है, परछाई भी आगे बढ़ती है । वह खीझकर परछाई पकड़ने दौड़ता है तो परछाई भी उससे तेजी के साथ आगे-आगे दौड़ती जाती है । किसी तरह भी परछाई हाथ नही आती ।

इस व्यक्ति की परेशानी किसी ज्ञानी ने देखी । उसने दयालुता से प्रेरित होकर कहा—"भाई, तू करता क्या है ? क्यो इस प्रकार भाग रहा है ?"

भागने वाला बोला—"मैं अपनी छाया पकडने के लिए दौड रहा हूं, मगर वह हाथ नही आती । मैं जितना दौडता हू, छाया भी उतनी ही दौड लगा देती है ।

ज्ञानी ने कहा—"छाया को पकड़ने का उपाय यह नही है । तू पर्व की ओर मुह करके आगे बढ । तेरी छाया भी-तेरे पीछे-पीछे हो लेगी । तू अपना मुह बदल लेगा तो तुझे छाया के पीछे भागने की आवश्यकता नही रहेगी, बल्कि छाया तेरे पीछे भागेगी ।"

भागने वाले ने अपना मुह फेरा और पूर्व की ओर भागने लगा, परछाई भी उसके पीछे-पीछे भागने लगी । इस प्रकार पहले वह छाया के पीछे दौड़कर परेशान हो रहा था, फिर भी छाया हाथ नही आती थी, अब छाया ही उसके पीछे दौडने लगी ।

अगर तुम आत्मा और परमात्मा की ओर दृष्टि न लगाकर माया के पीछे दौड़कर उसे पकडना चाहोगे तो माया तुम से दूर रहेगी । माया के दूर रहने का अर्थ यह है कि

तृष्णा कभी नही मिटेगी । परन्तु आत्मा एव परमात्मा पर दृष्टि दोगे तो माया तुम्हारे पीछे उसी प्रकार दौडेगी, जिस प्रकार सूर्य की ओर दौडने से परछाई पीछे-पीछे दौडती है ।

३७ : पुण्य का प्रताप

एक सेठ थे । गाडी, वाडी और लाडी (पत्नी) ही उन्हे प्यारी लगती थी । मतलब यह कि वह सासारिक कामो मे ही रचा–पचा रहता था । धर्म की ओर उसकी रुचि नही थी ।

सेठ ने एक बछेरा पाला । बछेरा बहुत खूबसूरत और चपल था । सेठ उसे बहुत प्यार करता था । खूब खिलाने–पिलाने और सार-सम्भाल करने के कारण वह अच्छा तगडा हो गया । धीरे-धीरे वह सवारी करने योग्य हुआ ।

एक दिन सेठ पहले-पहले सवारी करने के लिए उसे गाव से बाहर ले गया । सेठ उस पर सवार हुआ । सवार होते ही सेठ की आशा पर पानी फिर गया । सेठ उसे पूरब की ओर ले जाना चाहता तो वह पश्चिम की तरफ चलता । चलते-चलते अड भी जाता । उसने सेठ की इच्छा के अनुकूल काम नही किया, बल्कि इच्छा के प्रतिकूल किया, सेठ ने

उसे खूब पुचकारा, खूब थपथपाया—प्यार किया, मगर उसने अपनी चाल नही छोडी ।

दोपहर का समय हो गया । सेठ को भूख लग आई । वह थक गया और परेशान हो उठा । गहरी चिन्ता के साथ वह सोचने लगा । इसे मैंने अपने लडके के समान पाला और समय आने पर धोखा दे गया ! इस पर सवारी करके नगर मे जाऊगा और कही अड़ जायगा तो लोग खिल्ली उडाएगे । इस तरह सोचता-विचारता वह पास मे एक पेड की छाया मे विश्राम करने के लिए बैठ गया । पास मे बछेरा बाध दिया और मन ही मन हिसाब लगाने लगा कि अब तक इस पर इतना खर्च किया और वह सब वृथा हो गया !

सेठ इस प्रकार पूछता ही रहा था कि उसी समय उधर से एक मुनि निकले । मुनि आहार-पानी लेकर जगल की ओर जा रहे थे । वे भी वृक्ष की छाया में थोडी देर विश्राम लेने वही जा पहुचे ।

मुनि ने सेठ को देखकर सोचा—यह किसी गहरी चिन्ता मे डूबा है । पेड शीतल छाया देकर दूसरो का दु ख दूर करता है तो मुझे भी इसकी चिन्ता दूर करने का उपाय करना चाहिए । इस तरह सोचकर मुनि ने सेठ से पूछा—“किस बात की चिन्ता में पडे हो ?”

सेठ ने मुनि के इस प्रश्न पर ध्यान नही दिया । वह बोला नही और चिन्ता मे ही डूबा रहा ।

मुनि ने अपना प्रश्न फिर दोहराया । तब उसने कहा—

"आप पूछकर करेंगे क्या ? आपके सामने अपना दु खड़ा रोने से लाभ क्या होगा ?"

मुनि—"अगर मुझसे कहने से कुछ लाभ न होगा तो इस तरह चिन्ता करने से भी कुछ न होगा ।"

मुनि के कहने का ढग कुछ ऐसा था कि सेठ उनकी ओर आकर्षित हुआ । उसने कहा—"मेरी भूल हो गई । जानता हू, आप मे बड़ी करामात है । मैं अपना दु ख आपसे नही कहूगा तो किससे कहूगा ? महाराज ? यह जो घोड़ा वधा है, इसने मेरा वहुत माल खाया है । देखिए न, कितना तगडा हो रहा है ! मगर यह इतना दुष्ट है कि मेरी इच्छा के अनुसार नही चलता है । मेरा अनुमान है कि वहुत सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट होने के कारण इसे किसी की नजर लग गई है या किसी ने जादू—टोना कर दिया है । आप मुझ पर दया करे और झाडफू क दे तो वड़ा उपकार होगा ।"

सेठ की वात सुनकर मुनि स्वय सिर पर हाथ रखकर चिन्तित हुए । तव सेठ ने पूछा—"मेरी बात सुनकर इतने उदास क्यो हो गये ?"

मुनि—"तू घोड़े की चिन्ता कर रहा है और मैं तेरी चिन्ता कर रहा हूं । जिस तरह घोडे ने तेरा खाकर नही वजाया, उसी प्रकार तू ने मेरा खाकर नही वजाया ।

सेठ—अनोखी वात है ! मेरा और आपका क्या लेन—देन ? मैंने आपसे कब क्या लिया है, जो नही वजाया !

मुनि—सुनो, हिसाब वतलाता हू । पहले यह बताओ, तुम्हे जन्म किसने दिया ?

सेठ—मेरे मा-बाप ने ।

मुनि—तुम कितने भाई थे ?

सेठ—पाच ।

मुनि—बाकी चार कहा है ?

सेठ—वे छोटी उम्र मे ही मर गये ।

मुनि—क्या उन चार भाइयो के मा बाप नही थे ? या उन्हे मा-बाप ने मारना चाहा था ? फिर भी तुम जीते रहे और वे मर गये ! इसका कारण क्या है ?

सेठ—वे पुण्य लेकर नही आये थे, इस कारण मर गये ।

मुनि—तुम पढे-लिखे हो ?

सेठ—हा ।

मुनि—तुम्हारे साथ और लोग भी पढते होगे ?

सेठ—हा ।

मुनि—तो वे सब तुम्हारे ही बराबर पढे है ?

सेठ—नही, उनमे से कई तो मूर्ख ही रह गये ।

मुनि—ऐसा क्यो !

सेठ—वे पुण्य लेकर नही आये थे ।

मुनि ने इसी तरह स्त्री, धन, दौलत आदि के सम्बन्ध मे भी प्रश्न किये । अन्त मे कहा—यह सब वैभव तुम्हे पुण्य से मिला है । यह बात तुम स्वय स्वीकार करते हो । मगर यह बताओ कि जिस पुण्य से तुमने मनुष्य शरीर पाया, उम्र लम्बी पाई, विद्या पाई, धन-सम्पदा पाई और कुटुम्ब पाया,

वह पुण्य तुमने कहा से पाया ? हम साधुओ से ही तो तुमने पुण्य पाया होगा ! फिर आज तुम हमे देखते ही प्रसन्न नहीं होते हो । क्या यह खाकर बिगाड़ना नही है ? घोड़े को तुमने मोटा-ताजा बनाया और हमने तुम्हे मोटा-ताजा बनाया है । तुम घोडे जैसी आशा रखते थे, हम भी तुमसे वैसी ही आशा रखते थे । हमे भी क्या मालूम था कि तुम पूर्व के बदले पश्चिम की तरफ जाओगे ? आज तुम दुनियादारी के कामो में दौडते हो और धर्म के कार्यों मे रुकते हो—अड़ते हो । तुम्हारी यह दशा क्या घोडे के समान नही है ?

मुनि की बात सेठ की समझ मे आ गई । वह प्रसन्न होकर बोला—आपने ठीक कहा है । मैं घोड़े के लिए रोता था, मगर अपना विचार ही नही करता था ! जिस धर्म के प्रताप से मैं सम्पन्न बना हुआ हू, उस धर्म को मैंने कब माना ? मैंने किस दु खिया के दु.ख दूर किये ? सचमुच, पहले के पुण्य को मैं नरक का सामान बना रहा हू । इसे पाकर मैंने तनिक भी सुकृत नही किया ! न सद्गुरु की सगति की, न परमात्मा की वाणी सुनी । मैं तो इस घोड़े से भी गया-बीता हू !

अपनी असली हालत का विचार कर सेठ की आखो मे पश्चात्ताप के आसू आ गये । वह मुनि के चरणो मे गिर पडा । बोला—दयामय ! आपका उपकार कभी नहीं भूलूगा ! आपने घोडे के साथ ही मेरी नजर झाड दी । यह घोडा बुरा नही, भला है जो अड गया और आप मिल गये । यह अडा न होता तो मैं आपके सामने भी न देखता । अब कृपा कर मुझे धर्म का मार्ग बतलाइये ।

मुनि ने कहा—बस, "दया" इन दो अक्षरो मे ही धर्म है। तुम्हारे दिल में दया का वास हो गया तो फिर किसी पाप कर्म की ओर तुम्हारी प्रवृत्ति ही नही होगी। इसलिए हृदय मे दया को बसा लो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

इतना कहकर मुनि रवाना हो गये। अब की बार सेठ घोडे पर सवार हुआ तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि घोड़ा बिना अडे सीधी और सरपट चाल चल रहा है।

३८ : खरा-खोटा

देहली जैसे किसी शहर मे एक प्रतिष्ठित जौहरी रहता था। यद्यपि वह होशियार था, मगर कभी-कभी होशियार भी चूक जाते है। मनुष्यमात्र भूल का पात्र है। इस जौहरी से भी एक बार भूल हो गई। उसने एक खोटे हीरो को खरा और कीमती समझ कर खरीद लिया और इस खरीद मे उसने अपनी सारी पूंजी लगा दी।

जौहरी को खरीद करने के बाद पता तो चल गया कि हीरा बिलकुल खोटा है मगर अब करता क्या? बेचने

वाला रफू-चक्कर हो चुका था । उसने सोचा—अब इस सम्बन्ध मे हल्ला-गुल्ला करना वृथा है। ऐसा करने से आबरू जायगी। मगर मैंने इस हीरे के पीछे घर की सारी पूंजी खरच दी है। अगर मेरी मृत्यु जल्दी हो जाय तो कुटुम्बी-जन क्या खाएँगे ? कुछ भी हो, जो सकट माथे पर आ पड़ा है, उसे भुगते विना कोई उपाय नही है। हा, मेरे एक मित्र है जो आपत्ति के समय अवश्य सहायक होगे। हीरा भले खोटा निकल गया, मगर मेरा मित्र खोटा नही निकल सकता।

ग्रन्थो मे सन्मित्र की बडी प्रशसा की गई है और कहा गया है कि सौभाग्य से ही सन्मित्र की प्राप्ति होती है। सुख के समय साथ देने वाले तो अनेक मित्र मिल जाते हैं, किन्तु दु ख के समय साथ देने वाले कोई विरले ही होते है। वह विरले मित्र ही सन्मित्र कहलाते है।

जौहरी सोचने लगा—मेरा मित्र सच्चा मित्र है। लेकिन मित्र के प्रति मागने की नही वरन् देने की बुद्धि रखनी चाहिए। अत जब तक मैं जीवित हू तब तक तो कोई प्रश्न ही नही है। मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरा मित्र मेरे घर की सार-सम्भाल कर ही लेगा।

जौहरी बीमार तो था ही, थोडे दिनो बाद उसकी मौत का समय निकट आ पहुचा। तब उसने विचार किया— "मेरी पत्नी समझती है कि मैं एक बड़े जौहरी की पत्नी हूं, अगर मैं उसे सच्ची परिस्थिति बतला दूंगा तो उसे गहरा आघात लगेगा। अतएव कोई ऐसा मार्ग खोजना चाहिए कि पत्नी को आघात न लगे और पुत्र का अहित न हो।" और उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया।

जौहरी ने अपनी पत्नी को पास बुलाकर कहा—मेरा अन्तिम समय नजदीक आ गया है। देखना, अपने घर की सम्पत्ति का सार हीरा है। इस हीरे को सम्भाल कर रखना। ख्याल रखना, हीरा किसी और के हाथ मे न चला जाय। अगर कोई आर्थिक कठिनाई आ पडे तो इस हीरे को लड़के के साथ मेरे मित्र के पास भेज देना। फिर वह जैसा कहे वैसा करना।

जौहरी चल बसा। उसकी पत्नी ने जैसे-तैसे कुछ महिने निकाले। इसके बाद उसके सामने आर्थिक कठिनाई आ खड़ी हुई। उसने सोचा—पुत्र जब तक बडा नही है, तभी तक कठिनाई है। जब तक पुत्र काम मे नही लगता तब तक के लिए हीरा काम आ सकता है। हालाकि हीरा बहुत कीमती है, फिर भी कष्ट के समय काम न आया तो फिर इसका उपयोग ही क्या है? लडका बडा हो जायेगा और कमाने लगेगा तो न जाने कितने हीरे फिर हो जायेंगे।

इस प्रकार विचार कर उसने लडके को नहलाया-धुलाया, अच्छे कपडे पहनाए और फिर कहा—बेटा, इस हीरे को अपने पिता के मित्र के पास ले जा। उन्हे पिता के समान समझ कर, नमस्कार करके विनयपूर्वक कहना—"पिताजी कह गये हैं कि यह हीरा घर की सम्पत्ति है। इसे आप चाहे तो बेच दें या गिरवी रख दे, घर का खर्च चलाने के लिए पैसे की आवश्यकता है, उसकी आप व्यवस्था कर दें।"

लड़का हीरा लेकर पिता के मित्र के पास गया। माता

का सन्देश उसने अक्षरश कह सुनाया। हीरा, हाथ पर रख दिया। हाथ मे लेते ही उसे पता लग गया कि हीरा खोटा है। परन्तु उसने विचार किया—अगर मैं साफ कह दू गा कि हीरा खोटा है तो मित्र की पत्नी को असह्य आघात लगेगा। अगर मैं इसे अपने पास रखता हूं तो मेरी साख जोखिम में पडती है। अतएव हीरे के सम्बन्ध मे अभी कोई स्पष्टीकरण न करना ही योग्य है।

जौहरी ने–मित्र लडके से कहा—तुम्हारे पिता की मृत्यु हो जाना बडे दु ख की बात है, पर तुझे देखकर मुझे सन्तोष है। मेरे इस घर को तू अपना ही घर समझना। खर्च की तगी मत भोगना। जितनी जरूरत हो, यहा से ले जाना। पर यह हीरा बहुत कीमती है। अभी इसकी पूरी कीमत नही उपजेगी। इसलिए इसे वापिस घर लेते जाओ और माता से कह देना—हीरे को सम्भाल कर रखना। मैं इसे सम्भाल नही सकू गा। रुपया यो न ले जाना चाहे तो नाम लिखा कर ले जाओ। हीरा बिके तब लौटा देना। पर मेरी एक बात मान ले। तू मेरी दुकान पर आया कर। इसे अपनी ही दुकान समझ।

लडका अपनी मा के पास लौट गया। सब बातें सुनकर वह सन्तुष्ट हुई और सोचने लगी—मेरे पास दो हीरे हैं—एक यह और दूसरा मेरा पुत्र! फिर किस बात की चिन्ता है! वह पति के मित्र से रुपया मगवा कर खर्च चलाने लगी। पुत्र को दुकान पर भेजना आरम्भ कर दिया।

लडका सुसस्कारी और होशियार था। दुकान पर

जाकर वह रत्नों की परीक्षा करने लगा । धीरे-धीरे वह अच्छा पारखी बन गया । एक बार तो उसने ऐसे रत्न की ठीक परख की जिसे जौहरी भी नही परख सके थे । सभी उस पर प्रसन्न हुए । सबने कहा—आज इसने हम लोगों की इज्जत रख ली ।

पहले के लोग कृतज्ञ होते थे और गुणो का आदर करते थे । जब से ईर्ष्या ने कृतज्ञता को कुतरा है तभी से गुणो की कद्र कम हो गई है ।

जौहरी ने लडके से कहा—"तू अब रत्नो का परीक्षक बन गया है । अब तेरे घर मे जो रत्न है उसकी परीक्षा कर देख । मैंने तो अनुमान से ही उसे बहुत कीमती कह दिया था अब तू उसकी अच्छी तरह परीक्षा करके देख ।"

लडका घर गया । उसने मा से कहा—मा, जरा वह हीरा निकालो । मा ने पूछा—कोई ग्राहक आया ? लड़के ने कहा—नही, ग्राहक तो नही आया । जरा परीक्षा कर देखूं कि कितनी कीमत है, कैसा है ?

मा प्रसन्न होती हुई बोली—अब तो तू रत्नो का परीक्षक हो गया है न ? लडके ने उत्तर दिया—यह तुम्हारी ही कृपा का फल है मा । यदि मोहवश होकर तुम दुकान न जाने देती तो मैं परीक्षक कैसे बनता ?

माता ने खोटा हीरा पुत्र को पकडा दिया । उसने हाथ मे लेते ही परख लिया कि यह हीरा खोटा है और जमीन पर पटक दिया । माता ने कहा—क्यो बेटा फेंक क्यो

दिया ? पुत्र बोला—मा, यह हीरा नही है । तेरे लिए तो मैं हीरा हू । यह तो काच है । इसके सहारे सकट का इतना समय कट गया, यही बहुत है ।

लडका इतने दिनो तक जिसे हीरा समझता था, उसी को इतने दिन जौहरी की दुकान पर बैठने से काच समझने लगा । इसके लिए वह जौहरी की प्रशसा करेगा या निन्दा ? वह जौहरी की प्रशसा ही करेगा कि इसने मुझे रत्न-परीक्षक बनाकर बहुमूल्य सम्पत्ति प्रदान की है । जो खरे-खोटे का ज्ञान कराता है, उसके समान और कोई उपकारी नही हो सकता ।

लडके ने परीक्षक बनकर खोटे हीरे को फेंक दिया, इसमे दु.ख मानने की कोई बात नही है । सत्य-असत्य के विषय में हमारी यही मनोवृत्ति होनी चाहिए ।

३९ : तत्त्व-ज्ञान और धन

तत्त्व ज्ञान की महिमा क्या है और उसे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, इस विषय मे उपनिषद् मे एक कथा है । उसका साराश इस प्रकार है—

एक बडा राजा था । दान के प्रभाव से उस राजा

की कीर्ति चारो ओर फैल गई थी। सवत्र अपनी कीर्ति फैली देखकर राजा को अपने दान पर अभिमान होने लगा। वह सोचता—मैं बड़ा दानी हू। मेरा जैसा दानी दूसरा नही हो सकता।

एक रात्रि मे राजा महल की छत पर सो रहा था। वहा होकर हस का रूप धारण किये दो गधर्व निकले। एक ने राजा को देखकर दूसरे से कहा—"यह राजा बहुत धीर-वीर और वडा दानी तथा दयालु है। इसके बराबर दानी और दयालु दूसरा नही है।"

यह सुनकर दूसरे गन्धर्व ने कहा—यह राजा कैसा ही क्यो न हो, पर उस तत्त्वज्ञानी का सौवा हिस्सा भी नही हो सकता। यह राजा उस तत्त्वज्ञानी की वरावरी किसी भी प्रकार नही कर सकता।

पहला गन्धर्व—तुम किस तत्त्वज्ञानी की बात कह रहे हो ?

दूसरे ने उस तत्त्वज्ञानी का परिचय दिया।

पहला—यह तो गरीब है। वह गरीब इस राजा की बराबरी कैसे कर सकता है ?

दूसरा—जान पडता है, तुम ससार के वैभव को ही वड़ा मानते हो। ऐसा न होता तो इस प्रकार न कहते। परन्तु मैं तत्त्वज्ञान के सामने ससार के वैभव को तुच्छ समझता हू। तत्त्वज्ञान के सामने ससार का वैभव सौ गुना क्या करोड गुणा हीन है। अतएव मेरे सामने उस वैभव की प्रशंसा

मत करो । जो लोग संसार के वैभव से युक्त हैं उन्हे मैं बड़ा नही मानता । मैं तत्त्वज्ञानी को ही महान् मानता हू । जैनशास्त्रो मे भी यही कहा है—

देवा वि त नमसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।

अर्थात्—जिनमे धर्म है, उन्हे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

सासारिक वैभव की दृष्टि से मनुष्य, देव की बराबरी नही कर सकता । मनुष्यो की अपेक्षा देवो का वैभव असंख्य गुना अधिक होता है । फिर भी देवो की अपेक्षा मनुष्य महान् है । देवो का राजा इन्द्र भी मनुष्यो के पैरो मे अपना मस्तक झुकाता है । इसका कारण क्या है ? यही कि भोग-विलास की सामग्री देवो के पास अधिक होने पर भी धर्म का पालन और आचरण मनुष्य ही कर सकता है । देव भोग-विलास का सेवन कर सकता है, मगर मनुष्य के समान धर्म का सेवन नही कर सकता । अतएव देवो की अपेक्षा मनुष्य की महिमा महान् है ।

तो दोनो गन्धर्वों मे होने वाली बात-चीत राजा ने सुनी । राजा विचार करने लगा—किसी भी उपाय से उस तत्त्वज्ञानी को गिराना चाहिए । सासारिक प्रलोभन मे फास कर उसे तत्त्वज्ञान से पतित करना चाहिए और यह साबित करना चाहिए कि तत्त्वज्ञान महान् नही, वरन् सासारिक वैभव ही महान् है ।

इस प्रकार विचार करके प्रात.काल होते ही राजा

दस हज़ार गाये और एक मूल्यवान् हार लेकर, रथ मे बैठ कर उस तत्त्वज्ञानी के पास गया । तत्त्वज्ञानी के पास पहुच कर राजा ने कहा—"महानुभाव ! मैं आपको दस हजार गाये, यह हार और यह रथ भेट मे देता हू । मुझे आप तत्त्वज्ञान सुनाइए ।

तत्त्वज्ञानी बोला—हे शूद्र ! तू जिस प्रकार आया है उसी प्रकार यहा से लौट जा । तू तत्त्वज्ञान श्रवण करने का अधिकारी नही है ।

राजा क्षत्रिय था, फिर भी ज्ञानी ने उसे शूद्र क्यो कहा ? इस प्रश्न का उत्तर शाकर-भाष्य मे दिया गया है । कहा है—जिसके हृदय मे कुछ और होता है तथा बाहर वचन मे कुछ और होता है तथा जो ससार के वैभव के सताप से व्याकुल रहता है, वह भी शूद्र है ।

तत्त्वज्ञानी की फटकार सुनकर राजा चौक उठा । उसने सोचा—वास्तव मे हस ने ठीक ही कहा था । यह तत्त्वज्ञानी तो मेरे वैभव को तुच्छ समझता है और मुझे शूद्र कहता है ! इतनी दरिद्रता और फिर भी वैभव के प्रति इतनी उपेक्षा ! इसकी दृष्टि मे तो स्वर्ग भी तुच्छ है ! यह नही सोचता कि तत्त्वज्ञानी होते हुए भी मैं इतना निर्धन हू ! वास्तव मे यह सच्चा तत्त्वज्ञानी है और तत्त्वज्ञानी के सामने ससार की विभूति तुच्छ ही होती है ।

इस प्रकार विचार कर राजा ने उस ज्ञानी से कहा—आप मेरा अपराध क्षमा कीजिए । यह गाये और यह हार आदि देकर मैं आपको तत्त्वज्ञान से पतित करके सिद्ध करना

चाहता था कि तत्त्वज्ञान की अपेक्षा सासारिक वैभव ही महान् है। मेरा यह अपराध क्षमा कीजिए और मुझे तत्त्व-ज्ञान सुनाइए।

राजा के इस प्रकार कहने पर तत्त्वज्ञानी ने कहा—अगर तत्त्वज्ञान सुनना चाहते हो तो अपने वैभव को त्याग करके मेरे यहा बैठो। मैं तुम्हे तत्त्वज्ञान सुनाऊगा।

तत्त्वज्ञान की महिमा जितनी बडी है, उसे प्राप्त करने के लिए त्याग भी उतना ही बडा करना पडता है। तत्त्वज्ञान संसार की सम्पत्ति या विभूति मे नही खरीदा जा सकता।

४० : परिग्रह

वैसे तो परिग्रह से सर्वथा मुक्त होना ही श्रेयस्कर है, भगवान् महावीर का उपदेश यही है, लेकिन जो लोग परिग्रह का सर्वथा त्याग नही कर सकते, फिर भी भगवान् के उपदेश पर विश्वास रख कर कुछ भी त्याग करते हैं, उनको भी लाभ ही होता है। भगवान् के कथन पर विश्वास रख कर कुछ भी त्याग करने से किस प्रकार लाभ होता है, यह बात एक दृष्टान्त द्वारा समझाई जाती है।

एक राजा और उसके मन्त्री के यहां पुत्र न था।

राजा सोचा करता था, कि मेरे पश्चात् प्रजा की रक्षा का भार कौन उठावेगा ? इसी प्रकार मन्त्री के भी कोई पुत्र नही है, अतः मन्त्री के वाद मन्त्रित्व भी कौन करेगा ? राजा और मन्त्री, इसी प्रकार के विचारो से पुत्र के लिए चिन्तित रहा करते थे । उन्होने पुत्रप्राप्ति के लिए प्रयत्न भी किये, परन्तु सब प्रयत्न निष्फल हुए ।

राजा और मन्त्री ने सुना कि नगर के वाहर एक सिद्ध पुरुष आये है, जो वहुत करामाती है । वे शायद हमारी अभिलाषा पूर्ण होने का उपाय वता सकें, यह सोचकर राजा और मन्त्री उस सिद्ध के पास गये । उचित अभिवादन और कुशल–प्रश्न के पश्चात् राजा उस सिद्ध से कहने लगा कि महाराज, मेरे पुत्र नही है । मुझे इस वात की सदैव चिन्ता रहा करती है कि मेरे पश्चात् राजधर्म का पालन कौन करेगा ? और मैं प्रजा की रक्षा का भार किसको सौंपू गा। इसी प्रकार मेरे इस मन्त्री के भी पुत्र नही है। कृपा करके आप कोई ऐसा उपाय वताइये, जिससे हमारी यह चिन्ता दूर हो और हमारे पश्चात् प्रजा की समुचित प्रकारेण रक्षा हो ।

राजा की वात सुनकर सिद्ध समझ गया कि इन दोनो को अपने–अपने उत्तराधिकारी की चिन्ता है । उसने राजा से कहा—तुम दोनो योग्य उत्तराधिकारी ही चाहते हो न ?

राजा—हा ।

सिद्ध—यदि पुत्र हुए विना किसी दूसरे उपाय से योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त हो जावे तो ?

राजा—हमे कोई आपत्ति नही है ।

सिद्ध—इसके लिए, मैं उपाय बताता हूं। उसके अनुसार कार्य करने से तुम दोनो को योग्य उत्तराधिकारी मिल जावेंगे। यदि तुम दोनो के यहा पुत्र हुए भी, तो भी यह नही कहा जा सकता कि वे योग्य ही होगे। लेकिन मैं जो उपाय वताता हू। उसके द्वारा तुम्हे योग्य उत्तराधिकारी प्राप्त होगे।

राजा—यह तो प्रसन्नता की बात है।

सिद्ध—तुम लोग अपने नगर मे किसी दिन भिखमगो को खूब टुकडे वटवाना। फिर सब भिखमगो को एकत्रित करना और उनमें से एक-एक को निकाल कर उनसे कहते जाना कि तुम अपने पास के टुकडे फेंक दो, तो हम तुमको राज्य देंगे। जो भिखमगा तुम्हारे इस कथन पर विश्वास न करे, उसको जाने देना। जो विश्वास तो करे, लेकिन भविष्य के लिए कुछ टुकडे रहने देकर शेष फेंक दे, और जो पूरी तरह विश्वास करके सब टुकडे फेंक दे, उन दोनो मे से जिसने सव टुकडे फेंक दिये हो, उसको राजा बना देना और जिसने कुछ रख कर शेष फेंक दिये हो, उसे मन्त्री बना देना। वे दोनो, तुम दोनो के योग्य उत्तराधिकारी होगे और उनके द्वारा प्रजा की भी पूरी तरह रक्षा होगी।

राजा और मन्त्री को सिद्ध पर विश्वास था। इसलिए उन्होने सिद्ध का कथन स्वीकार किया। सिद्ध को अभिवादन करके राजा और मन्त्री, नगर को लौट आये। कुछ दिनो बाद राजा ने नगर मे यह घोषित करा दिया कि आज अमुक समय से अमुक समय तक भिखमगो को खूब रोटी के टुकडे बाटे जावे। राजा और मन्त्री ने, अपनी ओर से

भी भिखमगों को खाने की बहुत-सी चीजें बंटवाई। फिर सब भिखमगो को एक बाडे मे एकत्रित किया गया। राजा और मन्त्री उस बाडे के द्वार पर बैठ गये तथा हुक्म दिया कि एक-एक भिखारी को बाहर आने दिया जावे। राजा की आज्ञानुसार एक-एक भिखारी बाडे से बाहर आने लगा। जो भिखारी बाहर आता उससे राजा कहता—तू अपने पास के टुकडे फैंक दे तो मैं तुझको मेरा राज्य दूंगा। राजा प्रत्येक भिखारी से ऐसा कहता, लेकिन उन लोगो को कथन पर विश्वास ही न होता। वे सोचते कि बहुत दिनो के बाद तो हमे इतना खाने को मिला है! राजा का क्या भरोसा! यह अभी तो राज्य देने को कहता है, लेकिन यदि इसने राज्य न दिया, तो हम इसका क्या कर लेगे! पास के टुकड फैंक कर और भूखो मरेंगे!

इस प्रकार विचार कर भिखमगे लोग राजा के कथन के उत्तर मे कहते—"हे हुजूर, मेरे भाग्य में राज्य कहा? मेरे भाग्य मे तो टुकडा मागकर खाना है।" कोई भिखारी इस तरह कहता और कोई दूसरी तरह कहता, लेकिन राजा के कथन पर विश्वास करके किसी ने भी टुकडे नही फैंके। राजा, इस तरह के भिखारी को जाने देता और दूसरे को बुलाता। होते-होते एक भिखारी आया। राजा ने उससे भी टुकडे फैंक देने के लिए कहा। राजा का कथन सुनकर उस भिखारी ने सोचा कि यह राजा झूठ बात कहकर मेरे पास के टुकडे फैंकवाने से इसको क्या लाभ हो सकता है! लेकिन दूसरी ओर मैंने अभी कुछ भी नही खाया है। यदि इसने टुकडे फिकवाने के बाद राज्य न दिया तो मुझे अभी ही भूखो मरना पडेगा। इसलिए सब टुकडे फैंकना ठीक नही।

इस प्रकार सोचकर उस भिखारी ने कुछ अच्छे-अच्छे टुकडे रख लिये और बाकी के टुकडे फेंक दिये। राजा ने उस भिखारी को बैठा लिया।

अनेक भिखमगो के बाद एक भिखमगा फिर ऐसा ही आया। राजा ने उससे भी ऐसा ही कहा। उस भिखारी ने सोचा कि यह राजा टुकडे फेंक देने पर राज्य देने को कहता है, फिर भी टुकड़े फेंकने पर राज्य न देगा, तो जितने टुकडे फिकवाता है उतने टुकडे तो देगा! और कदाचित् उतने टुकड़े भी न देगा, तो जाने तो देगा। मैं और टुकड़े माग लू गा। इस प्रकार विचार कर, उसने अपने पास के सब टुकडे फेंक दिये। राजा उस भिखारी को तथा पहले वाले भिखारी को साथ लेकर महल को चल दिया, और शेष सब भिखारियो को भी चला जाने दिया। दोनो भिखारियो को महल मे लाकर राजा ने सब टुकडे फेंक देने वाले भिखारी को अपना उत्तराधिकारी बनाया और थोडे टुकडे रख लेने वाले भिखारी को मन्त्री का उत्तराधिकारी बनाया। आगे जाकर दोनो भिखारी, योग्य राजा तथा मन्त्री हुए और प्रजा का पालन करने लगे।

यह दृष्टान्त है। इस दृष्टान्त के अनुसार, भगवान् महावीर राजा है और ससार के जीव सासारिक-पदार्थ रूपी टुकडो के भिखारी है। भगवान् महावीर ससार के जीवो से कहते है—जो कोई इन सासारिक—पदार्थ रूपी टुकडो को फेंक देगा, उसे मेरा पद प्राप्त होगा। भगवान् महावीर के इस कथन पर अविश्वास करने का कोई कारण नही है, फिर भी जो लोग भगवान् के कथन पर विश्वास नही करते,

तथा सासारिक पदार्थों को नही त्यागते, वे भिखारी के भिखारी ही बने रहते हैं। और जो सासारिक पदार्थों को सर्वथा त्याग देते हैं—परिग्रह से निवृत्त हो जाते हैं—वे सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग सासारिक पदार्थ रूपी टुकड़ो को सर्वथा नही त्याग सकते, उनको उचित है कि वे भिखारियों मे तो न रहे। महा-परिग्रह रूप खराब–खराब टुकड़े फेंक कर श्रावक-पद रूप भगवान् के पद का मन्त्रित्व प्राप्त करें।

४१ : जाट–जाटनी

ससार का ऐसा कोई पदार्थ नही, जो कभी न छूटे। छोडने की इच्छा न रहने पर भी, ससार के पदार्थ तो छूटते ही हैं। लेकिन यदि ससार के पदार्थों को इच्छापूर्वक छोड़ा जावेगा, तो दु ख भी न होगा तथा प्रशसा भी होगी। और इच्छापूर्वक न छोडने पर, ससार के पदार्थ छूटेगे तो अवश्य ही, परन्तु उस दशा मे हृदय को अत्यन्त खेद होगा तथा लोगो मे निन्दा भी होगी। इस विषय मे एक कहानी है, जो इस स्थान के लिए उपयुक्त होने से वर्णन की जाती है।

एक जाट की स्त्री, अपने पति से प्राय सदा ही यह कहा करती थी कि मैं चली जाऊगी। जरा भी कोई बात होती, तो वह कहने लगती कि मैं जाती हू! जाट ने

सोचा कि यह चंचलता मेरे यहा से किसी दिन अवश्य ही चली जाएगी, लेकिन यदि यह स्वय मुझको छोड जाएगी, तो मेरे हृदय को दु ख भी होगा और लोगो मे मेरी निन्दा भी होगी । लोग यही कहेगे, कि जाट मे कोई दोष होगा, इसी से उसकी स्त्री उसे छोड़कर चली गई । इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मुझे इसके जाने का दु ख भी न हो और लोगो मे मेरी निन्दा भी न हो ।

एक दिन पति–पत्नी मे फिर कुछ खटपट हुई । उस समय भी जाटिनी ने यही कहा कि मैं तुम्हे छोडकर चली जाऊगी ! जाट ने जाटिनी से कहा—तू बार–बार जाने का भय दिखाया करती है, यह अच्छा नही । तेरे को जाना ही है, तो तू खुशी से जा । मैं तेरे को जाने की स्वीकृति देता हू । तू मेरी रकम–माल मुझे सौप दे और फिर भले ही चली जा । जाट का यह कथन सुनकर जाटिनी प्रसन्न हुई। उसने अपने शरीर के आभूषणादि उतार कर जाट को दे दिये । जाट ने उससे कहा—अब तू मजे से जा, लेकिन एक काम तो और कर दे ! घर मे पानी नही है । मैं अभी ही घड़ा लेकर पानी भरने जाऊ गा तो लोग मेरे लिए भी न मालूम क्या-क्या कहेगे और तेरे लिए भी कहेगे कि घर में पानी तक नही रख गई ! इसलिए एक घड़ा पानी तो ला दे और फिर जहा जाने की तेरी इच्छा हो, वहा मजे से चली जा ।

जाटिनी ने सोचा—जब यह एक घडा पानी ला देने से ही मुझे छुटकारा देता है और मैं इससे सदा के लिए छुटकारा पा जाती हू, तब इसका कहना मान लेने मे क्या

हर्ज है ! इस प्रकार सोचकर जाटिनी, घडा लेकर पानी भरने गई । जाटिनी के जाने के पश्चात् जाट भी घर से डडा लेकर निकला और उसी मार्ग पर जा बैठा, जिस मार्ग से जाटिनी पानी लेकर आने वाली थी । जाट ने, दो-चार आदमियो को बुलाकर अपने पास बैठा लिया । जैसे ही सिर पर पानी भरा घडा लिये हुए जाटिनी जाट के सामने आई, वैसे ही जाट कटु-शब्द कहता हुआ उठ खडा हुआ । उसने अपने डण्डे से जाटिनी के सिर पर का घडा फोडकर उससे कहा—कुलटा, मेरे यहा से चली जा ! तेरे लाए हुए पानी की मुझे आवश्यकता नही है । मै अपने घर मे तुझे नही रहने दे सकता, इसलिए तेरी इच्छा हो वहा जा !

सिर पर का घडा फूट जाने से, जाटिनी भीग गई । वह जाट से कहने लगी कि—दुष्ट, मै तेरे यहा रहना ही कब चाहती हू ? मै तो तेरे जेवर आदि फैंक कर जाती थी, केवल तेरे कहने से पानी भरने गई थी । इस प्रकार जाटिनी भी चिल्लाई, परन्तु उसके कथन पर किसी ने भी विश्वास नही किया । सब लोगो ने यही समझा और यही कहने लगे कि जाट ने जाटिनी को निकाल दिया ।

तात्पर्य यह है कि ससार का कोई पदार्थ ऐसा नही है, जो आत्मा का साथ दे । सभी पदार्थ एक न एक दिन अवश्य छूटने वाले है । लेकिन यदि उन पदार्थों को स्वय छोड देगे, तो हृदय को दु ख भी न होगा और लोगो मे निन्दा भी न होगी । किन्तु जैसे जाटिनी के विषय मे लोग कहने लगे कि जाट ने जाटिनी को त्याग दिया, उसी प्रकार सासारिक पदार्थ त्यागने वाले के विषय मे भी लोग यही कहेगे कि अमुक ने सासारिक पदार्थ—धन सम्पदा आदि को त्याग दिया ।

❀

४२ : लज्जा

आजकल की बहुत-सी स्त्रिया घूंघट पर्दा आदि से ही लज्जा की रक्षा समझती हैं, किन्तु वास्तव मे लज्जा कुछ और ही है । लज्जावती अपने अग-अग को इस प्रकार से छिपाती है कि कुछ कहा नही जा सकता । लज्जावती कैसी होती है, यह बात एक उदाहरण से समझ लीजिये—

एक लज्जावती बाई पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अपना जीवन बिताती थी । उसने यह निश्चय कर रखा था कि मेरे साथ जो कोई रहेगी, उसे भी मैं यही शिक्षा दूगी । उसकी शिक्षा से मुहल्ले की बहुत-सी स्त्रिया सदा-चारिणी बन गई ।

उसी मुहल्ले में एक और औरत थी, जिसका स्वभाव इससे एकदम विपरीत था । यह पूर्व को तो वह पश्चिम को जाती थी । वह अपना दल बढाने के लिए स्त्रियो को भरमाया करती । उस पतिव्रता की निन्दा करती, उसकी सगति को बुरा बतलाती और कहती—अरे, उसकी सगत करोगी तो जोगिन बन जाओगी । खाना-पीना और मौज करना ही तो जीवन का सबसे बडा लाभ है ।

कुछ स्त्रिया उस निर्लज्जा और धूर्ता स्त्री की बाते

सुनती, पर ऐसी थीं बहुत कम ही । सदाचारिणी की बातें सुनने वाली बहुत थी । यह देखकर उसे बडी ईर्ष्या होती और उसने उस सदाचारिणी की जड खोद फैंकने का निश्चय कर लिया ।

वह सदाचारिणी बाई बडी लज्जावती थी, मगर ऐसी नही कि घर मे ही बन्द रहे और वाहर न निकले । वह अपने काम करने के लिए वाहर भी जाती थी । जव वह वाहर निकलती तो निर्लज्जा उससे कहती—"मैं तुझे अच्छी तरह जानती हूं कि तू कैसी है । वडी बगुला-भगत बनी फिरती है, लेकिन तेरे जैसी दूसरी कही शायद ही मिले ।"

निर्लज्जा ने दो-चार वार लज्जावती से ऐसा कहा । लज्जावती ने सोचा—क्षमा रखना तो उचित है, पर ऐसा करने से—चुपचाप सुन लेने से तो लोगो को शका होने लगेगी । एक वार ऐसा ही प्रसग उपस्थित होने पर उसने रुक कर कहा—"तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग है । मेरा-तेरा कोई लेन-देन नही, फिर विना मतलब अपनी जबान क्यो बिगाडती है ?

लज्जावती का इतना कहना था कि निर्लज्जा भडक उठी । वह कहने लगी—"तू मीठी-मीठी बातें वनाकर अपने ऐब छिपाती है और जाल रचती है । मगर मैं तेरे सारे ऐब ससार के सामने खोलकर रख दूगी ।'

यह सुनकर लज्जावती को भी कुछ तेजी आ गई । उसने उस कुलटा से कहा—"तुझे मेरे चरित्र को प्रकट करने

का अधिकार है, मगर जो यद्वा–तद्वा ऊल–जलूल कहा तो तेरा भला न होगा ।"

पतिव्रता की यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर लोगो पर उसका अच्छा प्रभाव पडा । लोगो ने उससे कहा—"बहिन, तुम अपने घर जाओ । यह कैसी है, यह बात सभी जानते है ।" लोगो की बात सुनकर पतिव्रता अपने घर चली गई । यह देखकर कुलटा ने सोचा—"हाय ! वह भली और मैं बुरी कहलाई । अब इसकी पूछ और बढ जायगी और मेरी बदनामी बढ जायगी । ऐसे जीवन से तो मरना ही भला ! मगर इस प्रकार मरने से भी क्या लाभ है ? अगर उसे कोई कलक लगाकर उसके प्राण ले सकू तो मेरे रास्ते का काटा दूर हो जाए । मगर कलक क्या लगाऊ ? और कोई कलक लगाने पर तो उसका साबित करना कठिन हो जायगा, क्यो न मैं अपने लडके को ही मार डालू और दोष उसके माथे मढ दू । लोगो को विश्वास हो जायगा और उसका खात्मा हो जायगा ।

इस प्रकार का क्रूरतापूर्ण विचार करके उसने अपने लडके के प्राण ले लिए । लडके का मृत शरीर उस सदा–चारिणी के मकान के पास कुंए में फैंक आई । इसके बाद रो-रो कर, बिलख-बिलख कर अपने लडके को खोजने लगी । हाय ! मेरा लडका न जाने कहा गायब हो गया है । दूसरे लोग भी उसके लड़के को ढूढने लगे । आखिर वह लोगो को उसी कुए के पास लाई, जिसमें उसने लडके का शव फैंका था । लोगो ने कुए मे ढूढा तो उसमे से बच्चे की लाश निकल आई । लाश निकालते ही दुराचारिणी उस

सदाचारिणी का नाम ले-लेकर कहने लगी—"हाय ! उस भगतन की करतूत देखो । उस पापिनी ने मुझसे वैर भजाने के लिए मेरे लडके को मार डाला ! डाकिन ने मेरा लाल खा लिया । हाय ! मेरे लडके को गला घोटकर मार डाला ।'

आखिर न्यायालय में मुकदमा पेश हुआ । दुराचारिणी ने सदाचारिणी पर अपने लडके को मार डालने का अभियोग लगाया । सदाचारिणी को भी न्यायालय मे उपस्थित होना पडा । उसने सोचा—वडी विचित्र घटना है । मैं उस लडके के विषय मे कुछ नही जानती, फिर भी मुझ पर हत्या का आरोप है । खैर, कुछ भी हो, अभियोग का उत्तर तो देना ही पडेगा ।

कुलटा स्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन मे कुछ गवाह भी पेश किये । सदाचारिणी से पूछा गया—"क्या तुमने इस लडके की हत्या की है ?"

सदाचारिणी—नही, मैंने लडके को नही मारा, किसने मारा है, यह भी मैं नही जानती और न मुझे किसी पर शक ही है ।

मामला वादशाह के पास पहुचाया गया । वादशाह वडा बुद्धिमान् और चतुर था । उसने सदाचारिणी को भली-भाति देखा और सोचा—कोई कुछ भी कहे, सबूत कुछ भी हो पर यह निश्चित मालूम होता है कि इसने लडके की हत्या नही की ।

वादशाह का वजीर भी वडा बुद्धिमान् था । उसने

कहा—इस मामले में कानून की किताबे मददगार नही होगी यह मेरे सुपुर्द कीजिये । मैं इसकी जाच करूगा ।

बादशाह ने वजीर को मामला सौप दिया । वजीर दोनो स्त्रियो को साथ लेकर अपने घर गया । वह उस सदाचारिणी को साथ लेकर एक ओर जाने लगा । सदाचारिणी ने वजीर से कहा—मैं अकेली परपुरुष के साथ एकान्त मे कदापि नही जा सकती । आप जो पूछना चाहे, यही पूछ सकते हैं । अकेले पुरुष के साथ एकान्त मे जाना धर्म नही है, फिर वह चाहे सगा बाप ही क्यो न हो ।

वजीर ने धीमे स्वर से कहा—तुम मेरी एक बात मानो तो मैं तुम्हे बरी कर दूगा ।

सदाचारिणी—आपकी बात सुने बिना मै नही कह सकती कि मैं उसे मान ही लूगी । अगर धर्म विरुद्ध बात नही हुई तो मान लूगी अन्यथा जान देना मजूर है ।

वजीर—मैं तुम्हारा धर्म नही जाने दूगा । तब तो मानेगी ।

सदाचारिणी—अगर धर्म न जाने योग्य बात है तो साफ क्यो नही कहते ?

वजीर—तुम्हारे खिलाफ यह आरोप है कि तुमने लडके को मारा है । न मारने की बात केवल तुम्ही कहती हो, पर तुम्हारी बात पर विश्वास कैसे किया जाय ? अपनी बात पर विश्वास कराना है तो नगी होकर मेरे सामने आ जाओ । इससे मैं समझ लूगा कि तुमने मेरे सामने जैसे

शरीर पर पर्दा नहीं रखा, उसी प्रकार बात कहने मे भी पर्दा न रखोगी ।

सदाचारिणी—जिसे मै प्राणो से भी अधिक समझती हू, उस लज्जा को नही छोड सकती और आपका यह कर्त्तव्य नही है । आप चाहे तो शूली पर चढा सकते है आपको फासी पर लटकाने का अधिकार है, परन्तु लज्जा का त्याग मुझसे न हो सकेगा ।

इतना कहकर वह वहा से चल दी । वजीर ने कहा—"देखो,समझ लो । न मानोगी तो मारी जाओगी । सदाचारिणी ने कहा—"आपकी मरजी । यह शरीर कौन हमेशा के लिए मिला है । आखिर मनुष्य मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है ।"

वजीर ने सोच लिया—"यह स्त्री सच्ची और सती है ।"

इसके बाद वजीर ने कुलटा को बुलाकर वही कहा—"तुम मेरी एक बात मानो तो तुम जीत जाओगी ।"

कुलटा—मैं जीती हुई तो हू ही । मेरे पास बहुत से सबूत है ।

वजीर—नही, अभी सन्देह है । वह बाई हत्यारिणी नही है ।

कुलटा—आप इसके जाल मे तो नही फस गये ? वह बडी धूर्त्ता है ।

वजीर—यह सन्देह करना व्यर्थ है ।

कुलटा—फिर आप उस हत्यारिणी को निर्दोष कैसे बतलाते हैं ?

वजीर—अच्छा, मेरी बात मानो ।

कुलटा—क्या ?

वजीर—तुम मेरे सामने कपडे खोल दो तो मै समझूंगा कि तुम सच्ची हो ।

कुलटा अपने कपडे खोलने लगी । वजीर ने उसे रोक दिया और जल्लाद को बुलाकर कहा—"इसे ले जाकर बेंत लगाओ ।"

जल्लाद उसे बेरहमी से पीटने लगा । वह चिल्लाई—ईश्वर के नाम पर मुझे मत मारो । जल्लाद ने पूछा—"तो बता, लडके को किसने मारा है ?" कुलटा ने सच्ची बात स्वीकार कर ली । मार के आगे भूत भागता है, यह कहावत प्रसिद्ध है ।

वजीर ने अपना फैसला लिखकर बादशाह के सामने पेश कर दिया । उसने कहा—लडके की हत्या उसकी मा ने ही की है ।

बादशाह ने कहा—यह बात कौन मान सकता है कि माता अपने पुत्र को मार डाले ! लोग अन्याय का सन्देह करेंगे ।

वजीर ने कहा—यह कोई अनोखी बात नही है । धर्मशास्त्र के अनुसार पहला धर्म लज्जा है । जहा लज्जा है, वही दया है । मैंने दोनो की लज्जा की परीक्षा की । पहली बाई ने मरना स्वीकार किया, पर लाज तजना स्वीकार न किया । वह धर्मशीला है । इस दूसरी ने मुझे भी कलंक लगाया और फिर लाज देने को तैयार हो गई । यह देखकर इसे पिटवाया तो लड़के की हत्या करना स्वीकार कर लिया ।

सारा मामला वदल गया । सच्चरित्रा वाई के सिर मढा हुआ कलक मिट गया । वादशाह ने सच्चरित्रा को धन्यवाद देकर कहा--"आज से तुम मेरी वहिन हो ।"

लज्जा के प्रताप से उस वाई की रक्षा हुई । वह लाज तज देती तो उसके प्राण भी न वचते । वादशाह ने कुलटा का फासी की सजा सुनाई और सदाचारिणी से कहा—"वहिन ! तुम जो चाहो, मुझसे माग सकती हो ।"

सदाचारिणी वाई ने उठकर कर कहा—"आपके अनुग्रह के लिए आभारी हू । मैं आपके आदेशानुसार यही मागती हू कि यह वाई मेरे निमित्त से न मारी जाय । इस पर दया की जाय ।"

वादशाह ने वजीर से कहा—"तुम्हारी वात विल्कुल सत्य है । जिसमे लज्जा होगी, उसमे हया भी होगी । इस वाई को देखो । अपने साथ वुराई करने वाली की भी कितनी भलाई कर रही है !"

वादशाह ने सदाचारिणी वाई की वात मानकर कुलटा को क्षमा-दान दे दिया । कुलटा पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका जीवन एकदम वदल गया ।

साराश यह है कि लज्जा एक वड़ा गुण है । जिसमें लज्जा होगी, वह धर्म का पालन करेगा ।



४३ :खान–पान की शुद्धि और सामायिक

खान–पान और रहन–सहन की छोटी–सी अशुद्धि भी चित्त को किस प्रकार अस्थिर बना देती है और चतुर श्रावक उस अशुद्धि को किस प्रकार मिटाता है, यह बताने के लिये एक कथित घटना इस प्रकार है :—

एक धर्मनिष्ठ श्रावक था । वह नियमित रूप से सामायिक किया करता था और इसके लिए उन सब नियमोपनियमो का भली–भाति पालन करता था, जिनका पालन करने पर शुद्ध रीति से सामायिक होती है, अथवा सामायिक करने का उद्देश्य पूरा होता है ।

एक दिन वह श्रावक नित्य की तरह सामायिक करने के लिए वैठा । नित्य तो उसका चित्त सामायिक मे लगता था परन्तु उस दिन उसके चित्त की चचलता न मिटी । उसने अपने चित्त को स्थिर करने का वहुत प्रयत्न किया लेकिन सब व्यर्थ । वह सोचने लगा कि आज ऐसा कौन–सा कारण हुआ है, जिससे मेरा चित्त सामायिक में नही लगता है किन्तु इधर–उधर भागा ही फिरता है । इस तरह सोचकर उसने अपने सव कार्यो की आलोचना की, अपने खान-पान की आलोचना की किन्तु उसे ऐसा कोई कारण न जान पड़ा, जो सामायिक में चित्त को स्थिर न रहने दे । अन्त में उसने विचार

किया कि मैं अपनी पत्नी से तो पूछ देखूं कि उसने तो कोई ऐसा कार्य नही किया है, जिसके कारण मेरा चित्त सामायिक मे नही लगता है ! इस तरह विचार कर, उसने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा कि आज सामायिक में मेरा चित्त अस्थिर रहा, स्थिर नही हुआ । मैंने अपने कार्य एवं खान-पान की आलोचना की, फिर भी ऐसा कोई कारण न जान पडा, जिससे चित्त मे अस्थिरता आवे । क्या तुमसे कोई ऐसा कार्य हुआ है, जिसका प्रभाव मेरे खान-पान पर पड़ा हो और मेरा चित्त सामायिक मे अस्थिर रहा हो ।

श्रावक की पत्नी भी धर्मपरायण श्राविका थी । पति का कथन सुनकर उसने भी अपने सब कार्यों की आलोचना की । पश्चात् वह अपने पति से कहने लगी कि मुझसे दूसरी तो कोई ऐसी त्रुटि नही हुई है, जिसके कारण आपके खान-पान में दूषण आवे और आपका चित्त सामायिक मे न लगे, लेकिन एक त्रुटि अवश्य हुई है । हो सकता है कि मेरी उस त्रुटि का ही यह परिणाम हो, कि आपका चित्त सामायिक मे न लगा हो । घर में आज आग नही रही थी । मैं भोजन बनाने के लिए चूल्हा सुलगाने के वास्ते पड़ौसिन के यहा आग लेने गई । जब मैं पडौसिन के घर के द्वार पर पहुची, तब मुझे याद आया कि मैं आग ले जाने के लिए तो कुछ लाई नही, फिर आग किस मे ले जाऊगी ! मैं आग लाने के लिए कण्डा ले जाना भूल गई थी । पडौसिन के द्वार पर कुछ कण्डे पडे हुए थे । मैंने सहज भाव से उन कण्डो में से एक कण्डा उठा लिया और पड़ौसिन के यहां से उस कण्डे पर आग लेकर अपने घर आई । मैंने, आग जलाकर भोजन बनाया । पड़ौसिन की स्वीकृति बिना ही

मैं जो कण्डा उठाकर लाई थी, उस कण्डे को भी मैंने भोजन बनाते समय चूल्हे मे जला दिया। पडौसिन के घर से मैं बिना पूछे जो कण्डा लाई थी, वह कण्डा चोरी का था। हक का न था। इसलिए हो सकता है कि मेरे इस कार्य के कारण ही आपका चित्त सामायिक मे न लगा हो क्योकि उस कण्डे को जलाकर बनाया गया भोजन आपने भी किया था।

पत्नी का कथन सुनकर श्रावक ने कहा कि बस ठीक है! उस कण्डे के कारण ही आज मेरा चित्त सामायिक में नही लगा क्योकि वह कण्डा अन्यायोपार्जित था। अन्यायो–पार्जित वस्तु या उसके द्वारा बनाया गया भोजन जब पेट मे हो, तब चित्त स्थिर कैसे रह सकता है! अब तुम पडौसिन को एक के बदले दो कण्डे वापस करो, उससे क्षमा मागो और इस पाप का प्रायश्चित्त करो। श्राविका ने ऐसा ही किया। यह कथानक या घटना ऐसी ही घटी हो या रूपक मात्र हो, इसका मतलब तो यह है कि जो शुद्ध सामायिक करना चाहता है, उसे अपना खान–पान और रहन–सहन शुद्ध रखना चाहिए। जब सामायिक में मन न लगे तो खान–पान और रहन–सहन की आलोचना करके अशुद्धि मिटानी चाहिए।



४४ : भार

एक सेठ के लडके का विवाह दूसरे सेठ के यहा हुआ था। उसकी स्त्री वहुत ओछे स्वभाव की थी। एक दिन सेठ का लडका भोजन कर रहा था और उसकी माता तथा पत्नी सामने वैठी थी। सास ने कहा—वहू, जरा शिला तो उठा लाओ मसाला पीसना है। वहू तडक कर वोली—मैं क्या पत्थर उठाने यहा आई हू ? मैंने अपने वाप के घर कभी पत्थर नही उठाए। सास गम्भीर और समझदार थी। उसने वहू से सिर्फ इतना कहा—मुझसे भूल हुई कि मैंने तुम्हे यह काम करने को कह दिया। मैं स्वय उठा लूगी। यह कहकर उसने स्वय शिला उठा ली और मसाला पीस लिया।

लडका यह सव देख-सुन रहा था। पत्नी के इस दुर्व्यवहार से उसके हृदय को वडी चोट लगी। वह सोचने लगा—"मेरी माता के प्रति इसका ऐसा व्यवहार है !" लडका कुलीन था। उस समय तो वह चुप रह गया पर उसने निश्चय कर लिया कि किसी तरकीव से इसकी अक्ल ठिकाने लानी होगी। ऐसा निश्चय करके वह चला गया।

लडका सरार्फा की दूकान करता था। एक दिन उसकी दूकान पर एक हार विकने आया। उसने वह हार खरीद

लिया और सुनार को बुलाकर कहा—इस हार में पान की जगह लोहे की अढाई सेरी सोने मे मढकर जड दो। ऊपर से कुछ जवाहर जड दो, जिससे भीतर लोहा होने का किसी को खयाल भी न आवे। सुनार ने ऐसा ही किया। लडका वह हार घर ले गया। उसने अपनी पत्नी से कहा—आज एक बहुत बढिया हार बिकने आया था। मैंने उसे खरीद लिया है। बात इतनी ही है कि वह भारी बहुत है और तुम्हारा शरीर बहुत नाजुक है, वर्ना तुम्हारे लायक है। तुम उसका बोझ नही सम्भाल सकोगी।

पत्नी के दिल मे गुदगुदी पैदा हो गई। वह बोली—दिखाओ तो सही, कितना भारी है वह हार। मैंने अपने पिता के घर बहुत भारी-भारी गहने पहने है।

पति ने कहा—हा, देख लो। मगर तुम से वह उठेगा नही।

पत्नी ने हार देखा तो खुश हो गई। वह कहने लगी—मैंने अपने पिताजी के घर पर तो इससे भी भारी हार पहने हैं। उनके सामने यह क्या चीज है!

पति बोला—हा, पहने होगे। वह बड़ा घर है। अपनी शक्ति देख लो। पहन सको तो पहन लो।

पत्नी—पहन तो मै लूगी! इसकी कीमत क्या है?

पति—कीमत की चिन्ता मत करो! वह मैंने चुका दी है।

स्त्री ने हार पहन लिया। हार पहनने की खुशी मे

वह फूली नही समाई । घर का काम दौड–दौड़ कर करने लगी । हार बार-बार उसकी छाती से टकराता और छाती की हड्डिया चूर-चूर होने को हो गईं, फिर भी वह हार का लोभ नही छोड सकी । हार पहन कर उसकी प्रसन्नता बहुत बढ गई ।

लड़के ने सोचा– हार के लोभ मे यह अन्धी हो गई है ! इसे हार का भार मालूम ही नही होता ! अगर अढाई सेरी की चोटे खाते–खाते छाती का खून जम गया तो नया बवाल उठ खडा होगा ! दवाई–दारू की झंझट तो मुझे ही करनी पडेगी ।

एक रात, जब स्त्री सो रही थी, उसके पति ने किसी औजार से अढाई-सेरी का सोना हटा दिया । अढाई-सेरी आधी नजर आने लगी । सुबह स्त्री उठकर देखा—अरे ! हार तो लोहे का है ! लोहा पहना कर मुझे बोझो क्यो मारा ? बैर ही भजाना था तो और तरह भजा लेते ।

सेठ के लड़के ने कहा—मैं तुम्हारी सुकुमारता की परीक्षा करना चाहता था । एक दिन मा ने शिला लाने का कहा था, तब तुम इतनी सुकुमार थी कि तुमसे शिला नही उठी । फिर तुम शिला से भी भारी बोझ गले मे लटकाये रही और कष्ट का अनुभव नही किया । आज, जब तुमने देखा कि यह सोना नही लोहा है तो फिर तुम्हे बोझ लगने लगा । बोझ क्या लोहे में ही होता है, सोने मे नही ? तुम्हे सीख देने के लिए ही मैंने यह उपाय किया था । तुम मेरी माता को देव-गुरु को तरह ही पूजनीय समझना । मैं माता

से द्रोह करके स्त्री का गुलाम होकर रहने वाले कपूतो मे नही हूं ।

अब आप अपने विषय मे सोचिये । आप पाप का बड़े से बड़ा बोझ उठा लेते है मगर धर्म का थोडा—सा भार भी नही उठा सकते ! सोने का बोझ प्रसन्नतापूर्वक सह सकते हैं पर लोहे का बोझ नही सहा जाता ! मगर ज्ञानी की दृष्टि में सोने का बोझ और लोहे का बोझ समान है ।

४५ : मिश्री का हीरा

एक बार अकबर बादशाह अपने महल मे सो रहा था । वर्षा की अधिकता के कारण यमुना नदी मे जोर का पूर आया । यमुना की घर्र—घर्र की ध्वनि से बादशाह की नीद टूट गई । बादशाह ने पहरेदार को बुलाकर पूछा—यमुना क्यों रो रही है ?

पहरेदार—जहापनाह, इतनी बुद्धि मुझमें होती तो मैं सिपाही क्यो बना रहता ? वजीर न बन जाता ?

बादशाह ठीक है । जाकर वजीर को बुला लाओ ।

पहरेदार वजीर को बुलाने गया । वजीर सो रहे थे ।

सिपाही ने आवाज लगाई । वजीर की नींद खुली । उसने पूछा—क्या मामला है ?

सिपाही—जहांपनाह आपको याद फरमा रहे हैं ।

वजीर—क्यों ? इस वक्त किसलिए ?

सिपाही ने सारा वृत्तान्त उसे बता दिया । रात का समय था । वर्षा हो रही थी । घोर अन्धकार छाया हुआ था पर वजीर विवश थे, बादशाह की हुक्म-अदूली कैसे की जा सकती थी ? अतएव इच्छा न होने पर भी उसे बादशाह के पास जाना पड़ा ।

यथोचित शिष्टाचार के पश्चात् वजीर ने अपने को बुलवाने का कारण पूछा । बादशाह ने वजीर को वही प्रश्न पूछा—यमुना नदी क्यों रो रही है ?

वजीर ने उत्तर दिया—जहांपनाह, यमुना हिन्दुस्तान की नदी है । हिन्दुस्तान की नदी होने के कारण वह भी हिन्दुओं की रीति-नीति का पालन करती है । हिन्दुओं में रिवाज है कि लडकी जब पीहर से अपने ससुराल जाती है तब रोती जाती है । यमुना भी अपने पीहर से ससुराल जा रही है, इसलिए रोती हुई जा रही है । इसका पीहर वह हिमालय पहाड है, जहां से इसका उद्गम हुआ है और ससुराल समुद्र है ।

वजीर की यह व्याख्या बादशाह को पसन्द आई । उसने वजीर को जाने की इजाजत दी ।

वजीर घर जाने के लिए रवाना हुआ । रास्ते में

किसी घर मे एक बूढा जोर-जोर से रो रहा था। वजीर ने उसका रोना सुनकर सोचा—नदी का चढना और बादशाह का मुझे बुलाना इसी बूढे के निमित्त हुआ जान पड़ता है। अगर मैंने इसका रोना सुन करके भी इसका दुःख दूर न किया तो मेरी वजारत को और साथ ही आदमियत को धिक्कार है।

जिस घर में बूढा रो रहा था, उस घर का नम्बर नोट करके वजीर अपने घर चला गया। बूढे का रोना रात भर वजीर के दिल मे काटे की तरह चुभता रहा। वह सोचता रहा—कब सुबह हो और बूढे का दुःख दूर करू।

प्रातःकाल होते ही वजीर ने बूढे को बुला लाने के लिए आदमी भेजा। वजीर का बुलावा सुनते ही बूढा बुरी तरह घबराया। सोचने लगा—यह और नई मुसीबत कहा से आ पडी? परन्तु वह वजीर के आदमी के साथ हो लिया और वजीर के घर जा पहुंचा।

वजीर ने बूढे से पूछा—चाचा, रात को रोते क्यो थे? सच बताओ।

बूढे ने जवाब दिया—हुजूर, मैं कारीगर हूं। जवानी मे मैं रफू करने का काम करता था और काफी काम लेता था। पर जो कमाता था, सब खर्च कर देता था, बचत नही करता था। उस समय बचत की आवश्यकता ही महसूस नही होती थी। जवान लडका था—सोचा था बुढापे मे वह कमाएगा और मैं बैठा-बैठा खाऊंगा। इस प्रकार बेफिक्री मे अपना समय गुजार रहा था कि अचानक मेरा जवान

बेटा चल बसा। मैं पापी बैठा रहा। अब हाथ-पैर थक चुके हैं। काम होता नही और गुजर करने को फूटी कौड़ी पास मे नही है। जिन्दगी में कभी भीख नही मांगी। भीख मागने का इरादा करते ही शर्म से गड जाता हूं। इसी मुसीबत के मारे रात को रोना आ गया था।

मित्रो ! किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति पर आर्थिक संकट आकर पडता है तब उस पर क्या बीतती है, इस घटना से यह जाना जा सकता है।

बूढे की कैफियत सुनकर वजीर ने कहा—तुम अब भी रफू करना जानते तो हो न ?

बूढा—जी हा, जानता क्यो नही, पर हाथ कापता है।

इस पर वजीर ने उस बूढे को रुपये देते हुए कहा—मैंने तुम्हे अपना चचा बना लिया है। अब चिन्ता-फिक्र मत करना।

बूढे ने कहा—जन्म भर मैंने कभी मागा नही है, न किसी का मुफ्त का खाया है। अगर मुझे कुछ काम मिल जाय और फिर ये रुपये मिलें तो ठीक होगा।

वजीर ने कहा—अच्छा, तुम्हे काम भी देंगे। लो, यह मिश्री का टुकडा ले जाओ। इसे हीरा बनाकर ले आना। दिखने मे वह बिलकुल हीरा हो, मगर पानी लगने से गल जाय !

बूढे ने "बहुत ठीक" कहकर विदा ली।

अचानक सहायता मिल जाने से बूढे में कुछ उत्साह

आ गया था और वह कारीगर तो था ही। थोडे दिनों बाद मिश्री के टुकडे को वह हीरा बनाकर, एक सुन्दर मखमल की डिब्बी में सजा कर वजीर के पास ले आया। वजीर हीरे को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कारीगर को बढिया-बढिया कपडे देकर कहा—तुम ये कपडे पहन कर, हीरा लेकर बादशाह सलामत के दरबार में हाजिर होना।

वजीर के आदेशानुसार कारीगर जौहरी बन गया। वह नकली हीरा लेकर बादशाह के समक्ष उपस्थित हुआ।

वजीर ने कारीगर को जौहरी बताते हुए उसकी खूब प्रशसा की। कहा—ये अमुक देश के प्रसिद्ध जौहरी हैं। इनके पास एक बढिया हीरा है। वह जहापनाह के लायक है। मैंने हीरा देखा है। वह मुझे बहुत पसन्द आया है।

बादशाह ने हीरा देखने की इच्छा प्रदर्शित की तो जौहरी ने डबिया खोलकर हीरा उनके सामने रख दिया। बादशाह को भी वह पसन्द आ गया। उसने कहा—जौहरियो को बुलाकर इसकी कीमत जचवाओ।

वजीर ने नकली जौहरी से कहा—आज आप जाइए। कल आइए, तब तक इसकी कीमत की जाच करा ली जायगी।

वजीर ने कारीगर को रवाना किया और हीरा अपने पास रख लिया। वजीर ने सोचा—अगर जौहरी आये तो सारा गुड-गोबर हो जायगा। फिर यह चालाकी न चल सकेगी। यह सोचकर उसने पहले ही उचित व्यवस्था करने का निश्चय कर लिया।

बादशाह जब दरबार से उठकर नहाने गया और नहाने लगा, तब वजीर ने कहा—हुजूर, जौहरी आएंगे तब मैं उस जरूरी काम मे लगा होऊगा। बेहतर होगा, आप ही अपने पास इसे रखें और जौहरियो को दिखला लें।

बादशाह ने वह हीरा ले लिया और वही कही रख लिया।

वह नहाने लगा। बादशाह को क्या पता था कि हीरा मिश्री का है और वह पानी लगने से गल जायगा। वह नाहता रहा और पानी हीरे पर पड़ता रहा। नतीजा यह हुआ कि हीरा गल गया और बादशाह को पता ही न चला।

बादशाह स्नान करके अन्यत्र चला गया। उसे हीरे का खयाल न रहा। थोडी देर बाद जब उसे हीरा याद आया तो उसने स्नानगृह मे तलाश करवाया, पर हीरा नदारत था।

बादशाह ने नौकरों को डाटा-डपटा। उनकी चमडी उधड़वा लेने की धमकी दी, कौडे लगवाने का डर दिखाया। पर नतीजा कुछ न निकला। बेचारे नौकर हीरे के विषय मे क्या कहते! जब हीरा न मिला तो बादशाह ने वजीर को बुलवाकर पूछा—वजीर, तुम मुझे हीरा दे गये थे न?

वजीर—जी हा जहांपनाह, मैं आपके हाथ मे दे गया था और आपने स्नानघर मे अपने पास ही रख लिया था।

बादशाह—मुझे भी यही याद पड़ता है। तुमने मुझे हीरा दिया और मैंने वही रख लिया। मैं नहाने लगा।

नहाने के बाद मैं उसका खयाल भूल गया और वहा से चला आया। अब तलाश करवाया तो वह गायब है। सिवाय नौकरो–चाकरो के, स्नान–घर मे कोई जाता नही है। साफ है कि इन्ही मे से किसी की बदमाशी है। इनकी मरम्मत करो और हीरा निकलवाओ।

वजीर ने कहा—हीरा खाने की चीज तो है नही, जिसे कोई खा जायगा। अगर कोई खा जायगा तो मर जायगा। इसके लिए मार–पीट करने से आपकी बदनामी होगी। वह परदेशी व्यापारी है। सुनेगा तो देश–देशान्तर मे कहता फिरेगा कि इतने बडे बादशाह एक हीरा भी नहीं सम्भाल सके, तो इतनी वडी सल्तनत को क्या खाक सम्भाल सकेंगे! इससे आपकी नेकनामी में धब्बा लगेगा। हीरा तो गया, अब इज्जत क्यो जाने दी जाय? मेरी राय मे तो चुप रहना ही बेहतर है।

वजीर की बात बादशाह समझ गया। उसने कहा—अच्छा, इनकी तलाशी तो ले लो।

वजीर जानता था—हीरा पानी बन गया है। उसने इधर–उधर की तलाशी ली और जाकर बादशाह से बोला—अन्नदाता, बहुत तलाश करने पर भी हीरे का पता नही चला। ऐसी वडी और बढिया चीज पर फरिश्ते भी आशिक हो जाया करते है। मुमकिन है कोई फरिश्ता ही उसे उडा ले गया हो। खैर, हीरा गया सो गया। अब नौकरो को सख्त हिदायत कर दी जाय कि उसके गुम होने की खबर बाहर न पहुच सके। बादशाह की स्वीकृति से वजीर ने नौकरो को बुलाकर कहा—हीरा तुम्ही लोगो मे गायब हुआ

है। फिर भी तुम्हें जहांपनाह माफी बख्शते है। मगर याद रखना, हीरा गायब होने की खबर अगर बहार गई तो सारा कसूर तुम्हारे ही सिर मढा जायगा और तुम्हारी खाल उतरवा ली जायगी।

सभी नौकर मन ही मन वजीर के प्रति कृतज्ञ हुए कि वजीर साहब ने आज हम लोगो को बचा लिया। इधर बादशाह वजीर के प्रति उपकृत थे कि हीरा तो चला ही गया था, वजीर ने बदनाम होने से बचा लिया। यह अच्छा हुआ।

इसके बाद बादशाह ने कहा—हीरा तो गया, अब वह व्यापारी आएगा तो क्या करना होगा ?

वजीर– व्यापारी आपको हीरा दे गया था। वह तो अपने हीरे की कीमत चाहेगा ही और उसे मिलनी भी चाहिए।

बादशाह—ठीक है। उसे पूरी कीमत मिलनी चाहिए।

दूसरे दिन जौहरी बना हुआ कारीगर फिर दरबार मे आया। वजीर ने उससे कहा—"तुम्हारा हीरा बादशाह सलामत को पसन्द आ गया है। अपने ईमान से उसकी कीमत बताओ।"

कारीगर—मैं उस हीरे को ईरान, अफगानिस्तान, तुर्की आदि कई मुल्को मे ले गया हू। उसकी कीमत एक लाख पाच हजार लगी है। मैं हिन्दुस्तान के बादशाह की बहुत तारीफ सुनकर यहा आया हूं, कुछ अधिक पाने की उम्मीद

मे । अगर बादशाह सलामत इससे कम देगे तो मैं इन्कार नही करूगा और अधिक देंगे तो उनका बड़प्पन समझूंगा ।

वजीर साहब की राय से एक लाख आठ हजार देना तय किया गया । कारीगर यह रकम लेकर खुशी-खुशी अपने घर चलता बना ।

कारीगर फिर वजीर के घर पहुचा । उसने वजीर से कहा—इन रुपयो का क्या किया जाय ?

वजीर—यह रुपया तुम्हारी कारीगरी से मिला है, सो तुम्ही रखो ।

कारीगर—"इसमें मेरा क्या है ? यह तो आपकी ही बुद्धिमता और दया से मिला है ।" अन्त मे वजीर और कारीगर ने आपस मे कोई समझौता किया और रुपया रख लिया गया ।

यह दृष्टान्त है । पुण्य की कारीगरी से बना हुआ यह मनुष्य-शरीर मिश्री के हीरे के समान है । यह शरीर मिश्री के समान ही कच्चा है, जरा से पानी से गल जाने वाला । चक्रवर्त्ती और वासुदेवो के शरीर भी गल गये तो दूसरो के शरीर की क्या चलाई है ? इसका गलना तो निश्चित है ही, लेकिन किसी महात्मा रूपी वजीर के द्वारा परमात्मा की सेवा मे इसे समर्पित कर दिया जाय और वही जाकर गले तो कैसा अच्छा हो ! अगर यह शरीर तप और शील की आराधना मे काम आए तो इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है ? अतएव इस बात का विचार करो

कि जो वस्तु तुम्हे प्राप्त हुई हैं, उसका सदुपयोग किस प्रकार किया जा सकता है ?

४६ : कर्त्तव्य-पालन

एक सेठ थे, जिनका नाम मोतीलाल था। उनके दो पत्निया थी। एक बडी, दूसरी छोटी। छोटी ने विचार किया, मैं बडी सेठानी की मौजूदगी मे आई हू। इससे प्रगट है कि बडी ने पति की सेवा मे किसी प्रकार की कमी की है। ऐसा न होता, वह पति का मनोरजन करती रहती, पति की सेवा मे कोई त्रुटि न होने देती तो पति मुझे क्यो लाते ? अतएव मुझे सावधान रहना चाहिए। मुझे ऐसा कुछ भी नही करना चाहिए, जिससे तीसरी के आने का अवसर उपस्थित हो।

छोटी सेठानी ने बडी सेठानी के कार्यों की देख-भाल की। बडी सेठानी एक मोटी-सी गद्दी पर बैठकर हाथ मे माला लेती और "मोतीलाल सेठ, मोतीलाल सेठ" कहकर अपने पति के नाम की माला जपा करती। यह देखकर छोटी ने सोचा—इस प्रकार पति का रजन होता तो मेरे आने का अवसर ही क्यो आता ? सेठजी को इससे सन्तोष नहीं हुआ, इसीलिए मुझे लाये हैं। तव क्या मैं भी बड़ी की

भांति माला लेकर उनका नाम जपने बैठू ? नही । मैं तो सीधी-सादी एक बात करूगी । वह यह कि सेठजी के काम मे अपना काम । सेठजी की खुशी मे अपनी भी खुशी । जिस कार्य से सेठजी को प्रसन्नता होती है, उसी से मैं प्रसन्नता का अनुभव किया करूगी । इसके अतिरिक्त वे आज्ञा दे, उसे शिरोधार्य कर लेना । उनका काम पहले से ही कर रखना, जिससे उन्हे कभी मेरा अपमान करने का मौका न मिले ।

दोनो सेठानिया अपने-अपने तरीके से चलने लगी । एक दिन सेठ मोतीलाल जल्दी मे घबराये हुए से घर आये । दरवाजे के नजदीक पहुंचते ही उन्होने पानी लाने के लिए पुकार की । उनकी पुकार सुनकर बडी सेठानी कहने लगी—"न जाने इनकी कैसी समझ है । मैं इन्ही के नाम की माला फेर रही हू और यह स्वय उसमे विघ्न डाल रहे हैं । इतनी दूर चलकर आये है, तो यह नही बनता कि दो कदम आगे चले आवें और हाथ से भर कर पानी पीले । ऐसा तो करते नही और मुझ से कहते है-पानी लाओ । पानी लाओ । भला मैं अपने जाप को कैसे खण्डित करू ?"

मन मे इस प्रकार कहकर बड़ी सेठानी अपने स्थान से न हिली और डुली और ज्यो की त्यो बैठी-बैठी माला सरकाती रही । उधर छोटी सेठानी आवाज सुनते ही दौडी और उसी समय पानी लेकर हाजिर हो गई ।

सेठ ने छोटी सेठानी की तरफ नजर फेंकी और पानी लेकर अपनी प्यास बुझाई । जैसे ही सेठ भीतर घुसा तो देखा - बडी सेठानी बैठी उन्ही के नाम की माला जप रही

है । वडी सेठानी ने सेठ को आते देखा तो अपना स्वर ऊचा कर दिया । अब वह तनिक जोर से "मोतीलाल सेठ, मोतीलाल सेठ" कहकर जाप करने लगी ।

इधर छोटी सेठानी ने हाथ जोडकर प्रेम के साथ कहा—"भोजन तैयार है, पधारिये । भोजन का समय भी तो हो चुका है ।"

आपके घर मे ऐसा हो तो आपका चित्त किस पर प्रसन्न होगा ?

"छोटी पर !

पद्मिनी अपने "पियु" को नही भूलती, इसे स्पष्ट करने के लिए यह दृष्टान्त दिया गया है । इस दृष्टान्त मे दोनो स्त्रिया अपने पति को नही भूलती, पर दोनो मे से पति को प्रिय कौन होगी ?

"काम करने वाली !"

ईश्वर के भजन के विषय मे भी यही बात है । ईश्वर का भजन करने वाले भी दो प्रकार के होते है । एक वडी सेठानी के समान ईश्वर के नाम की माला फेरने वाले और दूसरे ईश्वर की आज्ञा की आराधना करने वाले । इन दोनो भक्तो मे से ईश्वर किस पर प्रसन्न होगा ?

"आज्ञा की आराधना करने वाले पर !"

मैं यह नही कहता कि माला फेरना बुरा है, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि प्यास का मारा सेठ तो पानी की

पुकार करे और सेठानी बैठी-बैठी उसी के नाम की माला जपे। क्या इस प्रकार की क्रिया विवेकशून्य नही है ?

ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करके, उसके नाम की माला जप लेने मात्र से कल्याण नही हो सकता ।

कदाचित् कोई यह कहने लगे कि मोतीलाल सेठ की बड़ी सेठानी यदि सचित्त पानी पिलाती तो उसे पाप लगता। इसी कारण उसने पानी नही पिलाया होगा । इस सम्बन्ध मे इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि जो इस पाप से बचेगी, वह मोतीलाल जी की स्त्री भी न कहलाएगी । वह तो संसार सम्बन्धी समस्त व्यवहारो से विमुख होकर आत्म-कल्याण मे ही तत्पर रहेगी। जो उच्चतर स्थिति मे जा पहुंचता है, वह तो जगत् से नाता तोड लेता है और जगत् से नाता तोडकर भी सभी से नाता जोडता है अर्थात् वह संकुचित विचारो की परिधि से बाहर निकल जाता है। सेठ के दिये वस्त्राभूषण पहनकर बनाव-सिंगार करना, गाडी पर बैठना, सेठ के नौकरो पर हुक्म चलाना, ससार सम्बन्धी भोग-विलास करना, इन सबके लिये तो पाप का विचार न करे और सेठ के पानी मागने पर भी पाप के विचार से उसे पानी न देना निरी आत्म-वचना नही तो और क्या है ? क्या यह धर्म का उपहास नही है ?



४७ : निष्काम सेवा

सच्चा सेवक वह है, जो स्वामी के कहने पर ही सेवा नही करता वरन् स्वामी पर ऐसी जिम्मेवारी डालता है कि उसे सेवा करानी ही पडे ।

वन-गमन करते समय रामचन्द्र को नदी पार करने का काम पडा । आपकी दृष्टि मे तो नाव खेने वाला नीच है, लेकिन उसकी नाव मे बैठकर नदी पार करते समय वही नाविक कितना प्यारा लगता है, इसे कौन नही जानता ?

रामचन्द्र ने जाकर निषाद से कहा—भाई, हमे पार उतार दो । निषाद मन में सोचने लगा—'यह मोहिनी मूर्ति कौन है ? कैसा यह पुरुष है, कैसी नारी है और क्या ही सौम्य इसका भाई है !

मन ही मन इस प्रकार सोच कर निषाद ने पूछा—मैंने सुना है, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र वन को आये हैं । क्या तुम्ही तो राम नही हो ?'

राम—हा भाई, राम तो मैं ही हूं ।

निषाद—मैं इन्हे तो पार उतार दूंगा, पर तुम्हे न उतारूंगा ।

राम—क्यो ? क्या हम इतने अधम हैं !

निषाद—अधम तो नही हो, पर एक अवगुण तुम में अवश्य है ।

राम—वह कौन-सा ?

निपाद—मैंने सुना है, तुम्हारे पाव की धूल यदि पत्थर से लग जाती है तो वह पत्थर भी मनुष्य बन जाता है । जब पत्थर भी मनुष्य बन जाता है तो मेरी नाव तो लकड़ी की ही है। तुम्हारे पैर की धूल अगर इसे छू गई और यह भी मनुष्य बन गई तो मेरी मुसीबत हो जायगी । मैं कैसे कमा कर खाऊगा ? तुम्हारे पैर मे रज तो लगी ही होगी और वह नाव से लगे बिना रहेगा नही । इसलिए मैं तुम्हे पार नही उतारने का ।

राम—तो क्या मैं तैर कर नदी पार करू ? अगर बीच मैं थक जाऊं तो डूब मरू ?

निषाद—नही, तैर कर मत जाओ । जिसके पाव की रज से पत्थर भी मनुष्य बन जाता है, उसे डूबने कैसे दू गा ?

इतना कह कर निषाद ने लकड़ी की कठौती लाकर राम के आगे रख दी और बोला—अगर आप नाव पर चढकर पार जाना चाहते हैं तो इसमे पैर रख दीजिए । मैं अपने हाथो से आपके पावो धो लू गा और यह विश्वास कर लू गा कि आपके पावो मे धूल नही रही, तब नाव पर चढा कर पहुचा दू गा । हा, यह ध्यान रहे कि दूसरे किसी को मैं आपके पैर न धोने दू गा । नही तो सम्भव है, रज रह जाय ।

तुलसीदास की रामायण का यह वर्णन है । निषाद

ये सब बाते इस मतलब से कह रहा था कि उसे रामचन्द्र की सेवा करनी थी और राम अपनी सेवा किसी से कराना नही चाहते थे। वे वनवासी थे, अतएव यथाशक्य स्वावलम्बी रहना चाहते थे। पर निषाद ने यह कहकर रामचन्द्र को पैर धुलाने के लिए विवश कर दिया। भक्तजन ऐसे ही उपायो से अपने स्वामी को सेवा कराने के लिए विवश कर कर देते है।

निषाद ने राम, लक्ष्मण और सीता, इन तीनो को बैठा कर बडे प्रम से पाव धोये। इसके पश्चात् उसने उन्हे नाव मे बैठने को कहा। उसने सोचा--चलो, यह पानी भी बडे काम का है। इसमे वह रज है, जिससे पत्थर भी मनुष्य बन जाता है।

पैरो का वह धोन (धोवरण) लेकर निषाद अपने घर गया। उसने घर वालो से कहा—लो, यह चरणामृत ले लो। आज बड़े पुण्य से यह मिला है। इस चरणामृत मे वह रज है जिससे पत्थर भी मनुष्य बन जाता है। पेट में पहुच कर यह रज न जाने क्या गुण करेगी !

इधर राम ने सोचा—सेवा-भक्ति किसे कहते है, यह लक्ष्मण को सिखाने का अच्छा अवसर है जिससे लक्ष्मण का अभिमान समाप्त हो जाय। यह सोचकर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—देखो, निषाद क्या कर रहा है ? हम लोगो को विलम्ब हो रहा है।

रामचन्द्र के आदेश से लक्ष्मण निषाद के घर गये। वे निषाद मे कहने लगे—भाई, चलो, विलम्ब हो रहा है।

निषाद ने कहा—अभी ठहरिये । हम प्रसाद बाट रहे है । जब सब ले लेंगे, तब आएगे ।

लक्ष्मण ने सोचा—मै समझता था, रामचन्द्र का बड़ा भक्त मैं ही हूं पर निषाद ने मेरा अहंकार चूर कर दिया । इसकी भक्ति के सामने तो मेरी भक्ति नगण्य-सी हो जाती है । राम की सेवा करने मे मुझे तो कुछ आशा भी हो सकती है पर निषाद को क्या आशा है ? भैया ने मुझे यहा भेजकर मेरी आखे खोल दी है । शायद उन्होने इसी उद्देश्य से मुझे यहा भेजा है । यहा आकर मैंने जाना कि निषाद जो सेवा-भक्ति कर रहा है, मैं उसका एक अश भी नहीं कर सकता ।

निषाद आया । सीता, राम और लक्ष्मण उसकी नाव मे बैठकर नदी पार गये । रामचन्द्र निषाद के सौजन्य की प्रशसा करते जाते थे, पर निषाद अपनी प्रशसा की ओर ध्यान न देता हुआ भक्ति-रस मे डूब रहा था ।

रामचन्द्र जी जब दूसरे किनारे पहुच गये, तब बड़े संकट मे पडे । वे सोचने लगे—निषाद ने इतनी सेवा की है और बिना बदला दिये किसी की सेवा लेना उचित नही है । लेकिन इसे दें क्या ? क्षत्रियो का यह धर्म है कि सेवा का प्रतिफल अवश्य दें । मगर देने को कुछ भी नही है ।

जब कोई देना चाहता है मगर पास मे कुछ न होने से दे नही सकता, तब हृदय कितना सतप्त होता है, यह बात भुक्तभोगी ही भली-भाति समझ सकता है । रामचन्द्र ऐसी ही गहरी चिन्ता मे थे कि—

सिय पिय–हिय की जाननिहारी ।
मणि-मुंदरी निज दीन्हि उतारी ।।

सीता को अपने स्वामी के हृदय मे होने वाले संताप का पता चला । वे समझ गई कि पति इस समय सकट और सकोच मे है । पति यो तो सकटो से घबराने वाले नहीं है किन्तु यह सकट तो धर्म-सकट है । जब सीताजी राम के साथ वनगमन के लिए तैयार हुई तो वे भी अपने सब आभूषण घर पर ही उतार आई थी, सिर्फ एक अगूठी उगली मे रख ली थी । इस समय सीताजी ने बिना कहे–सुने ही अगूठी राम को सौंप दी । रामचन्द्र सीता की प्रशसा करने लगे । पत्नी हो तो ऐसी हो ?

आज तो पति भी अपना कर्त्तव्य भूले हुए हैं और पत्निया भी आभूषणो के लोभ मे पड़कर अपना कर्त्तव्य विसार बैठी है । मगर राम की यह कथा आज भी पति-पत्नी का आदर्श सामने उपस्थित करती है ।

राम निषाद को वह अगूठी देते हुए बोले—भाई, अपनी उतराई ले लो ।

निषाद—उतराई देकर क्या आप मुझे जाति भ्रष्ट करना चाहते है ?

राम—इससे जातिभ्रष्ट कैसे हो जाओगे ?

निषाद—अगर नाई, नाई से बाल बनवाई के पैसे ले तो वह जाति से च्युत कर दिया जाता है । धोबी, धोबी से धुलाई वसूल करे तो वह जाति से अलग कर दिया जाता

है वे लोग अपने कुल वालों का काम करने वाले से मजदूरी नही लेते । फिर मैं आपसे कैसे लू ? आपका और मेरा पेशा तो एक ही है । जो काम मैं करता हूं, वही आप भी करते है । ऐसी अवस्था मे मैं आपसे अपना पारिश्रमिक नही ले सकता ! इससे तो मुझे जाति से भ्रष्ट होना पड़ेगा ।

राम—भाई, तुम्हारा और मेरा एक ही पेशा कैसे ? तुम्हारी बात ही कुछ निराले ढग की होती है ।

निषाद—मैं अपनी नाव मे बैठाकर नदी मे पार उतारता हू और आप अपनी नौका पर चढाकर लोगो को संसार से पार उतारते हैं । पार उतारना दोनो का ही काम है । अगर मैं आप से उतराई ले लूगा तो फिर आप मुझे क्य पार करेगे ? हा, एक बात हो सकती है । अगर आप बदला दिये बिना नही रह सकते तो अच्छा-सा बदला दीजिए । मैंने आपको नदी से पार कर दिया है, आप मुझे भव-सागरो से पार कर दीजिए । बस, बदला हो जायगा ।

तात्पर्य यह है कि सेवा करने वाले में निष्कामता होनी चाहिए । जो सेवक निष्काम होता है, बेलाग रहता हैं, उनकी सेवा के वश मे सभी हो जाते है, भले ही वह ईश्वर ही क्यों न हो ! इसके विपरीत लालच के वश होकर सेवा करने वाले में एक प्रकार की दीनता रहती है । वह अपने आपको ओछा, हीन और परमुखापेक्षी अनुभव करता है । निष्काम भावना मे सेवा भूषण बनती है और कामना सेवा का दूषण बन जाती है ।



४८ : ढोंग

एक ठाकुर अपनी पत्नी की बहुत प्रशंसा किया करता था। वह कहता—ससार मे सती स्त्रिया तो और भी मिल सकती है पर मेरी स्त्री जैसी स्त्री सती दूसरा नही। कभी-कभी वह सीता, अजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ कहता। उसके मित्रो मे कई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा—ठाकुर साहब ! आप भोले हैं और स्त्री के चरित्र को जानते नही हैं। इसी कारण आप ऐसा कहते है। तिरिय-चरित को समझ लेना साधारण बात नही है।

ठाकुर ने अपना भोलापन नही समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समलोचक ने कहा—कभी आपने परीक्षा की है या नही ?

ठाकुर—परीक्षा करने की आवश्यकता ही नही है। मेरी स्त्री मुझसे इतना प्रेम करती है, जितना मछली पानी से प्रेम करती है। जैसे मछली पानी बिना जीवित नही रह सकती उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नही रह सकती।

समालोचक—आपकी बातो से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हैं। आप जब परीक्षा करके देखेंगे, तब सचाई मालूम होगी।

ठाकुर—अच्छी बात है। कहो, किस तरह परीक्षा की जाय ?

समालोचक—आज आप अपनी स्त्री से कहिए कि मुझे पाच-सात दिन के लिए राजकीय काम से बाहर जाना है। यह कहकर आप बाहर चले जाना और छिप कर घर मे बैठ रहना। उस समय मालूम होगा कि आपकी स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है। आप अपने पीछे ही स्त्री की परीक्षा कर सकते हैं, मौजूदगी मे नहीं।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया। उसने स्त्री से कहा—तुम्हे छोडने को जी नही चाहता, मगर लाचारी है। कुछ दिनो के लिए तुम्हे छोड़कर बाहर जाना पडेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नही।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता और आश्चर्य के साथ कहा—क्या हुक्म हुआ ? कौन-सा हुक्म मानना पडेगा ?

ठाकुर—मुझे पाच-सात दिन के लिए बाहर जाना है। जाऊगा। आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नही भेज सकते ?

ठाकुर—लेकिन ऐसा करना ठीक नही होगा। लोग कहेंगे, स्त्री के कहने मे लगा है। मैं यह कहूगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नही छूटता ? ऐसा कहना तो बहुत बुरा होगा।

ठकुरानी—हां, ऐसा कहना तो ठीक नही होगा। खैर जो होगा देखा जायगा।

इतना कह कर ठकुरानी आंसू बहाने लगी। उसने अपनी दासी से कहा—दासी, जा। कुछ खाने के लिए बना दे, जो साथ मे ले जाया जा सके।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बाते सुनकर ठाकुर सोचने लगा—मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम है!

ठाकुर घोड़ी पर सवार होकर कोस दो कोस गया। घोड़ी ठिकाने बाधकर वह लौट आया और छिपकर घर मे बैठ गया।

दिन व्यतीत हो गया। रात हो गई। ठकुरानी ने दासी से कहा—'ठाकुर गया गाम' म्हाने नी भावे धान।' अभी रात ज्यादा है। पास के अपने खेत से दस-पाच साठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो।' दासी ने सोचा—'ठीक है। मुझे भी हिस्सा मिलेगा।' वह गई और गन्ने तोड लाई। ठकुरानी गन्ना चूसने लगी।

ठाकुर छिपा-छिपा देख रहा था। उसने सोचा—मेरे वियोग के कारण इसे अन्न नही भाता। मुझ पर इसका कितना गाढा प्रेम है!

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही। गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली—अभी रात बहुत है। गन्ना चूसने से भूख लग आई है। थोडे नरम-गरम बाफले तो बना डाल! देख, घी जरा अच्छा लगाना हो!

दासी ने सोचा—चलो ठीक है। मुझे भी मिलेंगे। दासी ने बाफले बनाये और खूब घी लगाया। ठकुरानी ने

बाफले खाए। खाने के थोड़ी देर बाद वह कहने लगी—दासी, बाफले तूने बनाये तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नही लगे। यह खाना कुछ भारी भी है। थोड़ी नरम-नरम खिचडी बना डाल।

दासी ने वही किया। खिचडी खाकर ठकुरानी बोली—तीन पहर रात बीत गई। अभी एक पहर और बाकी है। थोडी लाई (धानी) सेक ला। उसे चबाते-चबाते रात बितायें। दासी सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर बैठा-बैठा सब देख सुन रहा था। वह सोचने लगा—पहली ही रात मे यह हाल है तो आगे क्या-क्या नही हो सकता। अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह अपने घोडे के पास लौट आया। घोडे पर सवार होकर घर आ पहुचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया—'होकम' पधार गए हैं। ठकुरानी ने कहा—'होकम' पधार गए! अच्छा हुआ।

ठाकुर से वह बोली—अच्छा हुआ, आप पधार गये। मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर—तुम्हारी तकदीर अच्छी थी, इसी से मैं आज बच गया। बडे सकट मे पड़ गया था।

ठकुरानी—ऐं, क्या सकट आ पडा था?

ठाकुर—घोडे के सामने एक भयकर सांप आ गया था।

मैं आगे बढता तो साप मुझे काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया, इसी से बच गया।

ठकुरानी—आह ! साप कितना बड़ा था ?

ठाकुर—अपने पास के खेत के गन्ने जितना बडा भयानक था।

ठकुरानी—यह फन तो नही फैलाता था ?

ठाकुर—फन का क्या पूछना है ! उनका फन बाफले जैसा बडा था !

ठाकुरनी—वह दौड़ता भी था ?

ठाकुर—हा दौडता क्यो नही था ! ऐसा दौडता था जैसे खिचड़ी मे घी।

ठकुरानी—हा, ऐसे जोर का फुकार मारता था, जैसे कडेले मे पडी हुई धानी सेकने के समय फूटती है !

ठाकुर की बातें सुनकर ठकुरानी सोचने लगी—ये चारो बातें मुझ पर ही घटित हो रही हैं ! फिर भी उसने कहा—चलो, मेरे भाग्य अच्छे थे कि आप उस नाग से बच कर घर लौट आये !

ठाकुर—ठकुरानी, समझो। मैं उस नाग से बच निकला मगर तुम सरीखी नागिन से बचना कठिन है।

ठकुरानी—क्या मैं नागिन हूं ! अरे बाप रे ! मैं नागिन हो गई ! भगवान् जानता है, सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया, जो मुझे नागिन बनाते है !

ठाकुर—मैं नही बनाता, तुम स्वय बन रही हो ! मैं अपने मित्रो के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ !

ठकुरानी—तो बताते क्यो नही, मैंने ऐसा क्या किया है ? मैं आपके बिना जी नही सकती और आप लाछन लगा रहे हैं !

ठाकुर—बस रहने दो । मैं अब वह नही, जो तुम्हारी मीठी बातो मे आ जाऊ । तुम मुझसे कहा करती थी—तुम्हारे वियोग में मुझे खाना नही भाता और रात भर खाने का कचूमर निकाल दिया !

ठकुरानी की पोल खुल गई । साराश यह कि ससार मे इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रिया भी हैं और पतिव्रताए भी हैं । पति के प्रति निष्कपट भाव मे अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रिया भी मिल सकती हैं और मायाविनी भी मिल सकती है । ससार मे अच्छाई भी है और बुराई भी है । प्रश्न यह है कि हमे क्या ग्रहण करना चाहिए ? किसको अपनाने से हमारा जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है ?



४९ : समभाव

सामायिक को समझने वाला एक परिवार था । ऐसे परिवार के बालको में सहज ही धर्म के सस्कार पड जाते हैं । उस परिवार मे जन्मी हुई एक कन्या का विवाह हुआ । उस लडकी की रग-रग मे धर्म की भावना भरी थी । वह समझती थी कि मुझे विवाह आदि सासारिक कृत्य तो करने ही पडते हैं, लेकिन यह संसार सदा साथ देने वाला नही है । साथ देने वाला तो एक मात्र धर्म ही है ।

विवाह के बाद लडकी ससुराल गई । उसने देखा—मेरी ससुराल के सब लोग उदास है । उसने सोचा—और घरो मे नई बहू आने पर प्रसन्नता का पार नही रहता, लेकिन इस घर में मेरे आने पर उदासी छाई है । इस उदासी का क्या कारण होगा ? मैं अब इस घर की सदस्या हो गई हूं । मेरा कर्त्तव्य है कि घर वालो के सुख-दु ख को जानू और दु:ख हो तो उसे दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करू । ऐसा विचार कर उसने अपनें साथ की दासी से कहा—सासजी से पूछो कि आज घर मे किस बात का दु.ख है ? दासी गई और कारण पूछा ।

सास समझदार थी । उसने सोचा—हम तो दु.खी हैं ही, नई आई बहू को क्यो दु खी करे ? यह सोचकर उसने दासी से कहा—बहू से कह दो कि तुम्हारी ओर का कोई

दु ख नही है। दु:ख का कारण तो और ही है। तुम अभी यह जानकार चिन्ता मे क्यो पड़ती हो ? अगर तुम जान भी गई तो कुछ प्रतिकार नही होगा। इसलिए हमारा दु ख हम ही को भोगने दो।

बहू स्वार्थी स्वभाव की नही थी। उसने यह नही सोचा कि अपनी ओर का दु ख नही है, बस, चलो छुट्टी पाई। अब हमे चिन्ता करने का क्या प्रयोजन है ? बहू ने दासी को भेजकर फिर कहलाया—अगर कहने से कुछ नही होता तो इस तरह रोने से भी कुछ नही होता। रोने से दु ख मिटता नही है, प्रत्युत बढता है। आखिर कहिए तो सही, दु ख क्या है ? कौन जाने, कोई उपाय निकल आए।

सास ने समझा—यह बहू कुछ और तरह की मालूम होती है। आखिरकार धर्मात्मा के घर की बेटी है। वह स्वयं बहू के पास आई और बोली—और कुछ दु ख नही है। इस मोहल्ले मे एक बुढिया रहती है। उसका स्वभाव बडा लडाईखोर है। वह चाहे जब, चाहे जिससे लड़ती थी। इसलिए यह ठहरा दिया है कि वह नित्य एक घर से लड़ लिया करे। सयोगवश आज अपने घर की बारी है। आज ही तुम आई और आज ही वह न जाने क्या-क्या बकेगी ! इसी विचार के कारण उदासी छाई हुई है।

सास की बात सुनकर बहू ने कहा—इस ज़रा-सी बात के लिये इतनी भारी चिन्ता ! आप सबने उसकी आदत बिगाड़ दी है, नही तो वे माजी क्यो लडती ? आप न लडने का उपाय करती तो वे लड़ना छोड देती। आज लड़ाई का

सब काम मुझे सौंप दीजिए । मैं सब ठीक कर लूंगी । मैं इसका मन्त्र जानती हूं ।

सास ने कहा—'भले ही । मगर होशियार रहना । तुम नई आई हो और वह बडी लडने वाली है । उससे कोई जीत नही पाता ।' बहू बोली—'चिन्ता न कीजिए ।'

बहू घर के दरवाजे में बिछौना डालकर बैठ गई । उधर बुढिया ने सोचा—आज लडाई का अच्छा मौका है । आज ही नई बहू आई है और आज ही उस घर से लडने की बारी आई है । उसने यह भी सुना कि नई बहू ही उससे लड़ने को तैयार हुई है । यह सुनकर उसे और भी खुशी हुई । वह खान-पान से निवृत्त होकर, हाथ मे लकडी ले वहा आ पहुंची । आते ही उसने कहा—तू कैसे गये-बीते घराने की है कि इस तरह दरवाजे मे बैठकर मुझ बुढिया से लड़ने को तैयार हुई है ।

बहू को इस बात पर सहज ही क्रोध आ सकता था मगर वह सामायिक को जानती थी । उसे क्रोध नही आया । उसने यह भी नही कहा कि लडने मैं आई हूं या तू आई है ? पर उसने कुछ नहीं कहा, तब बुढिया कहने लगी—रांड, अब बोलती भी नही है ! कैसी चुप्पी मार कर बैठ रही है ! लेकिन बहू हंसती-हसती सुनती ही रही । तब बुढिया चिल्लाई—यह बेशर्म हस रही है । बड़ी निर्लज्ज है! फिर भी वह कुछ न बोली । जब बुढिया धीमी पड़ती, तब वह खास कर फिर हंस देती । बुढिया का पारा फिर गर्म हो उठता । शाम तक यही क्रम चलता रहा । जब शाम हो

गई तो दासी ने कहा—जीमने का समय हो गया है। रात होने को है। चलकर जीम लो। बहू ने कहा—यही भोजन ले आओ। यही जीम लेंगे।

दासी भोजन ले आई। बहू ने बुढिया को भोजन की ओर इशारा करके कहा—आओ माजी, भोजन करलें। बहू का इतना कहना था कि बुढिया गर्ज उठी—मैं क्या भूखी मरती हूं! क्या मुझे कुत्ती समझा है!

बहू ने धीमे से कहा—मनुहार करना मेरा काम था सो मैंने कर लिया। जीमना, न जीमना आपकी मर्जी की बात है।

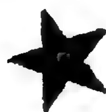
वहू भोजन करने लगी। बुढिया बोली—कितनी बेशर्म है यह चण्डी कि मेरे सामने ही खा रही है! इस प्रकार वह बडबड़ाती रही। बडबडाते उसकी आंते चढ गई। वह बेहोश होकर गिर पडी। बहू ने उसी समय दासी को बुलाया और बुढिया को भीतर ले लेने को कहा। दोनो ने मिलकर उसे उठा लिया और घर के भीतर ले गई। पानी छिडका। बुढिया फिर होश में आ गई। तब बहू ने पूछा—सासजी, अब आपकी तबीयत ठीक है न? आपका यह वृद्ध शरीर और इतना ज्यादा कष्ट उठाना पडा।! अगर मैंने सम्भाला न होता तो न जाने क्या होता? अब आप क्रोध मत किया करो—आज मैंने जो उपाय किया है, वह मुहल्ले के सब लोग जान गये हैं। आप इसी तरह लडती रही तो वर्ष भर के बदले छह महीने में ही मर जाओगी। मरने के बाद न जाने कौन-सी गति मिलेगी। इसलिए अपनी सेवा

का सौभाग्य मुझे दो। एक सास के बदले दो सास की सेवा कर के मुझे दुगुनी प्रसन्नता होगी।

बुढिया की आंखें खुल गईं। उसने सोचा—यह बहू कुछ और ही तरह की है। उसने कहा—बहू ! तू ठीक कहती है। भला, मैं अकेली कब तक लड़ सकती हूं! सामने लड़ने वाला हो तो जोश भी आता है और विश्राम भी मिल जाता है। इस तरह जोश चढा-बढा कर ही लोगो ने मुझे लडना सिखाया है।

बहू की ऐसी मधुर बातें सुनकर बुढिया को शाति मिली। वह उसी के घर रहने लगी। बहू ने उसकी तन-मन से सेवा की। बुढिया ने बहू को अपने धन की स्वामिनी बना दिया। सब जगह बहू की तारीफ होने लगी। झगड़े के समय लोग उसे मध्यस्थ बनाने लगे। मुहल्ले की अशान्ति मिटी और शाति का वातावरण फैल गया।

बहू सामायिक मे नही बैठी थी परन्तु फिर भी उसने सामायिक का फल पाया या नही ? इस प्रकार कही भी, किसी भी अवस्था में, समभाव रखने से सामायिक का फल अवश्य प्राप्त होता है।



५० : लेश्या

जैन शास्त्रो मे मानसिक भावो के लिए लेश्या का निरूपण किया गया है और उनकी शुद्धता-अशुद्धता को देख कर विशिष्ट ज्ञानियो ने उनके कृष्ण, नील आदि छह भेद भी बताये हैं । उत्तराध्ययन और प्रज्ञापना सूत्र में लेश्याओ का विस्तृत वर्णन पाया जाता है । वहा उनके वर्ण, गन्ध, रस आदि का भी निरूपण किया गया है ।

जिसके मन ने जैसे विचार होते हैं, वैसे ही परमाणु उसके आ चिपटते हैं । जिसके मन मे किसी की हत्या भद्दे पुद्गल आ चिपटेंगे । तात्पर्य यह है कि खोटे परिणाम होने पर रग भी खोटा हो जाता है ।

विज्ञान की अनेक उपयोगी बाते जैन शास्त्रो मे पहले ही बतला दी गई है, लेकिन आज वे बातें शास्त्रो के पन्नो मे ही पडी हुई हैं । यह हम लोगो की कमजोरी या उपेक्षा है । आज धर्म-शास्त्र को गहराई से अध्ययन करने वाले और साथ ही विज्ञान के पारगत पडित हमारे यहा नही है । अतएव उन सब शास्त्रीय बातो पर यथेष्ट वैज्ञानिक प्रकाश नही पड़ता ।

लेश्याएं छह हैं—(१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) पीत (५) पद्म (६) शुक्ल । इनमे से जब कोई मनुष्य

कृष्ण लेश्या को त्याग कर नील लेश्या में आता है, तब शास्त्रकारो के कथनानुसार वह कापोत लेश्या की अपेक्षा अधिक अशुद्ध है, मगर कृष्ण लेश्या की अपेक्षाकृत अधिक उदारता और शुभ विचार आ गये हैं । लेश्या के परिणामो की तारतमता समझाने के लिए एक उदाहरण इस प्रकार है—

छह आदमी एक साथ जा रहे थे । उन्हे भूख लगी तो वे इधर-उधर दृष्ठि दौड़ाने लगे । उन्हे एक फला हुआ आम का वृक्ष दिखाई दिया । सब ने आम खाने का निश्चय किया । यहा तक सबके विचारो मे समानता है, मगर आगे उनके विचारो मे अन्तर पड जाता है । छहो मे इस प्रकार वार्तालाप होने लगा ।

पहले ने कहा—अपने पास कुल्हाडी भी है और हम इतने आदमी है कि दो-दो हाथ मारते ही आम का पेड़ कटकर गिर जायगा । तब हम लोग मन चाहे आम खा लेंगे ।

थोडे-से आम खाने हैं मगर परम्परा तक वृक्ष काट गिराने से कितनी हानि होगी, इस बात का विचार इस आदमी को नही है ।

दूसरे आदमी ने कहा—यह वृक्ष न जाने कितने दिन में लगाकर तैयार हुआ है, अतएव इसे काट डालना ठीक नही है । पेड़ तो हम लोगो को खाना नही है, आम खाने हैं । आम मोटी-मोटी डालिया काटने से भी मिल सकते है । इसलिए ये डालिया काट लेनी चाहिए ।

तीसरे ने कहा—पहले आदमी की अपेक्षा तुम्हारा

कहना ठीक है, लेकिन वास्तव मे तुम्हारा कहना भी ठीक नही। बडी-बडी डालिया काटने से लकड़ियो और पत्तो का ढेर लग जायगा।

आम छोटी-छोटी डालियो मे लगे हैं, इसलिए छोटी डालिया ही काटनी चाहिए। इससे लकडियो और पत्तो का ढेर भी नही लगेगा और अगले वर्ष तक वे डालिया फिर फूट निकलेगी।

चौथे ने कहा—तुम्हारी बात भी ठीक नही जचती। छोटी-छोटी डालिया काटने से भी लकड़ी व पत्तो का ढेर हो जायगा और दूसरो को लाभ न पहुँचेगा। हमे फल खाने से मतलब है, इसलिए फलो के गुच्छे ही तोड लो।

पाचवें ने कहा—यह भी स्वार्थबुद्धि की बात है। फल खाना क्या तुम्ही जानते हो, दूसरे नही? अगर तुम्हारी ही तरह पहले आने वालो ने विचार किया होता, सब कच्चे-पक्के फल तोड़ लिए होते तो आज तुम्हे ये फल कहा से मिलते? इसलिए कच्चे आम रहने दो। पके-पके तोड लो।

छठे ने कहा—औरो से तुमने ठीक कहा है, पर आम का यह वृक्ष बडा है। इसमे पके फल बहुत अधिक है। हम लोग सभी फल नही खा सकेगे। फिर सब पके फल तोड़ने से क्या लाभ है? तुम लोग जितने फल खा सको, उतने ले लो। उससे अधिक लेने का तुम्हे क्या अधिकार है? आम का वृक्ष प्रकृति से ही इतना उदार है कि वह पके फल अपने ऊपर नही रखता सर्वसाधारण के उपभोग के लिए उन्हें त्याग देता है। सो तुम नीचे गिरे हुए पके

फलो से ही काम चला सकते हो। अधिक फल बिगाडने से क्या लाभ है ?

यहा छहो आदमियो के विचार आम खाने के होने पर भी छह प्रकार के विचार हुए । इसी प्रकार ससार के मनुष्य भी छह प्रकार के होते हैं । कई अपने आराम के लिए दूसरो की जड काट देते है और कई दूसरो को हानि न पहुँचाते हुए अपनी जीविका का निर्वाह कर लेते हैं । अपने थोडे से स्वार्थ के लिए महा आरम्भ करना और दूसरो को हानि पहुचाना कृष्ण लेश्या है । इसके पश्चात् ज्यो-ज्यों आरम्भ कम होगा, दूसरे की दया होगी, हृदय में उदारता होगी त्यो-त्यो लेश्या भी शुद्ध होती जाएगी । कृष्ण लेश्या से निकलने पर नील लेश्या, और नील लेश्या से निकलने पर कापोत लेश्या होती है। कपोत लेश्या से ऊ चे उठने पर तेजो (पीत) लेश्या, तेजो लेश्या से पद्म लेश्या और पद्म लेश्या से भी ऊपर शुक्ल लेश्या होती है । तेजो लेश्या से धार्मिकता आरम्भ होती है । इन लेश्याओं के भी अवान्तर भेद अनेक हैं, परन्तु मुख्य भेद यही है । लेश्याओ का वह वर्णन सुनकर आप अपनी कसोटी कीजिए । देखिए, आप किस लेश्या मे हैं और किस प्रकार शुद्धता बढाकर आत्म-शुद्धि प्राप्त करनी चाहिए ।



५१ : जीते जी पुनर्जन्म

एक साहसी और चतुर चोर ने एक बार राजा के महल मे प्रवेश किया। चोर के प्रवेश होते ही सयोगवश राजा जाग उठा। राजा को जागा देख चोर सिर से पैर तक काप उठा। उसने सोचा—पकड में आ गया तो मारा जाऊ गा। कही छिपने की जगह न देख वह सिर पर पैर रख कर भागा। राजा ने भी चोर को देख लिया था। राजा ने विचार किया कि मैं चोर को न पकड सका तो मेरी बड़ी बदनामी होगी। सिपाहियो को आवाज देने, बुलाने और समझाने का समय नही था। अतएव राजा ने स्वयं चोर का पीछा किया। आगे-आगे चोर और पीछे-पीछे राजा दौडा जा रहा था।

राजा को चोर का पीछा करते देख सिपाही भी दौडे। अपने पीछे राजा को और सिपाहियो को दौडते देख चोर की हिम्मत जाती रही। मगर पकड मे आते ही प्राणो से हाथ धोना पड़ेगा, इस विचार से वह रुक नही सका। कुछ और आगे भागा। मगर उसके पैरो ने जवाब दे दिया। इतने मे ही श्मशान आ गया। चोर ने सोचा—अब प्राण बचना कठिन है, फिर भी अन्त तक बचने का प्रयास तो करना ही चाहिए। अगर इस श्मशान मे मैं मुर्दे की तरह पडा रहू तो सम्भव है राजा मुझे मरा समझ कर छोड़

दे । बस, बचाव का एक ही उपाय है कि मुर्दे का स्वाग बना लू ।

चोर श्मशान मे जाकर पड गया । मृतक की भाति अपनी नाडियो को सकुचित करके उसने ऐसा दिखावा किया, मानो वह सचमुच ही मर गया हो । इतने मे राजा और सिपाही भी वहा जा पहुचे । चोर को जमीन पर पडा देख सिपाहियो ने कहा—महाराज, देखिए तो सही, चोर आपके डर से गिर पडा और मर गया है ।

राजा ने कहा—अच्छी तरह जाच करो । यह मरा नही होगा, ढोग कर रहा होगा ।

सिपाही चोर को इधर-उधर लुढकाने लगे, पर वह तो ठीक मुर्दे की तरह निश्चेष्ट ही बना रहा ।

आपत्ति मनुष्य को अपूर्व शिक्षा देती है और बहुत वार उन्नत भी वनाती है । राम को वनवास न करना पडा होता तो उन्हे कौन जानता ? भगवान महावीर ने आपत्तिया सहन न की होती तो उनका नाम कौन लेता ? कैसे उनकी उन्नति होती ?

राजा को विश्वास नही हुआ कि चोर वास्तव मे मर गया है । उसने सिपाहियो से कहा—अच्छी तरह जाच करो, कपट करके पडा होगा ।

सिपाहियो ने उसे मारना-पीटना शुरु किया तो चोर के शरीर मे से लहू वहने लगा । फिर भी उसने जरा भी चू-चा नही की, तनिक भी नही कराहा, चुपचाप पडा रहा ।

राजा ने कहा—है पक्का ! इतनी मार खाने पर भी चुपचाप पड़ा है ! मर जाने का ढोग करता है और हमारी आखो मे धूल झोकना चाहता है ! मर गया होता तो लहू कैसे निकलता ? मरे शरीर मे से लहू निकलता ही नही है।

इसके बाद राजा ने एक सिपाही को बुलाकर कहा—धीरे से उसके कान मे कह दो कि राजा ने तेरा अपराध क्षमा कर दिया है। ढोग करके क्यो वृथा मार खाता है ?

अपने अपराध को क्षमा करने की बात सुनते ही चोर उठ खडा हुआ और हाथ जोडकर राजा के सामने पहुचा। उस समय राजा अपने मन मे सोच रहा था—'यह चोर मेरे भय से मुर्दा बन गया तो मुझे साक्षात् मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए ?' इस प्रकार विचार करके राजा ने चोर से पूछा—तू मुर्दा सरीखा बनकर क्यो पडा था ?

चोर—अन्नदाता,आपके भय से ही मैंने ऐसा किया था।

राजा—इतनी मार खाने के बाद भी तू बोला क्यो नही ?

चोर—जब मैंने मुर्दा बन जाने का ढोग किया था तो कैसे बोलता ?

राजा—तब तो तू बड़ा भक्त मालूम होता है ?

चोर—महाराज, मै भक्त नही हू। मैंने आपके भय से ही मुर्दे का स्वाग बनाया था।

राजा—जैसे मेरे डर से तू जमीन पर पड गया था, वैसे संसार के भय से डरे और पूरा स्वाग बनावे तो तेरा कल्याण ही हो जाए !

चोर—दयानिधान, मैं ऐसी बातें नही जानता। ऐसा ज्ञान मुझे नही है, आपको ही है।

राजा—ज्ञान तो आत्मा मे बहुत है, पर उसे प्रकट करने के लिए जीवन नीतिमय और धर्मयुक्त होना चाहिए। मैंने तेरा यह अपराध क्षमा कर दिया है, मगर यह जानना चाहता हू कि अब तेरा क्या विचार है ? इस पापमय आजीविका का त्याग करना है या नही ?

चोर—इस प्रश्न की आवश्यकता ही नही रही महाराज, चोर के रूप में तो मैं तभी मर चुका, जब मैंने मुर्दे का स्वाग बनाया था। अब आपके सामने एक गरीब भलामानस खडा है। मैं रूखी-सूखी खाकर अपना गुजर कर लूंगा, पर अनीति का धन्धा नही करूंगा। आपने क्षमा-दण्ड देकर मेरा जीवन बदल दिया है। मैंने आज नया जन्म धारण किया है।

क्षमा, दया और सहानुभूति के कोमल शस्त्रो की मार गजब की होती है।

५२ : निरन्वय नाश

एक मनुष्य ने दूसरे मनुष्य पर अदालत मे दीवानी दावा किया। वादी और प्रतिवादी अदालत मे उपस्थित

हुए । वादी को प्रतिवादी से कुछ रकम लेनी थी, जो उसने कर्ज के रूप मे प्रतिवादी को दी थी । प्रतिवादी पहले तो टालमटूल करता रहा, कल दू गा, परसो दू गा, सुबह दूंगा आदि मगर उसने अन्त मे देने से इन्कार कर दिया । तब वादी को विवश होकर दावा करना पडा । जब दोनो अदालत में उपस्थित हुए और न्यायाधीश ने प्रतिवादी से पूछा—क्या तुम यह रकम देना स्वीकार करते हो ? तब वह बोला—वादी का दावा झूठा है । इसने मुझे कोई रकम नही दी और मैंने इससे कोई रकम नही ली है ।

प्रतिवादी के द्वारा उपस्थित किया हुआ लेख-पत्र न्यायाधीश के सामने था । उसने पूछा—इस कागज पर तुम्हारे हस्ताक्षर हैं । इसमे कर्ज लेना स्वीकार किया गया है । क्या यह झूठा है ?

प्रतिवादी—ससार के सभी पदार्थ नाशवान् हैं । क्षण-क्षण नष्ट होते जाते हैं । आत्मा भी नाशशील है । जो पहले क्षण में है, वह दूसरे क्षण मे नही रहता । ऐसी स्थिति से देने वाला और लेने वाला—दोनो ही अब नही रहे । जिसने दिया था, वह देते ही नष्ट हो गया और जिसने लिया था, वह लेते ही समाप्त हो चुका । अब मैं यह रकम क्यो चुकाऊ ?

न्यायाधीश ने सोचा—यह मनुष्य दार्शनिक मान्यताओ के बहाने दूसरे की रकम पचा लेना चाहता है । इसे सही शिक्षा मिलनी चाहिए । यह सोचकर उसने पूछा—तुम किस के मकान में रहते हो ?

प्रतिपादी—मेरा निजी मकान है ।

न्याया०—उसे कब बनवाया था ?

प्रतिवादी—लगभग दस वर्ष पहले ।

न्याया०—(वादी से) तुम इनके मकान पर अपना अधिकार कर लो । उस मकान का मालिक यह नही है । जिसने उसे बनवाया था, वह तो बनवाते ही नष्ट हो गया है । वह अब नही रहा । इसने दूसरे के कमान पर कब्जा कर रखा ।

प्रतिवादी यह सुनकर घबराया । उसने दीनता दिखलाते हुए कहा—हुजूर, ऐसा मत कीजिए । जो रकम इनकी देनी हैं, वह मैं अभी अदालत मे ही चुका देता हू ।

न्यायाधीश—ठीक है, अभी गिनकर दे दो ।

प्रतिवादी ने लाचार होकर सारी रकम चुकता कर दी । तब न्यायाधीश ने वादी से कहा—अब उस मकान पर कब्जा सरकार का रहेगा ।

प्रतिवादी भौंचक होकर रह गया । न्यायाधीश ने मुस्कराते हुए कहा—जिसने रकम चुकाई, वह दूसरा था । तुम दूसरे हो । आत्मा तो क्षण-क्षण मे बदलता रहता है न? इसलिए उस मकान को बनवाने वाले तुम नही हो, कोई भी जीवित नही है । इसलिए वह मकान सरकार का होगा । यही नही, तुम्हारी पत्नी और सन्तान छीन ली जायगी, क्योंकि तुम, जो इसी वक्त नये उत्पन्न हुए हो, उसके पति या पिता नही है ।

प्रतिवादी की अक्ल ठिकाने आ गई । उससे गिडगिडाते

हुए क्षमा मागी और प्रतिज्ञा की–अब किसी को दर्शन–शास्त्र के नाम पर ठगने की कोशिश नही करूंगा ।

आत्मा का निरन्वय नाश मान लिया जाय तो ससार का व्यवहार एक क्षण भी नही चल सकता ।

५३ : मां-बाप सावधान

एक विधवा बुढिया को अपना इकलौता लडका बहुत प्यारा था । अपने भविष्य की उससे बडी आशाए थी । वह समझती थी कि मेरे पति के वश में वही एकमात्र आशा की किरण है । विधवा का वह पुत्र बडा लाडला था । उस पर किसी का दबाव नही था, इस कारण वह स्वच्छन्द हो गया ।

एक दिन वह किसी दुकानदार के यहा पहुचा । दुकान–दार ऊंघ रहा था । मौका पाकर वह कुछ पैसे चुरा लाया । घर आकर उसने वे पैसे अपनी मा को दे दिये । मा पैसे देखकर बहुत राजी हुई और पूछने लगी—ये पैसे कहा से लाया है ? लड़के ने सच–सच बता दिया । मा ने कहा—ठीक किया, और उसे चोरी करने के इनाम स्वरूप मे कुछ बतासे दिये ।

लड़के की प्रसन्नता का पार न रहा । उसने मन में

सोचा—मा को मेरा वह काम पसन्द आया है। इसलिए तो मुझे उसने इनाम दिया है। धीरे-धीरे वह ज्यादा चोरी करने लगा। वह जैसे-जैसे बड़ा होता गया, तैसे-तैसे बडी चोरिया करने लगा।

पाप का घडा जब भर जाता है तो फूटे बिना नही रहता। इस कहावत के अनुसार वह लडका एक दिन चोरी करते पकडा गया। एक चोरी पकडी गई तो कई चोरियो का भेद खुल गया। राजा ने विचार किया—यह बचपन से ही चोरी करता आया है। इसने बहुत बार चोरी की है। चोरी करना इसकी आदत मे शामिल है और यही इसका धन्धा है। इसे फासी की सजा मिलनी चाहिए।

राजा ने फासी की सजा सुना दी। जल्लाद उसे फासी देने के लिए ले चले। तमाशा देखने के लिए बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। लडका सोचने लगा—मैं पहले चोर नही था। मेरे कुल मे चोरी का धन्धा नही होता था। फिर यह आदत मुझमे कहा से आ गई? यह सोचते-सोचते अपने जीवन की पिछली सारी घटनाए उसकी आखो के आगे नाचने लगी। उसे याद आया—पहले-पहल मैंने दुकानदार के पैसे चुराये थे और मा ने मुझे बतासे इनाम दिये थे। उस इनाम ने ही मुझे चोर बना दिया। मेरी मा ने अगर मेरा उत्साह न बढाया होता और चोरी करने के कारण मेरे गाल पर तमाचा जड दिया होता तो आज मुझे फासी के तख्ते पर चढने की नौबत क्यो आती?

फासी देने से पहले नियमानुसार उससे पूछा गया—

'कुछ कहना चाहते हो ? किसी से मिलने की इच्छा है ?'
चोर ने कहा—'मैं अपनी मा से मिलना चाहता हूं।'

सिपाही उसकी मा के पास गया। सूचना दी–तुम्हारे बेटे को फासी दी जा रही है। अन्तिम समय मे वह तुमसे मिलना चाहता है। मा सिपाही के पीछे–पीछे चली। वह चिल्लाती जा रही थी—'हाय बेटा ! मैंने तुझे कितना सम–झाया कि चोरी मत कर। परन्तु तूने एक न मानी !' वह जब लडके के पास पहुची, तब भी यह कह कर रोने–चीखने लगी।

उधर लडके ने सोचा—मा जले पर नमक छिडक रही है। इसी ने मुझे चोर बनाया है और यही अब ऐसा कहती है ? पश्चात्ताप और क्रोध से वह पागल हो उठा। क्रोध ही क्रोध में वह मा के पास पहुचा। उस समय उसके पास कोई शस्त्र नही था अतएव अपने दातो से ही उसने मा की नाक काट ली। मा चिल्लाने लगी—हाय ! मार डाला ! कैसा पापी लडका है कि आप फासी पर लटकने जा रहा है और ऐसे समय भी मुझे कष्ट दे रहा है ! इसके गुण फासी पर चढने लायक ही हैं।

वहा जो राजकर्मचारी उपस्थित थे, यह दृश्य देखकर हैरान हो गये। उन्होने चोर से पूछा—तूने अपनी माता की नाक क्यो काटी ? चोर ने कहा—'बस, रहने दीजिए। आप कारण न पूछिए। अब मेरी कोई इच्छा नही रह गई। फासी देना हो तो दे दीजिए।'

राजकर्मचारी ने सोचा—इस घटना के पीछे कोई बड़ा

रहस्य अवश्य होना चाहिए। उन्होने उसे फिर राजा के सामने पेश किया और सारा हाल सुनाया। तब राजा ने चोर से पूछा-ठीक-ठीक कहो,'तुमने अपनी माता की नाक क्यो काटी?

पहले के लोग राजा और परमात्मा को समान समझते थे। इस कारण वे प्राय राजा के सामने झूठ नही बोला करते थे। मगर आज तो सबसे अधिक झूठ कचहरियो मे ही बोला जाता है।

चोर ने राजा से कहा—'महाराज, मैं चोर नही था, मेरे बाप-दादे भी चोर नही थे। अपने पुरखाओ से मुझे चोरी करने के सस्कार नही मिले। फिर भी मैं चोर बन गया और आज फासी के तख्ते पर चढाया जा रहा हू! इसका कारण यह है कि छुटपन मे नासमझी के कारण मैं एक दिन कुछ पैसे चुरा लाया था। पैसे मैंने अपनी मा को दिये। मा ने मुझे चोरी करने के लिए दण्ड देने के बदले इनाम दिया। इसी कारण मैं धीरे-धीरे चोर बन गया। मैंने सोचा—जब चोरी करने के अपराध मे मुझे फासी मिल रही है तो चोर बनाने के अपराध मे मेरी माता को भी दण्ड मिलना चाहिए। दूसरी माताओ को इससे शिक्षा मिलेगी और वे अपने बेटो को चोर नही बनाएगी।'

चोर की बात सुनकर राजा ने सोचा—इसे अपने किये पर पश्चात्ताप है। चोरी के दुष्परिणाम का इसे भान हो हो गया। यह अब सुधर गया है और दण्ड देने का प्रयोजन अपराधी का सुधार करना ही है। ऐसी हालत मे इसे प्राण-दण्ड देने की आवश्यकता नही है। फिर राजा ने उससे कहा—'मैं समझता हू कि तुमने चोरी की बुराई समझ ली

है और आगे कभी चोरी नही करोगे। तुम्हें अपने अपराध का गहरा पश्चात्ताप हो रहा है। अत मैं तुम्हे फासी की सजा से मुक्त करता हूं।

माता-पिता, सावधान! आप कभी अपनी सन्तान के किसी दुष्कर्म का, किसी बुरी आदत का समर्थन तो नहीं करते, उपेक्षा तो नही करते?

५४ : विवेकहीनता

जब मनुष्य के निज का विवेक न हो तो उसे दूसरे से विवेक सीखना चाहिए। ऐसा करते-करते वह एक दिन स्वय विवेकवान् बन जाता है, कम से कम हानि से तो बच ही जाता। पर बहुत बार ऐसा होता है कि मनुष्य स्वयं अविवेकी होते हुए भी अपने को अविवेकी नही मानता। यह अविवेक की पराकाष्ठा है। ऐसी स्थिति में वह ऐसे काम कर बैठता है, जिससे भयानक क्षति उठानी पड़ती है।

एक किसान था। उसके प्रान्त में जल-वर्षा नही हुई तो वह किसी दूसरे प्रान्त में चला गया। उसे मेहनती देखकर किसी किसान ने अपनी लडकी से उसका विवाह कर दिया। कुछ दिन बाद वह किसान अपने घर वापिस लौटा तो वर्षा हो चुकी थी। उसने बाजरे की खेती की।

खेत हरा-भरा हो गया। किसान अपनी स्त्री को लेने के लिए ससुराल गया।

ससुराल वालो ने उसकी मेहमानी करने के लिए खीर और मालपुवे बनवाये। उस किसान ने कभी मालपुवे नहीं खाये थे। वह असमंजस में पड़ा कि इन्हे किस प्रकार खाया जाय ? सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया—टुकड़े-टुकडे करके खाने से मजा जाता रहेगा। पूरा मालपुवा उस ने मुह में डाला और किसी प्रकार खाने लगा। पास मे उसके साले वगैरह जो लोग बैठे थे, वे हसने लगे।

अपने जामाता की मूर्खता देखकर सास ने दो उगलिया दिखाकर इशारा किया कि कम से कम दो टुकडे करके तो खाओ। पर मूर्ख किसान ने इस इशारे को उलटा समझा। उसने समझा—एक-एक खाने से नही, दो एक साथ खाने से ज्यादा मजा आता है। अब उसने दो-दो खाने शुरु किये। लोगो ने समझ लिया—यह एकदम गवार है। आखिर उसे स्पष्ट करके समझाया कि टुकडे करके खाना चाहिए।

किसान को मालपुवे बडे स्वादिष्ट लगे। जब वह अपनी स्त्री को लेकर घर लौट रहा था तो रास्ते मे निश्चय करने लगा के घर पहुंच कर मालपुवा बनवाऊगा। मालपुवा बनाने की विधि वह ससुराल मे सुन चुका था। उनके लिए गेहू की आवश्यकता थी, इसलिए उसने बाजरा की जगह गेहूं की खेती करने का निश्चय किया। जब वह घर पहुचा तो बाजरा पकने मे कुछ ही दिनो की देरी थी। मगर वह मालपुवा खाने के लिए गेहू बोने को उतावला हो रहा था। उसने अपने पिता से गेहू बोने के लिए कहा। पिता बोला—

अपने खेतो मे बाजरे की ही खेती अच्छी होती है। यहा के कुंओ मे इतना पानी भी नही कि गेहू सीचे जा सकें।

मगर मालपुवो के लिए पागल बने उसने कहा—अजी नही, बहुत दिनो तक बाजरे की खेती की, मगर कुछ भी आनन्द नही आया। सारी मेहनत बेकार गई। अब कुछ तरक्की करनी चाहिए।

पिता बेचारा चुप हो गया।

युवक किसान ने उसी समय बाजरे के खेत को खुदवा डाला और उसमे गेहू बो दिये। पर कुए मे इतना पानी कहा रखा था ? न बाजरा हाथ आया, न गेहू ही। सारी मेहनत बेकार हुई, खाने के लाले पड गए।

बिना सोचे-समझे काम करने वालो की ऐसी ही स्थिति होती है।

५५ : चमार गुरु

ससार के झगडो में न पड़कर, ईश्वर से याचना करो तो ऐसी चीज की याचना करो कि जिससे फिर कभी, किसी से, किसी भी प्रकार की याचना ही न करनी पडे। एक दूसरे की दी हुई चीज कैसा अनर्थ करती है, इस सम्बन्ध मे एक दृष्टान्त लीजिए।

एक चमार था। वह जूते बनाया करता था। जूते बनाते-बनाते ही वह यह भजन गाया करता—

'तोय मागी माँगिवो न मगतो कहायो।'

अर्थात्—हे प्रभो! तुझसे मागने वाला मगता नही है, क्योकि तुझसे मागने पर मगतापन ही मिट जाता है।

यह भजन गाता-गाता चमार मस्त हो जाता। जिस जगह बैठकर चमार जूते सिया करता था, उसके सामने ही एक सट्टे-बाज सेठ रहता था। चमार का भजन सुनकर सेठ की नीद खुल-खुल जाती। वह सोचता—यह चमार कितना मस्त है!

एक दिन सेठ ऐसा सोच ही रहा था कि उसी समय उसे तार मिला—रुई का भाव घट गया है। सेठ यह समाचार पाकर सन्ताप करने लगा। सोचा—कल ही तो माल खरीदा था और आज इतना नुकसान हो गया? इसके बाद उसे किसी दूसरे सौदे मे भी घाटा लग गया। व्यापारी के लिये घाटे की मार बुरी होती है।

सेठ इतनी चिन्ता मे पड गया कि करवटे बदलते ही उसकी रात बीतती। उसका मुह सूखता चला जाता। कभी सरकार को, कभी प्रजा को और कभी गाधी को दोष देने लगता। इस प्रकार दस-पाच दिनो मे ही सेठ की शारीरिक दशा बिगड गई। वैद्य दवा करने आये, मगर चिन्ता की दवा उनके पास नही थी। जैसे-जैसे बाजार गिरता जाता, सेठ का दुख बढता और स्वास्थ्य गिरता जाता था। सेठ को सारा ससार सूना दिखाई देने लगा। उसकी दृष्टि मे

धर्म या ईश्वर कोई नहीं रहा। पैसे जाते ही धर्म और ईश्वर पर से विश्वास भी चला गया। एक दिन चमार नें फिर गया—

सुर नर मुनि असुर नाम साहब तो घनेरे।

चमार के गायें हुए भजन को सुनकर सेठ को कुछ सान्त्वना मिली। वह सोचने लगा—इस चमार के पास तो कुछ भी नही है और इतना घाटा होने पर भी मेरे पास लाखो का धन मौजूद है। यह कुछ न होने पर भी इतना मस्त रहता है और लाखो की सम्पत्ति होने पर भी मैं रोता हू!

चमार ने सेठ के हृदय मे एक कुतूहल पैदा कर दिया। उसने चमार को अपने पास बुलवाया और पूछा—क्या गाते रहते हो चौधरी?

चमार बोला—सेठजी, मेरे काम मे हरकत होती है। काम करने दीजिए।

सेठ—दो घडी बैठो सही।

चमार—दो घड़ी मे एक जूता बनता है।

धनिक लोग घण्टो-पहरो ऐश-आराम और साज-सिंगार मे व्यतीत कर देते हैं। उन्हे जूतो पर पालिश करवाने और बाल-सवारने के लिए ही घण्टो समय चाहिये। वे आलस्य मे अपना समय व्यतीत करते है। चमार जूता बनाता है, सो कहते हैं कि अधर्म करता है सौर स्वय गप्पे मार कर क्या धर्म करते हैं? चमार जूता बना कर अपना पेट भरता है

और साथ ही दूसरों के पैरो को आराम पहुंचाता है। पर गप्पो से किसका पेट भरता है ? किसे सुख पहुचता है ?

सेठ ने चमार से कहा—तुम जो भजन गाया करते हो, उसे एक बार सुना दो।

चमार—भजन मैं वही से सुनाऊगा।

सेठ—भजन तो मैंने कई बार सुना है, यह बताओ कि उसका अर्थ क्या है ?

चमार—उस भजन का अर्थ इतना ही है कि ईश्वर मेरा दाता है। वही मेरा दुःख हरण करने वाला है। दूसरा कोई दुःख दूर नही कर सकता।

चमार की बात सुनकर सेठ सोचने लगा—इसकी भावना गजब की है। मेरे पास अब भी लाखो की सम्पत्ति है। फिर भी मैं ईश्वर को कोसता हूं। और एक यह है जो रोज मजदूरी करके खाता है, फिर भी ईश्वर पर अखन्ड विश्वास रखता है। यह चमार क्या मुझसे अच्छा नही है ?

बात सेठ की समझ मे आ गई। सेठ ने चमार की दवा खाई। उसने अपने लम्बे-चौडे सट्टे के व्यापार को समेट लिया और ऐसा धन्धा करने लगा, जिससे खुद को भी शान्ति मिले और दूसरो को भी। थोडे ही दिनो मे सेठ भी मस्त बन गया। उसे वैद्यो और डाक्टरो की दवा की जरूरत नही रही।

सेठ चमार को अपना उपकारी मानने लगा। वह

सोचा करता—जिसने मुझे ईश्वर पर भरोसा करना सिखलाया और जिसने मुझे ऐसी दवाई दी है, जैसी कि वैद्य और डाक्टर हजारो रुपया लेकर भी नही दे सकते थे, वह चमार मेरा बडा उपकारी है ।

लोग ताकत के लिए दवा खाते हैं, मगर अनुभवी लोगों का कहना है कि जितने आदमी रोग से नही मरते, उतने दवा से मरते हैं ।

सेठ ने सोचा—इस चमार का उपकार मानना उचित है । अतएव उसने चमार को बुलवा कर पचास रुपये के नोट उसके सामने रख दिये । उससे कहा—मेरे ऊपर तुम्हारा बडा उपकार है, इसलिए यह नोट ले लो । चमार ने प्रथम तो बहुत नाही की, मगर सेठ के बहुत आग्रह करने पर उसने नोट ले लिए ।

नोट लेकर चमार अपनी दूकान पर आया । सोचने लगा—इन नोटो को कहा रखू ? इस चिन्ता से उसने जल्दी दूकान वन्द करदी और घर चला गया । उसे एकदम पचास रुपये मिल गये ! भला उसे क्या कमी रह गई? घर आकर भी वह इसी विचार मे पडा रहा कि इन्हे रखू कहा ? कही ऐसा न हो कि चोर ले जावें या बच्चे ही फाड़ डालें? आखिर चमडे के टुकडे रखने की एक टूटी-सी पेटी मे उसने नोट रख दिये । इससे अधिक सुरक्षित जगह उसके पास थी ही नही । रात को वह सोया तो, मगर उसे यही चिन्ता वनी रही कि कही चूहे नोटो को काट न खाए ! इस तरह चिन्ता करते-करते ही उसकी सारी रात व्यतीत हुई ।

सवेरा हुआ । चमार सोचने लगा—रात में नींद नहीं आई और ईश्वर के भजन मे भी मन नही लगता । दूकान जाने को भी चित्त नही चाहता । यह सब इन नोटो की ही करामात है ! जब तक इन नोटों को मैं अपने घर से निकाल न दूंगा, मुझे चैन नही मिलने की । नोट हैं तब भी हाय-हाय कराते हैं और कही नष्ट हो गए, तब भी हाय-हाय कराएंगे । अतएव इन्हे सेठजी को सौंप देने में ही मेरा कल्याण है ।

वह नोट लेकर सेठ की दूकान पर पहुंचा । उसने नोट सेठ के सामने रख दिये और कहा—अपनी चीज आप ही सभालिए ।

सेठ ने कहा—यह नोट वापिस लेने के लिए नहीं दिये है । तुमने मेरा उपकार किया है, इसलिए यह पुरस्कार में दिये है ।

चमार—आपका पुरस्कार मुझे नही चाहिए । इसे आप ही सभालिए । मुझे तो भोजन मे ही आनन्द मिलता है ।

इसके वाद चमार ने रात वाली समस्त घटना सेठ को सुनाई और अन्त मे कहा—उपकार के वदले यह न देकर हम दोनो ही भगवान् के भजन मे मस्त रहें इसी मे आनद है ।

आखिर चमार ने नोट सेठ की ओर सरका दिये और आप उठ कर चल दिया । उसे ऐसा लगा, मानो सिर पर लदा हुआ भारी वोझ उतर गया है । वह हल्का हो गया और अपनी धुन में मस्त रहने लगा ।

चमार की इस निस्पृहता का सेठ पर बहुत प्रभाव पडा। वह सोचने लगा—इतनी सम्पत्ति होने पर भी मुझे सन्तोष नही है, और इस चमार को देखो कि न कुछ मे भी कितना मस्त है! चमार ने प्रत्यक्ष बतला दिया है कि सुख का असली कारण धन नही, चित्त का संतोष है। मैं इतने दिनो तक व्यर्थ ही चक्कर मे पडा रहा।

कुछ दिनो बाद चमार बीमार पड गया। बीमारी मे भी वह उसी भजन को गाया करता और कहता—प्रभो! अब तो बस तू ही तू है। पहले तो मुझे काम भी करना पडता था, परन्तु अब तो वह भी छूट गया है। मैं यही चाहता हूं कि इस बीमारी मे भी मुझे किसी के आगे दीनता न दिखानी पडे। तेरे प्रति मेरी श्रद्धा अखण्ड और अटल बनी रहे।

चमार की बीमारी का हाल सेठ को मालूम हुआ। सेठ ने जाकर उसे देखा तो उस बीमारी मे भी वह उसी प्रकार गा रहा था! घर मे खाने को नही है, फिर भी वह मस्त है और किसी के आगे हाथ नही पसारना चाहता। ओह! इसकी महानता के आगे मैं कितना तुच्छ हू! सब कुछ होते हुए भी मैं इस दैवी सम्पदा के बिना दरिद्र हू!

सेठ ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि उसके परिवार को किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये। चमार ने ऐसा करने से सेठ को बहुत रोका, पर सेठ ने कहा—मैं तुम्हे भिखारी समझ कर दान नहीं दे रहा हू। यह तो तुम्हारे उपकार का नगण्य उत्तर है। तुमने मुझे धर्म पर स्थिर किया है।

चमार के चित्त में लोभ नहीं था, इसी से वह भक्ति मे लगा रहता था। कहा भी है—

कामी कपटी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई शूरमा, जाति वर्ण कुल खोय॥

भक्ति वही वीर करेगा, जिसने वर्ण और जाति का अभिमान भी त्याग दिया हो। हरिकेशी मुनि से कौन प्रेम नही करता?

चमार निरोग भी हो गया और धीरे-धीरे उसकी स्थिति भी सुधर गई। सेठ उसे अपना गुरु समझने लगा और वह भी भक्ति के मार्ग पर आ गया।

५६ : परमात्म-प्रीति

जैसी दृष्टि हराम पै, तैसी हरि पै होय।
चला जाय वैकुण्ठ मे, पल्ला न पकडे कोय॥

ससार के पदार्थों मे, नीच कर्मो मे जैसी प्रीति है, वैसी प्रीति अगर परमात्मा मे हो जाय तो ईश्वर प्राप्ति मे देरी ही न लगे। हराम से प्रीति छोडकर हरि से प्रीति करो तो बेडा पार है। बहुत-से लोग ढोग के लिए ईश्वर प्रेम का दिखावा करते हैं। पर जो सच्ची प्रीति करते हैं उन्हे ईश्वर मिलता है और जो ढोग करते है उन्हे ढोग ही मिलता

है। ईश्वर की प्रीति कैसी हो, यह समझने के लिए एक स्थूल दृष्टान्त लो —

एक महात्मा नगर के शहरपनाह के किनारे ध्यान में खडे थे। उस नगरी की एक वेश्या सजधज कर नगर के भीतर रहने वाले अपने किसी प्रेमी से मिलने निकली थी मगर नगर का फाटक बन्द हो चुका था, भीतर जाने का दूसरा मार्ग नही था। उसने इधर-उधर देखा तो एक ऊची सी चीज खडी हुई उसे दिखाई दी। प्रेमी से मिलने की आतुरता में उसने यही समझा कि यह कोई ठूठ खड़ा है। उसने उसके ऊपर पैर रखकर ज्यो ही शहरपनाह चढना चाहा, त्यो ही महात्मा क्रोधित हो उठे। ध्यान खोलकर उन्होने कह—दुष्टे ! तुझे दीखता नही कि मैं मनुष्य हू। तू इतनी अधी हो रही है !

महात्मा की बात सुनकर वेश्या सहम गई। उसने मन ही मन कहा—आतुरता मे मैंने इन महात्मा को ठूठ ही समझ लिया था ! वह ऊपर से नीचे गिर पड़ी। महात्मा से बोली—क्षमा कीजिए महाराज ! मैंने समझा था कि यह कोई ठूठ खड़ा है।

महात्मा—तुझे इतना गर्व है कि तू मनुष्य और ठूठ को एक ही समझती है ! मुझे इतना क्रोध है कि चाहू तो अभी तुझे भस्म कर दू !

वेश्या ने महात्मा को सन्तोष देना उचित समझा। वह बोली—महाराज. मुझसे तो भूल हुई ही, मगर आप वहा क्या करते थे ?

महात्मा—देखती नही, हम साधु हैं। हमे और क्या काम है, परमात्मा का ध्यान लगा रहे थे।

वेश्या—महाराज, ढिठाई क्षमा हो। मैं पूछना चाहती हू कि आपका परमात्मा मेरे प्रेमी से बडा है या छोटा ?

महात्मा—परमात्मा तेरे प्रेमी से क्या, सारे ससार से बडा है।

वेश्या—मैं तो परमात्मा से अपने प्रेमी को बडा समझती हू।

महात्मा—क्यो ? कैसे समझती है ?

वेश्या—मैं अपने प्रेमी की धुन मे ऐसी मस्त थी कि आपका होना मुझे मालूम नही हुआ, पर आप परमात्मा के ध्यान मे थे, फिर भी आपको मेरा होना मालूम हो गया। अब आप ही सोचिये की आपका परमात्मा बडा है या मेरा प्रेमी ? अगर आपका परमात्मा बडा था और आप उसकी धुन मे लगे थे तो लगे रहते। इस झमेले मे क्यो पडे ?

वेश्या की बात सुनकर महात्मा विचार मे डूब गए। सोचने लगे—वास्तव मे वेश्या ठीक कह रही है। अगर इस के प्रेमी से मेरा परमात्मा बडा है तो उसकी धुन भी बड़ी होनी चाहिए और उस धुन मे यह पता क्यो लगना चाहिए कि शरीर पर कौन चढता और कौन उतरता है।

आखिर महात्मा ने वेश्या से कहा—तुम ठीक कहती हो। वास्तव मे मेरा ध्यान पूरी तरह परमात्मा मे नही था। जैसा तेरा ध्यान तेरे प्रेमी मे है, वैसे ही मेरा ध्यान

परमात्मा मे लग जाय तो मैं तुझे अपना गुरु मानू गा । हे प्रभो ! यह वेश्या जैसे अपने प्रेमी को तन्मय दृष्टि से देखती है, वैसी ही दृष्टि मेरी भी तुझे देखने में हो जाय ।

तात्पर्य यह है कि जैसा प्रेम दुनिया के पदार्थों के प्रति है, वैसा ही प्रेम अगर ईश्वर के प्रति हो जाय तो सिद्धि मिलने मे देर न लगे । सासारिक प्रेम को, वैकारिक प्रेम को, ईश्वर की ओर मोड लेना ही मुक्ति का मार्ग है । इसी को साधना कहते हैं ।

५७ : लक्ष्मी

एक सेठ वडे धनवान् और जितने धनवान् उतने ही उदार और जितने उदार, उतने ही दानी तथा निरभिमानी थे । रात्रि के समय वह सो रहे थे । पिछली रात्रि के समय एक देवी ने आकर उनसे कहा—सेठ, सोते हो या जागते हो ?

सेठ ने पूछा—कौन है ?

देवी ने उत्तर दिया—मैं हू तुम्हारे यहा की लक्ष्मी ।

सेठ—क्यो, क्या कहना है ?

लक्ष्मी—मैं यह कहने आई हूं कि अब तुम्हारे घर से जाऊ गी ।

सेठ—मेरे यहा तुम सात पीढियो से रहती हो, अब क्यो जा रही हो ? कुछ कारण बताओगी ?

लक्ष्मी—एक घर मे रहते-रहते ऊब गई हू । अब कही दूसरे घर जाऊ गी ।

सेठ—अच्छी बात है । जाती हो तो मैं नाही नही करता, परन्तु तीन दिन और ठहर जाओ ।

लक्ष्मी ने तीन दिन और ठहरना स्वीकार किया । सेठ ने विचार किया—आखिर यह लक्ष्मी रहेगी तो नही, फिर इसके द्वारा मैं कुछ लाभ क्यो न प्राप्त कर लू ? यह विचार कर सेठ ने इन तीन दिनो मे घर मे जितनी सम्पत्ति थी, सब जीवरक्षा, परोपकार आदि मे खर्च करके, अपना सब वैभव, घर-द्वार आदि दान कर दिया । अपने घर की सब महिलाओ को अपने-अपने पीहर जाने की सलाह दी । पुत्रो से कह दिया—तुम परदेश या जहा सुभीता और निर्वाह देखो, वहा चले जाओ ।

सेठ ने लक्ष्मी से वार्तालाप का वृत्तान्त सुनाकर कहा—मैंने तीन दिन के लिए उसे रोका है । तीन दिन के पश्चात् वह निश्चित रूप से जाएगी । इसलिए मैं जो कुछ कर रहा हूं, उसमे दु:ख न मानकर आनन्द मानो । जब समय पल-टेगा तब फिर हम सब लोग इकट्ठे हो जाएगे ।

सब अपने-अपने ठिकाने चले गए । सेठ ने अपना सभी कुछ लुटा दिया । तीसरे दिन, पिछली रात के समय लक्ष्मी फिर आई और कहने लगी—'अब मैं जाती हू ।'

सेठ ने उत्तर दिया—मुझे जो कुछ करना था, कर चुका। अब तुम भले जाओ।

उधर लक्ष्मी गई, इधर सेठ ने सन्तोष के साथ विचार किया—जो भाग्य मे होगा, करेंगे।

अपने सर्वस्व का दान करने से सारे नगर मे सेठ की कीर्त्ति फैल गई थी। वह जिधर जाता, उधर ही लोग उसका आदर सम्मान करते और 'सेठजी' कहकर पुकारते। परन्तु वह कहता—मैं सेठ नही रहा। मै अब गरीव हू, अकिंचन हू। मगर लोग यह सुनकर उसकी और अधिक इज्जत करते थे।

दो-तीन दिन बीते कि लक्ष्मी फिर आई। उस समय सेठ निश्चित भाव से किसी धर्मशाला में सो रहा था। पिछली रात के समय सेठ को आवाज देकर कहा—सेठ, जागते हो या सोते हो? सेठ ने कहा—जागता हू, कौन है?

लक्ष्मी—यह तो मैं लक्ष्मी हू।

सेठ—कहो, कैसे आई?

लक्ष्मी—मैं फिर तुम्हारे घर आती हू?

सेठ—तुम्हे जाने के लिए किसने कहा था? जो इस प्रकार बिना कारण चली जाय, उसे आना ही क्यो चाहिए? तुम सात पीढियो से मेरे यहा रहती थी, फिर भी चले जाने में झिझक नही हुई? अब भी क्या भरोसा है? जिसके स्वभाव मे ऐसी चपलता है उसे रखने से क्या लाभ है? देवी, अपने लिए और कोई ठिकाना खोजो। मैं इसी हालत में मजे मे हू।

लक्ष्मी—मुझसे भूल हुई, परन्तु अब मैं तुम्हारे यहा ही रहूगी ।

सेठ—अच्छा, यह तो बताओ कि इतने दिन कहा रही और लौट कर मेरे पास क्यो आई हो ?

लक्ष्मी—मैं पहले राजा के यहा गई। वहा भण्डार भरे थे पर मुझे सन्तोप नही हुआ । वह अन्याय का पैसा था। मैंने विचार किया—अन्याय के इस पैसे मे रहने से मेरी कद्र घट जाएगी । तव वहा मे चलकर सेठ-साहूकारो के यहा गई । मगर तुम्हारे सरीखा धर्मात्मा कोई नही मिला। इस कारण मैं फिर तुम्हारे पास आई हू ।

सेठ—आई तो अच्छी वात, मगर अब तो मेरे पास घर भी नही है। तुम्हे रखू गा कहा ?

लक्ष्मी—इसकी चिन्ता न करो । मैं जो उपाय वताऊं सो करो । तुम सुवह जगल जाते हो न ? लौटते समय तुम्हे एक साधु मिलेगा । उस साधु को आदर के साथ अपने यहा ले आना और खीर या जो भी कुछ हो, खिला कर एक डण्डा मारना । डण्डा मारते ही वह सोने का पुरुप बन जायगा । उस पुरुप का सिर मात्र वाकी रख कर सारा शरीर नित्य काट लेना और फिर उसे कपडे से ढक देना । वह जैसे का तैसा हो जायगा ।

सेठ—ठीक है, पर एक वात सुन लो । तुम आती हो, यह हर्ष की वात है, मगर तुम्हे जाने की इच्छा हो तो कह कर जाना और कहना भी सात दिन पहले । तुम्हे यह बात स्वीकार हो तो मैं तुम्हारे आने का स्वागत करूंगा ।

लक्ष्मी ने सेठ की यह बात स्वीकार की और अपने स्थान को चली गई।

जो मनुष्य धर्मनिष्ठा रखता है, उसे किसी भी अवस्था मे दु ख नही रहता । और ज्यो-ज्यो वस्तु पर आसक्ति की जाती है, त्यो-त्यो वह दूर भागती है। अगर इस हालत मे मध्यस्थ भाव रखा जाय तो गई हुई वस्तु भी मिल जाती है। कदाचित् न मिले तो भी उसके जाने की पीडा नही होती।

सवेरे सेठ को जगल की ओर से आता हुआ एक साधु मिला । सेठ उसे सत्कारपूर्वक अपने यहा ले आया । मित्र के यहा से लाकर उसे भोजन करा चुकने पर ज्यो ही एक लकड़ी मारी कि वावाजी स्वर्ण-पुरुष बन गए । सेठजी को सन्तोष हुआ । उन्होने पैर की तरफ से सोना काट–काट कर घर आदि तैयार करवाए । अपने सब कुटुम्बी–जनो को वुलवा लिया और पहले से भी अधिक आनन्द के साथ रहने लगा ।

इस सेठजी के पडोस मे एक और सेठ रहता था । वह था तो मालदार, मगर उसकी प्रकृति दुनिया से न्यारी थी । 'चमडी जाय पर दमडी न जाय', यह उसकी जीवन–नीति का मूल–मन्त्र था । वह कभी एक पाई भी दान न देता था ।

पूर्वोक्त सेठ और कजूस सेठ की पत्नियो मे मित्रता थी । कजूस सेठ की पत्नी ने एक दिन दानी सेठ की पत्नी से पूछा—तुम्हारे पति ने सब कुछ दे दिया था, फिर एक दम इतना ठाठ कैसे हो गया ? किस उपाय से इतना धन

वरस पड़ा है ? वह उपाय हमें भी वतलाओ न ? कही चोरी करके तो नही लाये हैं ? नही तो उसके साथ तुम्हे और तुम्हारे लड़को को भी भुगतना पडेगा ? तुम्हे न मालूम हो तो सेठजी से पूछ लेना ?

दानी सेठ की पत्नी ने कहा—वात तो ठीक है, पूछूगी । और उसने घर आकर पति से पूछा—यह धन कहा से आ गया ? पहले तो सेठ ने टालमटूल की । उसने सोचा—स्त्री को गुप्त भेद नही वताना चाहिए, क्योकि स्त्रियो में प्राय विवेक नही होता । वे स्वभाव की भोली होती हैं । दूसरो की वातो मे आकर जल्दी भेद खोल देती है ।

सेठ को टालते देख वह वोली—मै समझ गई । कही से चोरी करके लाये हो, इसलिए तो वतलाते नही । पर जव तक न वतलाओगे, मैं अन्न-जल ग्रहरण नही करूगी ।

सेठानी के सत्याग्रह के सामने सेठजी को झुकना पडा । उन्होने वावा का मिलना, उसे भोजन कराना, डण्डा मारना और उसका स्वर्ण-पुरुष वन जाना आदि वृत्तान्त कह दिया । सेठानी प्रसन्न हुई और जव अपनी सखी से मिली तो उसने यह वृत्तान्त उसे वतला दिया ।

कंजूस की सेठानी पहले तो अचरज मे पड गई और फिर लोभ मे आ गई । उसने सोचा—धनी वनने का कितना सरल और सुन्दर उपाय है । उसने पति से सव हाल कहा और साधु को ले आने की भी सिफारिश की ।

सेठ लोभी तो था ही, ऊपर से पत्नी का दवाव भी पडा । वह सुवह उठा और जगल की ओर से आने वाले

एक साधु को ले आया। उसे बडे प्रेम से उत्तम भोजन कराया और उसके बाद पूरी ताकत से एक लट्ठ दे मारा। परन्तु सेठ का दुर्भाग्य समझो कि साधु सोने का पुरुष नही बना। यही नही, वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

सेठ ने सोचा—शायद मेरा लट्ठ धीरे लगा है, इसी कारण यह सोने का नही बना। अब की वार उसने सारी ताकत लगाकर लट्ठ लगाया। बाबाजी ने और चिल्लाना शुरु किया। मगर सेठ लोभ मे पागल हो गया था। उसने आगा-पीछा कुछ नही सोचा और जब तक बाबाजी के तन मे प्राण रहे, वह लट्ठ पर लट्ठ लगाता ही रहा! अन्त में बाबाजी चल बसे।

बाबाजी की चिल्लाहट सुनकर बहुत-से लोग सेठ के घर के सामने इकट्ठे हो गये। उन्होने सेठ को पकड़ा और राजा के पास ले गए।

राजा ने सेठ को बाबाजी की हत्या करने के अपराध मे समुचित दण्ड दिया।

तात्पर्य यह है कि उस उदार सेठ ने तो दान देकर, अपना स्वंस्व लुटा कर स्वर्ण-पुरुप बनाया था, मगर कजूस सेठ दान दिये बिना ही स्वर्ण-पुरुप बनाने बैठा तो उसकी दुर्गति हुई! जीवन मे उदारता, नीति, ईमानदारी और सम-भाव होता है, तो किसी भी अवस्था में मनुष्य सुखी रह सकता है। ऐसा जीवन बिताने वाले को लक्ष्मी विना बुलाये प्राप्त होती है।



५६ : हठ

एक मनुष्य काशी गया । जव वह लौटकर आया तो अपनी मा से कहने लगा—मैंने काशी के सब पण्डितो को हरा दिया ।

मा ने पूछा—कितने पडित थे ?

उसने कहा—करीब ५०० होगे

मा—कैसे विद्वान् थे ?

बेटा—वडे-वडे विद्वान् थे, ऐसे कि कुछ न पूछो बात !

मा—परन्तु तू पढा तो है नही । उन्हे कैसे जीत लिया?

वेटा—मै पढा नही तो क्या हुआ ? मुझे जीतने की कला तो पूरी आती है ।

मां—कैसे जीता ?

वेटा—वे सब कुछ-कुछ बोलते रहे, परन्तु मैं यही कहता रहा कि तुम झूठे हो और मै सच्चा हूं ।

इस प्रकार वह काशी मे जीत आया । मूर्ख मनुष्य दूसरो की सुनता नही, समझता नही और अपनी-अपनी हाके जाता है । उनके हठ कौन तोड सकता है ?



६० : महल का द्वार

किसी सेठ ने बहुत सुन्दर और बडा विशाल महल बनवाया। एक दिन उस सेठ के महल की ओर से एक महात्मा गोचरी (भिक्षा) के लिए निकले। सेठ ने सोचा—साधुजी आ गए है तो इन्हे अपना महल दिखलाऊ। महल देखकर महाराज प्रसन्न होगे और जगह-जगह उसका बखान करेंगे। महाराज की गति सेठ को मालूम नही थी।

सेठ महात्मा को अपने महल मे ले गया और वहा के ठाट-बाट बताने लगा। महात्मा ज्ञानी थे, इसलिए उन्होने विचार किया कि मकान देखे विना उपदेश देना ठीक नही।

सेठ ने बडी प्रसन्नता के साथ महल दिखलाते हुए कहा—देखिए, यह दरीखाना है, यह भोजनगृह है, यह शयन-गृह है, यह बैठक है। इसके सामने के झरोखे को म्युनि-सिपैलिटी ने रोक दिया था, परन्तु मैंने लाखो रुपये खर्च करके झरोखा बनवाया है। यह देखिए ऊपर चढने के लिए 'लिफ्ट' लगा है। पहले के लोगो को ज्यादा ज्ञान नही था। इस कारण वे चढने के लिए सीढिया रखते थे। अब विज्ञान का बोलबाला है। पैसे तो लगते हैं मगर कितना सुभीता हो गया है! 'लिफ्ट' पर बैठे कि ऊपर चढे। और यह धुआ निकलने की जगह है। इस प्रकार सेठ ने सारा महल दिखला कर महात्मा से पूछा—कहिए, कोई कसर तो नही है!

५८ : ठसक का रोग

एक सेठ के लडके की सगाई दूसरे सेठ की लडकी के साथ हुई। लडकी वाला अधिक धनवान् था और लडके वाला कम। जो ओछा होता है, वह अपना वडप्पन अधिक दिखलाना चाहता है। अतएव लडके वाले ने सोचा—लडके का विवाह करने जाना है तो ठसक से जाना चाहिए। यह सोचकर उसने भीतर चाहे तावा ही रहा हो, परन्तु सोने के कडे, कण्ठी, अगूठी आदि गहने बनवाए। सेठजी सब गहनो से सज कर और वरात लेकर लडके की ससुराल गये। कभी अगूठी पहनी तो थी नही, इसलिए अगूठी पहन कर उनके हाथ कडे से हो गए। वह किसी को वुलाने जाए तो भी हाथ लम्बे और उगलिया कडी करके कडे और अगूठिया दिखलाते हुए 'पधारो साहब, पधारो साहब' कहते थे।

लड़की वाले ने कहा—हमारे समधी को ठसक रोग हो गया है। मगर इस रोग की दवा मेरे पास है। इनका इलाज कर देने मे ही इनका कल्याण है। इस विचार से उसने हीरो का एक कण्ठा गले में डाल लिया और हाथो मे हीरो की पहुँचिया पहन कर, अपने समधी के समान ही हाथ लम्बे करके उससे कहा—'पधारिये साहब, पधारिए।'

उस कण्ठे और पहुचियो को देखते ही सेठजी का नूर

घट गया। चित्त मलिन हो गया, मानो किसी ने उनका सारा जेवर छीन लिया हो!

विचार कीजिए, उसने पहना था तो इसका दिल क्यो दुखा ? इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार किया जाय तो कई बाते स्पष्ट हो जाएगी। मनुष्य का आनन्द गहनो में होता तो जो गहने पहले इस सेठ को आनन्द दे रहे थे, वे ही बाद में काटे की तरह क्यो चुभने लगते ? वास्तव मे मनुष्य इस कल्पना मे सुख मानता है कि मेरे पास अमुक चीज है जो दूसरो के पास नही हैं। लेकिन वही चीज जब दूसरों के पास भी हो जाती है तो उसका आनन्द जाता रहता है।

कल्पना कीजिए, किसी बाई के हाथों में चादी की चूडिया हैं। उसके सामने सोने की चूडियो वाली एक बाई आ बैठती है। अब चादी की चूड़ियो वाली बाई कहेगी— मेरी चूड़िया क्या हैं, कुछ भी नही! और सोने की चूडियो वाली की प्रसन्नता का पार न रहेगा। वह अभिमान में डूब जाएगी। वह अपने को सुखी अनुभव करेगी। उसी समय हीरो की चूड़ियो वाली एक महिला वहा आ पहुचती है। उसे देखकर सोने वाली के सुख पर पानी फिर जायगा, उसका सुख हवा हो जायगा। वह अपनी चूडियो को कुछ भी नही समझेगी।

यह सब क्या बात है ? सुख कहा है ? सोने मे सुख है या मनोभावना मे ? ठीक तरह सोचो, विचार करो, समझो। अगर मनोभावना मे ही सुख है तो तुम्हें कही भटकना नही है। वह तुम्हारे पास ही है। मृगतृष्णा में क्यो पड़ते हो ?

५९ : हठ

एक मनुष्य काशी गया । जब वह लौटकर आया तो अपनी मा से कहने लगा—मैंने काशी के सब पण्डितो को हरा दिया ।

मा ने पूछा—कितने पडित थे ?

उसने कहा—करीब ५०० होगे

मा—कैसे विद्वान् थे ?

मेंटा—बडे-बडे विद्वान् थे, ऐसे कि कुछ न पूछो बात !

मा - परन्तु तू पढा तो है नही । उन्हे कैसे जीत लिया?

बेटा—मैं पढा नही तो क्या हुआ ? मुझे जीतने की कला तो पूरी आती है ।

मा—कैसे जीता ?

बेटा—वे सब कुछ-कुछ बोलते रहे, परन्तु मैं यही कहता रहा कि तुम झूठे हो और मैं सच्चा हू ।

इस प्रकार वह काशी मे जीत आया । मूर्ख मनुष्य दूसरो की सुनता-नही, समझता नही और अपनी-अपनी हाके जाता है । उनके हठ कौन तोड सकता है ?



६० : महल का द्वार

किसी सेठ ने बहुत सुन्दर और बडा विशाल महल बनवाया। एक दिन उस सेठ के महल की ओर से एक महात्मा गोचरी (भिक्षा) के लिए निकले। सेठ ने सोचा—साधुजी आ गए हैं तो इन्हे अपना महल दिखलाऊ। महल देखकर महाराज प्रसन्न होंगे और जगह-जगह उसका बखान करेंगे। महाराज की गति सेठ को मालूम नही थी।

सेठ महात्मा को अपने महल मे ले गया और वहां के ठाट-बाट बताने लगा। महात्मा ज्ञानी थे, इसलिए उन्होने विचार किया कि मकान देखे बिना उपदेश देना ठीक नही।

सेठ ने बडी प्रसन्नता के साथ महल दिखलाते हुए कहा—देखिए, यह दरीखाना है, यह भोजनगृह है, यह शयन-गृह है, यह बैठक है। इसके सामने के झरोखे को म्युनि-सिपैलिटी ने रोक दिया था, परन्तु मैंने लाखो रुपये खर्च करके झरोखा बनवाया है। यह देखिए ऊपर चढने के लिए 'लिफ्ट' लगा है। पहले के लोगो को ज्यादा ज्ञान नही था। इस कारण वे चढने के लिए सीढिया रखते थे। अब विज्ञान का बोलबाला है। पैसे तो लगते हैं मगर कितना सुभीता हो गया है! 'लिफ्ट' पर बैठे कि ऊपर चढे। और यह धुआ निकलने की जगह है। इस प्रकार सेठ ने सारा महल दिखला कर महात्मा से पूछा—कहिए, कोई कसर तो नही है!

साधु को सेठ का महल देखकर क्या आनन्द हो सकता था ? उन्होंने महल के प्रधान दरवाजे की ओर संकेत करके कहा—इसमें एक वात खराव है, यह दरवाजा । यह क्यों रखा है ?

सेठ मुस्कराया । उसने कहा—आखिर आप साधु ही तो ठहरे ! आप मकान का हाल क्या जाने ? दरवाजा न होता तो आते-जाते कहां से ? साधुजी वोले—कुछ भी हो, परन्तु यह दरवाजा नही रखना था ।

सेठ ने कहा—आप कैसी भोलेपन की वात करते हैं !

साधु ने गम्भीरता से कहा—मैं ठीक कहता हूं । किसी रोज लोग इसी दरवाजे से तुझे निकाल देगे ।

साधु की वात सुनकर सेठ का नशा उतर गया । उसने एक लम्वी-सी सास लेते हुए कहा—मूर्ख, जहा जाना है, उस दरवाजे की तो तुझे चिन्ता नही है और ऐसी भावना मे पड़ा है, जैसे अमर रहेगा ! मैं इस महल मे रहने के लिए तुझे मनाई नही करता, मगर यह कहता हू कि इसमे लिप्त न हो जाना । इस दरवाजे को सदा याद रखना कि इसी से तुझे जाना होगा । उस समय इस घर मे रहने वाला कोई भी व्यक्ति तेरा साथ नही देगा । तेरा किया हुआ धर्म ही साथ जाएगा । इसलिए जव तू इस महल मे रहे तो अपने मन के महल में परमात्मा को रखना ।



६१ : पतिव्रता

राम-चरित्र में दो मित्रो की कथा आई है। दो मित्र थे। उनमें से एक का विवाह हो गया। दूसरे ने उसकी पत्नी को देखा तो वह उस पर मोहित हो गया। उसे खाना-पीना, सोना-बैठना कुछ भी अच्छा नही लगता था। वह दिनोदिन सूखता चला जाता था।

पहले मित्र ने पूछा—तुम बिना रोग सूखते क्यो चले जाते हो ?

दूसरा मित्र—कुछ भी तो नही है। पता नही, क्या कारण है !

पहला—छिपाने का यत्न मत करो। हो सकेगा तो मैं तुम्हारी चिन्ता दूर करने का उपाय करूंगा।

दूसरे मित्र ने पहले तो टालमटूल की, मगर अन्त मे मित्र का आग्रह देख सच्ची बात कह दी। आखिर मित्र से कपट तो वह कर नही सकता था। कहा भी है —

गुरु से कपट, यार से चोरी,
कै हो अन्धा, कै हो कोढी।

मित्र के हृदय की बात सुनकर वह सोचने लगा—विचित्र समस्या है ? ऐसे अवसर पर मुझे क्या करना चाहिए?

अन्त में उसने निर्णय किया—मैं अपनी मित्रता निबाहूंगा और देखू गा कि इसका परिणाम क्या आता है ?

इस प्रकार सोचकर उसने अपने मित्र को तसल्ली देते हुए कहा—धैर्य रखो। यही बात है तो मैं अपनी स्त्री तुम्हे दू गा।

पहले मित्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लज्जा और आश्चर्य के कारण वह अवाक् होकर अपने मित्र की ओर देखने लगा। थोड़ी देर मे सभल कर उसने कहा—नही ऐसा मत करना।

घर आकर उसने अपनी पत्नी से कहा—मैं जो कहूगा सो करोगी ?

पत्नी—आज ऐसी शका क्यो ? क्या मैंने कभी आपकी आज्ञा का उल्लघन किया है ?

तब वह बोला—नही, सदा और बात हुआ करती थी, आज और ही बात है !

पत्नी—मैं आपको सावधान देखती हू। आप जो आज्ञा देगे, उचित ही देंगे। फिर मुझे उचित अनुचित का विचार करने की आवश्यकता ही क्या है ? आप आज्ञा दीजिए मैं उसका अवश्य पालन करूंगी।

वह बोला—तुम शृङ्गार करके मेरे मित्र के घर जाओ।

पत्नी ने आखे गड़ा कर अपने पति के चेहरे की ओर देखा कि कही दिल्लगी तो नही कर रहे हैं ? मगर उसके

चेहरे की गम्भीरता ने तत्काल ही उसकी शका का निवारण कर दिया। तब उसने सोचा—आज पति का प्रेम कुछ निराला ही है। मेरी इज्जत से पति की इज्जत ज्यादा है। फिर न मालूम क्या उदारता दिखलाने के लिए यह आज्ञा दे रहे हैं। वह धर्मसकट मे पड़ गई। वह मन ही मन परमात्मा से प्रार्थना करने लगी—प्रभो ! मुझे रास्ता दिखलाइए। पति की आज्ञा न मानना भी उचित नही है और मानती हू तो धर्म-भग होता है। ऐसी अवस्था में मुझे क्या करना चाहिए ?

अन्त मे उसके हृदय की भावना फूली। उसने विचार किया—मनुष्य चाहे तो किस जगह और किस परिस्थिति मे अपने धर्म की रक्षा नही कर सकता ? और उसने पति से कह दिया—आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं अवश्य जाऊगी। पर आप विचार कर लें। आप स्वय धर्मात्मा हैं और बुद्धिमान् हैं। अत मुझे अपनी बुद्धि दौडाने की आवश्यकता नही है।

पति ने कहा—अच्छी बात है, जाओ।

पति की आज्ञा मानकर स्त्री चली। पति भी पीछे-पीछे चला कि देखें, क्या होता है ! स्त्री ने जाकर मित्र के किवाड़ खटखटाए। मित्र ने पूछा—कौन ?

स्त्री—जिसे याद करते हो वही।

वह आश्चर्य-युक्त होकर उठा और उसने किवाड़ खोले। मित्र की स्त्री को देखकर उसके आसू निकल पडे। वह सोचने लगा—दुनिया में मेरे समान कोई नीच नही है, जिसने

अपने मित्र की स्त्री की मांग करते हुए संकोच नही किया! मैं कितना पामर हू ! पशुओ से भी गया बीता ! और वह मित्र ? धन्य है, वह मनुष्य नही, देवता है !

उसने आई हुई मित्र–पत्नी को बिठलाया । इसी समय उसका मित्र भी आ पहुचा । उसने आते ही अपने मित्र की जो मुखमुद्रा देखी तो समझ गया कि कुछ गजब होने वाला है !

पहला मित्र उन्हे वही बैठा छोड़ पिछवाडे की ओर गया और फासी का फन्दा लगा कर प्राण त्यागने को तैयार हो गया । दूसरे मित्र को पहले ही आशका हो गई । वह भी पिछयाडे की ओर पहुचा । मित्र को फासी लगाते देख उसने फासी का फदा काट दिया और कहा—पागल हुए हो? यह क्या कर रहे हो ?

उसने हडबडा कर कहा—तुम यहा क्यो आये ? मुझ पापी को मरने देना ही योग्य है ।

दूसरे मित्र ने कहा–मैं जान गया था कि तुम इधर क्यो जा रहे हो । खैर, जो हुआ सो हुआ इसमे मेरी और तुम्हारी कोई विशेषता नही है । विशेषता है इस पति-भक्ता स्त्री की, जो सब पुरुषो को भाई के समान समझती हुई भी मेरी आज्ञा मानकर तुम्हारे पास चली आई ।

पहले मित्र ने कहा—यह मेरी माता है । इसने मुझे नया जीवन दिया है ।

स्त्री ने कहा—मैंने परमात्मा से रास्ता दिखलाने के

लिए प्रार्थना की थी । उसने रास्ता दिखलाया और मैं चली आई । मैं जानती थी कि मेरा हृदय जब पवित्र है तो उसके सामने अपवित्रता टिक ही नही सकती ।

पतिव्रता की शक्ति के सामने दानव भी हार मानते हैं ।

६२ : 'आप मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता'

किसी किसान ने एक खेत बोया । खेत में पक्षियो ने जुआर के पौधो में घोसला बना लिया । घोसले मे पक्षी भी रहते थे और पक्षियो के बच्चे भी रहते थे । बच्चे उडने नही लगे थे, इस कारण पक्षिणी चुग्गा ला-लाकर उनके मुंह में देती थी ।

एक दिन किसान अपने खेत की मेड पर आया । उसने आशा और सन्तोष की नजर सारे खेत पर डाली । फिर सोचा—खेत पक गया है, अब काट लेना चाहिए । यह सोचकर उसने खेत के रखवाले और अपने लडके से कहा—देखो भाई, खेत अब पक गया है । काटने मे ढील करना ठीक नही है । आज फला गाव से पाहुने आने वाले हैं । उनकी सहायता से कल खेत काट डालेंगे ।

पक्षी के बच्चो ने किसान की बात सुनी । वे बुरी तरह घबराए । पक्षिणी के आते ही वे रोकर कहने लगे

मा, अब इस जगह रहना ठीक नही है। जल्दी से जल्दी यहा से उड चलना चाहिए।

पक्षिणी ने पूछा—क्यो ? क्या बात है ?

बच्चे बोले—मा, आज खेत का मालिक किसान आया था। वह कहता था—कल पाहुनो की सहायता से खेत को काटेंगे। खेत कल कट जायगा। अपने यहा रहकर क्या करेंगे ? यहा रहे तो खेत के काटते समय मुसीबत भी आ सकती है। उड चलना ही ठीक है।

पक्षिणी ने हंसकर कहा—बच्चो, तुम भोले हो। तुम फिक्र मत करो। मजे में रहो। पराये भरोसे खेत नही कटा करते।

बात भी ऐसी ही हुई। खेत नही कटा।

दूसरे दिन किसान फिर आया। उसने रखवाले से फिर कहा—कल पाहुने नही आये और खेत भी नही कटा। अब कल गाव के अपने भाई-बन्धुओ को बुला लेंगे और उनकी सहायता से खेत काट लेंगे।

पक्षी के बच्चो ने फिर यह बात सुनी और पक्षिणी के आते ही कहा—मा, कल नही उडे तो आज ही उड चले। कल किसान अपने भाई-बंधुओ की सहायता से खेत काटेगा। हम लोगो को पहले से ही चला जाना चाहिए।

पक्षिणी ने कहा—तुम चिन्ता मत करो। बिना अपने किये कुछ नही होता। अपनी ताकत के बिना कोई मददगार नही होता।

पक्षिणी ने ठीक ही कहा था । दूसरे दिन भी खेत नही कट सका ।

तीसरे दिन किसान फिर आया और कहने लगा—बडी भूल की जो पाहुनो और भाई-बधुओ के भरोसे बैठे रहे, नही तो खेत कभी का कट जाता । दूसरो के भरोसे काम नहीं होता । कल अपने सब घर वाले ही भिड पडे और खेत काट ले । लडके, तू कल सबेरा होते ही घर के सब लोगो को लेकर आ जाना । और रखवारे, तू भी तैयार रहना । कल खेत अवश्य काट लेगे ।

पक्षी के बच्चो ने फिर किसान की बाते सुनी और अपनी मा के आते ही कहा—मा, अब तो उडना ही पडेगा । किसान ने अपने घर वालो के साथ आकर कल खेत काटने के लिए कहा है ।

पक्षियो ने कहा—हा, अब उड चलना चाहिए । किसान ने जब स्वय खेत काटने का विचार किया है तो जरूर कट जायगा । जो अपनी हिम्मत से काम करता है, वही काम कर पाता है । और पक्षी, पक्षिणी तथा बच्चे उस खेत से उड गए ।

किसान पाहुनो और भाई-बन्धुओ के भरोसे रहा तो उसका काम नही हुआ । वे उसके काम न आये । आज वह स्वयं अपने घर वालो को लेकर भिड पडा । तब भाई-बधुओ ने देखा कि खेत कट रहा है और हम मदद करने नही जाएगे तो कल हमारी मदद करने कौन आयेगा ? यह सोचकर वे भी आ पहुचे और खेत कट गया ।

यह दृष्टान्त है। जब पक्षिणी भी सोचती है कि पराये भरोसे काम नही होता, तब क्या आप लोगो को नही सोचना चाहिए ? आज आप लोग परावलम्वी है, आलसी है, सब काम नौकरो से ही कराते है और खुद काम करने मे असमर्थ हैं। इस मनोवृत्ति से न व्यावहारिक कार्य होता है और न धार्मिक ही हो पाता है। निश्चित समझ लीजिए कि पराये भरोसे काम नही होता। कहावत प्रसिद्ध है— आप मरे विना स्वर्ग नही मिलता।

६३ : वीर

एक सेनापति मुनियो के समीप बैठा था। मुनियो ने साधुता की प्रशसा करते हुए कहा—'वीर पुरुष ही साधु हो सकता है।'

सेनापति ने कहा—'आप अपने ही मुख से अपनी प्रशसा कर रहे है। अगर आप हाथ मे तलवार ले तो पता चलेगा कि वीरता किसे कहते है ? आप साधुओ को वीर वतलाते हैं पर जहा तलवारो की खडखडाहट होती है, वहा साधु नही ठहर सकते।

सेनापति की बात सुनकर साधु हस दिये। फिर वोले 'सेनापति ! जोश मे आ जाने से सच्ची वात समझ में नही आती। शातिपूर्वक विचार करोगे तो साधु की वीरता का

पता चला जायगा । अगर एक आदमी अकेला ही दस हजार योद्धाओ को जीत ले तो उसे आप क्या कहेगे ?'

सेनापति—ऐसा होना संभव प्रतीत नही होता, फिर भी यदि कोई दस हजार योद्धाओ को जीत ले तो वह अवश्य ही वीर कहलायेगा ।

साधु—ठीक है । लेकिन कोई दूसरा आदमी दस हजार योद्धाओ को जीतने वाले को भी जीत ले तो उसे आप क्या कहेगे ?

सेनापति—उसे महावीर कहना होगा ।

साधु—देखो, ससार मे बडे-बडे शस्त्रधारी थे । उदाहरण के जिए रावण को ही समझ लीजिए । रावण प्रचण्ड वीर था । उसने लाखो पर विजय प्राप्त की थी । मगर जिस काम ने उसे भी जीत लिया, वह वीर कहलायेगा कि नही ? रावण ने हजारो-लाखो योद्धाओ को पराजित कर दिया, मगर सीता की आखो को वह न जीत सका । अतएव काम ने पराजित करके उसे नचा डाला । जिसके प्रबल प्रताप के आगे बडे-बडे राजा-महाराजा नतमस्तक होते थे, जिसकी प्रचण्ड शक्ति से बडे-बडे शूरवीर भी अभिभूत हो जाते थे, वह लाखो को जीतने वाला रावण, अबला कहलाने वाली सीता के आगे हाथ जोडने लगा और उसके पैरो मे पड़ने लगा । मगर सीता ने उसे ठुकरा दिया ।

यहा प्रश्न खडा होता है—वीर कौन था ? रावण या काम ?

सेनापति—काम । काम को जीतना बहुत कठिन है ।

साधु—काम लाखो को जीतने वाला वीर है । मगर जो सत्यशाली पुरुष वीर, काम को जीत लेता है उसे, क्या कहना चाहिए ? काम विजय का ढोग करने की बात दूसरी है, मगर सचमुच ही जो काम को पराजित कर देते हैं, उन्हे क्या कहेगे? ऐसा महान् पराक्रमी पुरुप 'महावीर' कहलाता है।

साधु अकेले काम को ही नही जीतता किन्तु क्रोध, मोह, मत्सरता आदि विकारो को भी जीतता है । इस प्रकार इन सब विकारो को जीत लेना क्या साधारण वात है ?

मुनि के स्पष्टीकरण को सेनापति ने सहर्ष स्वीकार किया । उसने कहा—काम, क्रोध, मोह आदि समस्त विकारो को जीत लेना तो वीरता है ही, किन्तु इनमे से एक को जीत लेना भी वीरता है ।

६४ : व्यापारी की बेईमानी

सुनने में आता है कि कई लोग दो तरह के बाट–पैमाने रखते हैं । एक तो नियत बाट–पैमाने से कम होते हैं और दूसरे अधिक । जव किसी को कोई वस्तु देनी होती है, तब तो उन बाट–पैमाने से तोलते-नापते हैं, जो कम होते हैं और किसी से लेनी होती है, तब उन बाट-पैमाने से तोल

नापकर लेते हैं, जो अधिक होते हैं। कई लोग पूरे बाट-पैमाने रखकर भी तौलने-नापने मे ऐसी चालाकी से काम लेते हैं कि दी जाने वाली वस्तु तो कम जाए और ली जाने वाली वस्तु अधिक आए। तोलने-नापने मे किस तरह बेई-मानी की जाती है, इसके लिये एक दृष्टान्त दिया जाता है।

संग्रामसिंह नाम के एक सज्जन राजपूत थे। वे थे तो गरीब, परन्तु थे सत्यभक्त। उनकी स्त्री भी बडी पति-व्रता थी। दम्पती बडे धैर्य-पूरक अपनी गरीबी के दिन काटते थे। गरीबी से घबरा कर सत्य छोडने का तो वे कभी विचार भी नही करते थे।

सग्रामसिंह की स्त्री, गर्भवती थी। जब प्रसवकाल समीप आया, तब उसने अपने पति से कहा—'सन्तान-प्रसव के पश्चात् ही मुझे अजवायन आदि की आवश्यकता होगी। घर मे अजवायन था तो सही, परन्तु वह कही ऐसी जगह रखा गया है, जो मिलता नही है। ठीक समय पर अज-वायन के लिए दौडधूप न करनी पडे, इसलिये कही से एक सेर अजवायन, उधार ले लेते तो अच्छा होता।'

पत्नी की बात के उत्तर मे संग्रामसिंह ने कहा—मैं किसी से उधार लेना अनुचित समझता हूं। जब पास मे पैसे होगे, तब मोल ले आऊगा।

संग्रामसिंह की पत्नी ने फिर प्रार्थना की, "हम गृहस्थ हैं, इसलिए ऐसे समय मे उधार लेने मे कोई हर्ज तो नही है। अजवायन की आवश्यकता शीघ्र ही होगी और पैसो का क्या ठीक है कि कब हाथ में आएं? फिर भी यदि

आप उधार लाना ठीक न समझे तो घर का कोई बर्तन बंधक रखकर ले आवे ।"

घर की एक थाली बधक रखकर अजवायन लाने के लिये सग्रामसिह बाजार गये । एक दूकान पर जाकर संग्रामसिंह ने दूकानदार से कहा—मुझे एक सेर अजवायन दे दीजिये ।

सग्रामसिह की गरीब दशा को दूकानदार जानता था, इसलिए उसने—यह समझकर कि ये अजवायन उधार माग रहे है—सग्रामसिह की बात सुनी-अनसुनी कर दी । सग्रामसिंह के दो तीन बार कहने पर भी, जब दुकानदार ने ध्यान नही दिया, तव सग्रामसिंह दूकानदार का अभिप्राय ताड गये और पास की थाली दूकानदार को बताते हुए कहा कि मैं उधार लेने नही आया हू । उसकी कीमत के बदले यह थाली बधक रखकर अजवायन लेने आया हू ।

थाली देखकर दूकानदार ने सग्रामसिह की बात सुन एक सेर अजवायन तोल दिया और अजवायन की कीमत के बदले थाली बधक रख ली ।

कपडे मे अजवायन लेकर सग्रामसिंह अपने घर गये । घर पहुचने पर, उनकी स्त्री ने उनसे कहा—मैंने आपको अकारण ही कष्ट दिया । घर मे रखा हुआ अजवायन मिल गया, अतः इस अजवायन की आवश्यकता नही रही । पत्नी की बात सुनकर, सग्रामसिंह वैसे ही दूकानदार के यहा लौट गये और उससे कहा कि मेरे घर मे अजवायन मिल गया है, इसलिए आप अपना अजवायन लौटा लीजिये । दूकानदार

नाराज होकर सग्रामसिह से कहने लगा—मैं बेची हुई चीज नही लौटाता। अब इस अजवायन का तुम चाहे जो करो।

सग्रामसिह ने नम्रतापूर्वक दूकानदार से कहा—'आपके अजवायन का कुछ बिगडता तो है नही। अभी ही ले गया और अभी ही लौटा लाया हू। मेरे यहा जब अजवायन मिल गया, तब इस अजवायन का क्या करूगा? क्या ठीक है कि पैसे कब हाथ मे आवे और तब तक एक बर्तन आप-के यहा बधक रखा रहेगा, जिसके बिना घर मे कष्ट होगा। यद्यपि आपको कोई हानि तो हुई नही है, फिर भी यदि आप चाहे, तो नुकसान स्वरूप कुछ पैसे ले लीजिए।

सग्रामसिह की अन्तिम बात मान कर, दूकानदार ने कृपा दिखाते हुए अजवायन वापस लेना स्वीकार किया। उसने अजवायन को फिर तोला और जिसे उसने सेर भर कहकर दिया था, उसे ही तीन पाव ठहरा कर सग्रामसिह से कहने लगा कि तुम बेईमानी करते हो! पाव भर अज-वायन घर रख आये और अब लौटाने आये हो!

सग्रामसिह ने कहा—मै अजवायन को जैसा ले गया था, वैसा ही लौटा लाया हू। इसमे से एक दाना गिरने भी नही दिया है, निकालना तो दूर रहा। ऐसी दशा मे, एक दम से पाव भर अजवायन कैसे कम हो गया?

चोर दूकानदार, सग्रामसिह की इस बात पर कब ध्यान देने वाला था। दूकानदार की यह बेईमानी देखकर, सग्राम-सिह को ससार से घृणा हो गई। वे दूकानदार को अज-वायन लौटा कर, थाली भी उसी के यहा छोड आये और

घर आकर संसार से विरक्त हो गये । उनके नाम से बना हुआ निम्न पद्य आज भी गाया जाता है ।

सग्राम कहे सुणो साह जी, है वो को वो ही सेर ।
लेता देता पाव को, पड्यो किसी विध फेर ?
पड्यो किसी विध फेर, कमी नही राखी काई ।
तोवा वार हजार, इसी थे करी कमाई ॥
साहब लेखो मागसी, लेसी मूंडो फेर ।
सग्राम कहे सुणा साहजी, है वो को वो ही सेर ॥

६५ : आत्म-निरीक्षण

एक बार बादशाह ने एक चार को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी । प्राण-हरण के लिए बादशाह ने यह उपाय बताया कि एक मैदान में बहुत से पत्थर एकत्रित किये जावे और चोर को उस मैदान मे खडा किया जावे । फिर सारे नगर के लोग चोर को पत्थरो से मारे और इस प्रकार चोर का प्राण-हरण किया जावे ।

बादशाह के आदेशानुसार एक मैदान मे पत्थर एकत्रित किये गये और ढिंढोरे द्वारा सारे नगर के लोग वहा बुलाये गये । चोर को भी उस मैदान मे खडा किया गया । लोगों को बादशाह का हुक्म सुनाकर कहा गया कि सब लोग इस

चोर को पत्थरो से मारे । बादशाह का हुक्म सुनकर, सब लोग, चोर को पत्थर मारने के लिए तैयार हुए । इतने में ही वहा ईसा आ गये । चोर को पत्थर मारने के लिए तैयार हुए लोगो को रोक कर ईसा ने उनसे कहा–इस चोर को वही पत्थर मार सकता है, जो स्वय चोर न हो । दूसरे के हको को, जबरदस्ती हरण करना ही चोरी है, फिर चाहे प्रत्यक्ष रूप से दूसरे के हको का हरण किया जावे या परोक्ष रूप से, और सभ्य उपायो से हरण किया जावे, या असभ्य उपायो से । आप लोग अपने-अपने मन में विचार कर देखें कि आप स्वय तो किसी के हको का हरण नही करते ? यदि आप लोग भी दूसरे के हको का हरण करते है तो फिर इस चोर को पत्थर मारने के आप अधिकारी कैसे हैं ? स्वय वही अपराध करना और उसी अपराध के लिए दूसरे को दण्ड देना, न्याय नही है ।

ईसा की उक्त बात का लोगो पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि लोग हाथो से पत्थर डालकर अपने-अपने घर चले गये ।

बादशाह के पास ईसा के नाम की पुकार गई कि ईसा ने पत्थर मारने के लिये आये हुए सब लोगो को भड़का दिया, इससे सब लोग अपने–अपने घर चले गये । बादशाह ने ईसा को पकड मगवाया और ऐसा करने का कारण पूछा ।

ईसा ने बादशाह से कहा—आपने इस चोर को पत्थरो से मार डालने की आज्ञा दी है, परन्तु आप अपने हृदय मे भली-भाति विचार करके कहिये कि क्या आप चोर नही हैं ? प्रत्यक्ष में या परोक्ष मे, सभ्य उपायो से या असभ्य

उपायों से, दूसरे के हकों का हरण करना ही चोरी है। क्या आप दूसरो के हको का हरण नही करते ? यदि करते है तो क्या आप चोर नही है ? ऐसी दशा मे, आप इसे पत्थर मार कर मार डालने की आज्ञा देने के अधिकारी कैसे रहे ? आप पत्थर मार-मार कर चोरी को ही क्यो नही मार डालते ? आप अपनी चोरी को तो मारते नही और इस चोर को मार डालने की आज्ञा देते है ! यह कहा का न्याय है ?

ईसा के उक्त कथन का वादशाह पर भी वहुत प्रभाव पडा। उसने पश्चात्ताप किया और ईसा को छोड देने के साथ ही चोर को भी छोड दिया।

६६ : सभ्य चोरी

कई लोगो ने विज्ञापनवाजी को ही चोरी का साधन वना रखा है। पत्रो, हैण्ड-विलो आदि द्वारा विज्ञापन करके, लोगो से आर्डर या पेशगी कीमत लेते हैं, परन्तु विज्ञापन के अनुसार न माल ही देते हैं, न कार्य की करते। विज्ञापन द्वारा किस तरह चोरी की जाती है, इसके लिये एक विज्ञापन के विपय मे सुनी हुई वात इस प्रकार है।—

एक विज्ञापनबाज ने, मक्खियो से बचने की दवा का विज्ञापन किया । उसने अपने विज्ञापन मे लिखा कि 'केवल १ आने के टिकट भेज देने मात्र से, हम वह दवा भेजते है, जिसे भोजन करते समय पास रखने पर मक्खिया नही सताती ।' लोगो ने उसके पास एक-एक आने के टिकट भेजे । विज्ञापन ने उन टिकटो मे से तीन पैसे के टिकट तो अपनी जेव मे रखे और एक पैसे के कार्ड पर, टिकिट भेजने वालो को उत्तर दे दिया कि—"आप भोजन करते समय एक हाथ हिलाते जाइये, फिर मक्खिया नही सता सकती।'

मतलब यह है कि आज के कानूनो से असभ्य चोरियो की सख्या चाहे कम हो गई हो, परन्तु सभ्यता की ओट मे होने वाली चोरियो की सख्या में तो वृद्धि ही सुनी जाती है । असभ्य उपायो से चोरी करने वाले को राज्य भी दण्डित करता है और समाज भी घृणा की दृष्टि से देखता है, परन्तु इन सभ्य उपायो से चोरी करने वाले को न तो राज्य ही दण्ड देता है और न समाज मे ही वह घृणित माना जाता है । हा, ऐसी चोरी करने वाला, समाज मे 'चतुर' या 'होशियार' अवश्य कहलाता है । इसका परिणाम यह ही रहा है कि आज ससार का अधिकाश समाज चोरी के पाप में पडा हुआ है ।



६७ : परोपकारी

ससार में श्रमजीवी मूर्ख समझे जाते है, मगर देखा जाय तो ससार का अमन–चैन उन्ही पर निर्भर है। बुद्धि-जीवी लोगो को प्राण देने वाले श्रमजीवी ही है । 'अन्न वै प्राणा अर्थात् अन्न ही प्राण है', इस उक्ति के अनुसार श्रमजीवी कृषक ही तो बुद्धिजीवी लोगो को अन्न रूप प्राण देते है।

एक व्यक्ति को लोग मूर्खराज कहा करते थे । वह वास्तव मे मूर्ख नही, दयालु था । उसे किसी प्रकार तीन बूटिया मिल गई । उनमे यह गुण था कि उनमे से एक का सेवन करने से सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते थे । मूर्खराज के पेट मे दर्द था, अतएव एक बूटी उसने खुद खाली । उसने सोचा—अपने ऊपर प्रयोग करना ठीक भी होगा । इससे पता चल जाएगा कि वास्तव मे यह बूटी सब रोगो को नाश करने वाली है या नही ? उसने बूटी खाई और उसके पेट का दर्द चला गया । बूटी की परीक्षा भी हो गई, मूर्खराज बहुत प्रसन्न हुआ । उसने सोचा—बडी अच्छी चीज है ।

मूर्खराज घर आया । उसने देखा—घर का कुत्ता पडा तड़फडा रहा है । कुत्ते मुंह से अपना दर्द नही बतला सकते । अतएव मूर्खराज की समझ मे नही आया कि कुत्ते को क्या दर्द है ? उसने सोचा—सम्भव है, कुत्ता भूखा हो

और भूख का मारा तडफ रहा हो। वह घर मे से रोटी लाया। कुत्ते के सामने रख दी। मगर कुत्ते ने रोटी नही खाई। तब मूर्खराज ने विचार किया—इसे कोई दर्द मालूम होता है। मेरे पास जो बूटी है, वह फिर क्या काम आएगी? एक बूटी से मेरा दर्द गया है और दूसरी से इसका दर्द मिटा देना चाहिए।

क्या बुद्धिवादी लोग ऐसा करने को तैयार होगे? क्या कुत्ते के प्राणो की उनके आगे इतनी कीमत है कि ऐसी अनमोल बूटी देकर उनके प्राणो की रक्षा की जाय? बुद्धिवादी ऐसा करना बूटी का अपव्यय समझेगा। मगर वह तो मूर्खराज जो ठहरा? उसने एक बूटी रोटी मे मिलाकर किसी तरह कुत्ते को खिला दी। थोड़ी देर में कुत्ता ठीक हो गया और पूंछ हिला कर प्रसन्नता प्रकट करने लगा।

जो मनुष्य कुत्ते को एक भी टुकडा डाल देता है, उसे कुत्ता भौकता नही है लेकिन मनुष्य क्या करता है? लड्डू खिलाने वाले पर भी मनुष्य भौकने से कब चूकता है? लोग लड्डू खिलाने वाले के लड्डू भी खा जाते हैं और उस पर भौकने भी लगते है। फिर भी मनुष्य के सामने कुत्ते के प्राणो की कोई कीमत ही नही है!

जब घर वालो ने देखा कि मूर्खराज ने कुत्ते को सहज ही ठीक कर दिया है तो वे कहने लगे—हम इसे मूर्ख समझते थे, मगर यह तो होशियार जान पडता है। इसने देखते-देखते कुत्ते को ठीक कर दिया! एक ने उससे पूछा—क्या

तुम्हे कुछ जादू आता है कि आनन-फानन मे कुत्ते को ठीक कर दिया ?

मूर्खराज ने बाकी बची बूटी दिखाकर कहा—मै जादू नही जानता हू, पर मेरे पास यह बूटी है। इस बूटी की करामात से ही कुत्ता अच्छा हुआ है। इस बूटी से सब प्रकार के रोग मिट जाते हैं।

जो मूर्खराज अभी-अभी होशियार हो गया था, वही फिर अब बुद्धू बन गया। घर के लोग उससे कहने लगे—आखिर तो मूर्खराज ही ठहरा न ! ऐसी अमृत सरीखी अनमोल बूटी कुत्ते को खिलाकर तू ने अपना नाम सार्थक कर दिखाया। भला, यह कुत्ता अच्छा होकर क्या करेगा ? किसी दूसरे को अच्छा किया होता तो कुछ लाभ भी होता।

बुद्धिमान् कहलाने वाले अन्य लोग भी ऐसा ही सोचते होगे। बेचारे कुत्ते पर कौन दया करना चाहता है ? लेकिन किसी प्रकार की आशा से किसी का भला करना सच्ची करुणा नही है। निरीह भाव से—बदला पाने की आशा न रखते हुए दूसरो की भलाई करना ही वास्तव मे करुणा है।

भगवान् पार्श्वनाथ को साप से कुछ मिलना नही था। फिर भी करुणा से प्रेरित होकर भगवान् ने उसका उपकार किया ही था ! करुणा किसी प्रकार का भेद-भाव नही रखती और जो लोभ मे पडा है, उससे भेद-भाव नही छूट सकता। अतएव करुणा करने के लिए 'मूर्खराज' सरीखा बनना पड़ता है।

मूर्खराज के माता-पिता भी जब उसकी अवहेलना करने लगे और कुत्ते को बूटी खिला देने के लिए उपालभ देने लगे तो उसने उत्तर दिया—आप लोगो के लिए वह कुत्ता है और मेरे लिए मेरे ही समान प्राणी है। अतएव उसके लिए मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं।

घर वाले खिन्नचित्त होकर कहने लगे—चलो, जो कुछ हुआ, सो हुआ। अब एक बूटी हैं, वह किसी को मत देना।

मूर्खराज ने कहा—ठीक है। मैं इसे नष्ट नही करूंगा।

सयोगवश उस शहर के बादशाह की लडकी बीमार हो गई। लडकी बादशाह और उसकी पत्नी को अत्यन्त प्रिय थी। इसलिए बादशाह ने ढिढोरा पिटवाया कि मेरी लड़की को जो अच्छा कर देगा, उसे मैं मुह मागा इनाम दूगा। बादशाह द्वारा पिटवाये गये ढिढोरे को मूर्खराज के घर वालो ने भी सुना। उन्होने मूर्खराज से कहा—बूटी की बदौलत अब तेरा भाग्य खुल जायगा। तेरे पास जो बूटी है, उसे बादशाह की लडकी को खिला दे। लड़की अच्छी हो जायगी तो उसके साथ तेरा विवाह हो जायगा। तू सुखी हो जायगा और तेरे साथ हम लोग भी सुखी हो जाएंगे।

मूर्खराज ने माता-पिता आदि की बात स्वीकार करते हुए कहा—ठीक है, मैं जाऊगा।

माता-पिता आदि ने मूर्खराज को स्नान करवाया, अच्छे कपडे पहनने को दिये और बादशाह के पास जाने को रवाना किया। मूर्खराज बूटी अपने साथ लेकर बादशाह के महल की तरफ चल पडा। मार्ग में उसने देखा कि एक

स्त्री को लकवा मार गया है, जिसके कारण वह चल फिर नही सकती। उसका हाथ बेकार हो गया है और मुंह टेढा हो गया है। मूर्खराज ने उस स्त्री से पूछा—माजी! क्या हो गया है तुम्हे?"

स्त्री—बेटा, देख ले। मेरी कैसी बुरी हालत है! मेरा शरीर बेकार हो गया। पेट पालने के लिए दूसरो की मोहताज हो गई हूं। बडा कष्ट है!

मूर्खराज मन ही मन सोचने लगा—यह बूढी मा इतने कष्ट मे है। मेरे पास बूटी है। मै इसका कष्ट मिटा सकता हूं। यह बूटी किस काम आएगी? गरीबिनी बुढिया का कष्ट मिटा देना उचित है।

मूर्खराज ने बुढिया से कहा—लो माजी! यह बूटी खा लो। तुम्हारा रोग अभी चला जाएगा।

बुढिया बोली—बेटा, मेरा रोग मिटा देगा तो मैं समझूंगी कि तू ही मेरे लिए ईश्वर है।

मूर्खराज—मैं ईश्वर नही हूं। मुझे यह बूटी कही मिल गई है। इसका दूसरा क्या उपयोग हो सकता है? तू इसे खा ले।

बुढिया ने बूटी खाई। वह चगी हो गई। उसे सहसा अपना चगापन देख विस्मय के साथ आनन्द हुआ। मूर्खराज को उसने सैकडो आशीर्वाद दिये।

मूर्खराज सन्तोष के साथ अपने घर लौट आया। उसे

आया देख घर वाले पूछने लगे—क्यों, बादशाह के पास नही गया ? लौट क्यो आया ?

मूर्खराज—मार्ग मे मुझसे एक अच्छा काम हो गया, इसलिए लौट आया हू ।

घर वालो की बडी चिन्ता हुई । उन्होने पूछा—क्या हुआ, कुछ बता भी सही ।

मूर्खराज ने बुढिया का वृत्तान्त कह सुनाया । घर वालो ने यह सुना तो क्रोध के मारे पागल हो उठे । कहने लगे—मूर्खराज कही के ! तूने हमारे सारे मंसूबे मिट्टी मे मिला दिये !

भगवान् पार्श्वनाथ को तो आप भी पुकारते हैं, मगर किसलिए पुकारते हैं ? आप उनके शिष्य कहलाते हैं, मगर क्या करने के लिए ? पार्श्वनाथ के शिष्य कहला कर भी क्या आप मे मूर्खराज सरीखी दया है ? मूर्खराज की निस्पृह दया कितनी सराहनीय है ! क्या आपका अन्त करण इस प्रकार की दया से जीवन मे एक बार भी कभी द्रवित हुआ है ? स्वय मे ऐसी दया होना तो दूर रहा, आपके घर का कोई आदमी इस मूर्खराज के समान कार्य करे तो आप उसे शायद घर से निकाल देने के लिए तैयार हो जाए ! ऐसी स्थिति मे आप भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा की गई दया का असली महत्त्व समझ सकते हैं ? अगर आप सचमुच ही दया का महत्व समझते है तो अछूतो को व्याख्यान सुनने देने से क्यो वंचित रखते है ? मैं आपके मकान मैं ठहरा हूं । अत-एव आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नही कर सकता । किसी

को आने या न आने देने का मुझे अधिकार नही है। लेकिन इस विषय मे आप क्या चाहते हैं ? अगर हम आपके मकान मे न ठहरे होते और प्राचीन काल के मुनियो की तरह जंगल मे ठहरे होते तो हमारा व्याख्यान सभी लोग सुन सकते थे। वहा किसी के प्रति किसी प्रकार का भेद-भाव का व्यवहार नही किया जा सकता था। भगवान् के समवसरण के बारह प्रकार की परिषद् होती थी। उसमें किसी के प्रति, किसी भी प्रकार का भेदभाव नही किया जाता था। अगर आपके अन्त करण में भगवान् पार्श्वनाथ के समान दया है तो आप किसी भी जाति वालो को व्याख्यान सुनने से न रोकें।

मूर्खराज के घर वाले क्रोध से बावले हो उठे। कहने लगे—यह मूर्ख कितना अभागा है ! पहले तो इसने कुत्ते को बूटी खिला दी और अब, जब कि सभी का भाग्य चमकने वाला था, किसी बुढिया को बूटी देकर चला आया। ऐसा न किया होता और बादशाह की लड़की की बीमारी मिटाई होती तो खुद बादशाह का दामाद बन गया होता और हम लोगो को इस मकान के बदले राजमहल मिला होता ! हमारा घर धन से भर जाता और सब दुख दूर हो गये होते !

मूर्खराज ने अपने घर वालो से कहा—आप लोग मुझे क्षमा कीजिये। मेरा नाम मूर्खराज है ! मैं आप लोगो की बुद्धि के अनुसार काम कैसे कर सकता हू ? आप मुझसे वृथा ही ऐसी बड़ी आशा क्यो रखते हैं ? मैं मूर्ख ठहरा। सामने किसी दुखी को देखता हू तो अपने को रोक नही

सकता । मेरे पास जो कुछ होता है, सभी देने को उद्यत हो जाता हू और दे डालता हू । मेरी प्रकृति ही ऐसी बनी है । क्या करू ?

मूर्खराज की सरल सीधी बात सुनकर सन्तान प्रेम के कारण माता-पिता आगे कुछ न कह सके । वे चुप हो रहे । सोचने लगे—इसका क्या दोष ? दोष अगर है तो हमारी तकदीर का ही है ।

मूर्खराज के हृदय में यह था कि जो दुखी सामने आए, उसका दु ख दूर करने के लिए, अपने पास जो भी कुछ हो, दे देना चाहिए । मगर आपके हृदय मे क्या है ? जरा अपने हृदय को टटोलो । आप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य हैं । आपके अन्त करण मे दया का कैसा शीतल झरना बहना चाहिए ? भगवान् साप सरीखे जहरीले प्राणी के लिए भी हाथी से नीचे उतरे, उन्होने पास जाकर उसे उपदेश का अमृत पिलाया । मगर आप दया-दया की पुकार करते हुए भी मान के हाथी पर ही सवार बने रहते हैं । ऐसी दशा मे कैसे कहा जा सकता है कि आपने दया को पहचाना है ? दया करने के लिए मूर्खराज के समान बनना पडता है । मूर्खराज को जैसी बूटी मिली थी, आपको वैसी मिल जाय तो आप उसे लेने को फौरन तैयार हो जाएगे । और कदाचित् मूर्खराज मिल जाय तो कहने लगेंगे, 'यह तो मूर्खराज है । हम इसे लेकर क्या करेगे ?' आप मूर्खराज का अस्थि-पजर लो, यह मैं नही कहता । मैं कहता हू कि मूर्खराज के गुणो को ग्रहण करो । जिस प्रकार मूर्खराज नि स्वार्थ और निष्पक्ष होकर दया करता था, उसी प्रकार आप भी दया करो ।

खरगोश हाथी का क्या लगता था ? हाथी को उसकी रक्षा करने से क्या मिलने वाला था ? हाथी को खरगोश से कुछ भी आशा नही थी। फिर भी उसने घोर वेदना सहन करके भी खरगोश की रक्षा की। इसी तरह आप भी निष्काम भाव से दीन-दुखी पर दया करो। बुद्धि के चक्कर मे मत पडो। दया करने के लिए 'मूर्खराज' के सदृश वनो। आप मे मूर्खराज की सी आदत नही है, इसी कारण आप किसी के मरने के वाद तो उसकी याद कर करके रोते हो परन्तु जव वह जीवित रहता है, तव तक उसकी पूरी सम्हाल नही करते और उसे कल्याण के मार्ग पर नही लगाते।

यदि ससार मे मूर्खराज के समान ही प्राणी जन्मे, जो दिन-रात दूसरे की दया करने मे ही लगे रहे तो ससार सुखी हो सकता है। यह ध्रुव सत्य समझ लो कि ऐसे दयालु और परोपकारी मनुष्य ही ससार के शृङ्गार हैं। ससार मे अगर कुछ सार है तो ऐसे मनुष्यो का जीवन ही है। ऐसे दयावान मनुष्य ही ससार मे सुख और शान्ति का प्रसार करते है। मारकाट मचाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने मे सलग्न रहने वाले बुद्धिवादी लोग ससार को सुखमय नही वना सकते। मूर्खराज कपडे पहन कर वादशाह की वेटी को वूटी देने चला था, मगर मार्ग मे वीमार वृद्धा को देखते ही उसका दिल द्रवित हो गया और उसने उसे वूटी खिला दी। मूर्खराज का यह त्याग मामूली नही कहा जा सकता। उसे राजकुमारी पत्नी मिल सकती थी, कदाचित् राज्य का भी कुछ भाग मिल सकता था और कीर्ति तो मिलती ही पर

उसने इन चीजों की तनिक भी परवाह नही की । सच्ची दया वही है, जहा लेश मात्र भी स्वार्थ नही है । मगर बुद्धि की खटपट त्याग कर मूर्खराज के समान बनने पर ही ऐसी दया की जा सकती है ।

६८ : मनोयोग

कई लोग चित्त की चचलता को सर्वथा ही रोक देने की चेष्टा करते हैं और उसी मे कल्याण समझते है, किन्तु ऐसा होना दु.साध्य है । ज्यो-ज्यो आप चित्त को रोकने का प्रयत्न करेंगे, वह अधिकाधिक चचल होता जायगा । अतएव उसे सर्वथा रोकने का विचार छोड कर उसकी चाल की चौकसी करना और उसे टेढामेढा जाने से रोकना ही अधिक व्यवहार्य है । किसी अच्छे प्रकार के चिन्तन मे फसाये रहने से ही मन टेढी चाल से बचता है । वह खाली रहने पर बड़ा उत्पात मचाता है । इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण लीजिए—

एक मनुष्य किसी सिद्ध पुरुष की सेवा करता था । सिद्ध ने उसकी मनोकामना पूछी । सेवक ने कहा—महाराज! मैं खेती कर-कर के मरता पचता हू, फिर भी पेट नही भर पाता । इससे विपरीत जब मैं नगर मे जाकर नागरिक लोगो को देखता हू तो वे लोग अल्प परिश्रम करके भी खूब मजा-मौज लूटते हैं । मैं साल भर मे जितना कमाता हूं, उतना

वे एक ही दिन में उडा देते है । उन्हे देखकर मैं भी उन्हीं सरीखा धनी वनना चाहता हू । इसी इच्छा से आपकी सेवा कर रहा हू ।

सिद्ध वोले—ठीक, मैं तुझे एक मन्त्र वतलाता हू । उसका जाप करने से एक भूत तेरे कब्जे मे हो जायगा । वह तेरा सव काम किया करेगा और तेरी समस्त इच्छाए पूरी करता रहेगा ।

किसान ने मन्त्र लिया और उसकी साधना की । साधना से भूत आया । वह वोला—अव मैं तुम्हारे अधीन हू । किन्तु एक भी क्षण मैं वेकार नही रहूगा । अगर वेकार रहा तो तुम्हे खाऊगा । यह मेरा स्वभाव है ।

किसान ने यह वात स्वीकार कर ली । फिर उसने भूत को काम वतलाना शुरु किया । खेत जोतना, वोना, मकान वनाना, भोगोपभोग की सामग्री प्रस्तुत करना आदि सभी कार्य उसने वात की वात मे पूरे कर दिये । यह सव काम पूरे करके भूत ने कहा अव क्या करना है ? काम वताओ, नही तो तुम्हे खाता हू ।

किसान ने घवराकर कहा—भाई, थक गये होओगे । अव कुछ देर विश्राम कर लो ! फिर काम वतला दूगा ।

भूत—अगर कोई काम न वतलाया तो मैं अपने नियम के अनुसार अभी तुम्हे खा जाऊंगा ।

किसान सकपकाया । सोचने लगा—इसकी अपेक्षा तो मैं पहले ही अच्छा था । उस समय यह वला तो नही थी ।

अब इससे किस प्रकार पिंड छुडाया जाय । क्यों न उन्ही सिद्ध पुरुष की सेवा मे जाऊं और उन्ही से अपनी रक्षा की भिक्षा मागूं ।

उसने भूत से कहा—तू मेरे पीछे-पीछे चल, अभी यही काम बतलाता हू । इस प्रकार दोनो सिद्ध पुरुष के पास पहुचे और सिद्ध पुरुष से किसान ने कहा—महाराज ! आप अपना भूत सभालिए ! बाज आए इससे ! कहा तक इसे काम बताऊ ? अगर कभी न बतला पाया तो मुझे खा जायगा ! ऐसे भूत की मुझे आवश्यकता नही । न जाने कब मुझे खा जाय !

सिद्ध ने किसान को सान्त्वना देते हुए कहा—भाई, डरो मत । इसे एक खम्भा बनाने का काम बतला दो । किसान ने सिद्ध के कथनानुसार भूत को खम्भा बनाने का काम बता दिया । भूत ने पल भर मे खम्भा तैयार कर दिया । तब सिद्ध ने कहा—अब इसे कह दो कि जब मैं जो काम बताऊं, तब वह काम करना । शेष समय मे इस खम्भे पर चढते–उतरते रहना । भूत चढने–उतरने लगा ।

इस चढने-उतरने से भूत हैरान हो गया । उसने कहा—माफ करो भाई, मैं तुम्हारे बुलाने पर आ जाया करू गा । शेष समय मे कार्य न होगा तो तुम्हे नही खाऊंगा ।

किसान भी यही चाहता था । उसने प्रसन्नतापूर्वक भूत की बात मान ली । भूत अपना पिंड छुडा कर भागा और किसान ने अपना पिंड छूटा जान सन्तोष की सास ली और अपने घर आ गया ।

यह उदाहरण सिर्फ मनोरंजन के लिए नही है । इसमें अनेक तत्त्व भरे है । जैसे किसान ने भूत पैदा किया, उसी प्रकार आत्मा ने मन पैदा किया है । भूत काम लगे रहने पर शान्त रहता है और खाली होने पर खाने दौडता है । इस प्रकार मन भी निरन्तर क्रियाशील रहना चाहता है । खाली रहना उसे पसन्द नही, उसे कोई न कोई चटपटी वात सदैव चाहिए । जब यह निकम्मा रहता है तो हमे खाने को दौडता है और इतना खाता है कि पागल बना कर छोड़ता है । यह भूत कोई साधारण नही है । सभी के पीछे यह पड़ा हुआ है । जब इसके लिए कोई काम न रहे तो इसे खम्भा बता देना चाहिए, जिस पर चढता-उतरता रहे । वह खम्भा कौनसा है ? भगवत्-भजन का ।

तुम सुमरन विन इण कलियुग मे, अवर न को आधारो ।
मैं वारी जाऊं तो सुमरन पर, दिन-दिन प्रीत वधारो ।।

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो ।।

६९ : स्वामी नहीं, ट्रस्टी

(१)

शिमला में एक पुरुष और एक स्त्री को देख कर गाधीजी का हृदय आनन्दित हो उठा । वे दोनो गाधीजी

के पास आये और उन्होने सौ रुपये का एक नोट निकाल कर एक सस्था की सहायता के लिए गाधीजी के सामने रखा। वह सस्था सेठ जमनालालजी बजाज द्वारा सञ्चालित होती थी। गाधीजी ने कहा—'जमनालाल जी के पास पैसे की कमी नही। उनके पास काफी पैसा है। उस संस्था को सहायता की आवश्यकता नही है। अत. आप यह रुपया अपने पास ही रहने दीजिए।'

यह सुनकर आगन्तुक पुरुष ने कहा—'जिस किसी कार्य में रुपयो की आवश्यकता हो, उसी में यह लगा दीजिए। अमुक कार्य मे रुपये लगाने की शर्त लगाना व्यर्थ है—भूल है। इस बात को मेरी अपेक्षा आप अधिक समझते हैं। अतएव अब इस विषय में मैं आपसे कुछ न कहूगा। मैंने सरकारी नौकरी करके पैंतीस हजार रुपया बचाया और इस समय भी मेरी आय लगभग एक हजार रुपया मासिक है। इस सम्पत्ति को मैं अपनी नही समझता। चाहता हू कि आप इसकी व्यवस्था करें और अपने हाथ में ले ले। इसी से आनन्द होगा। मैं इस सम्पत्ति पर से अपना आधिपत्य हटा लेना चाहता हू, जिससे अपने उत्तरदायित्व से बच सकू।'

मित्रो! आप लोगो के पास जो द्रव्य है, उसे अगर परोपकार मे सार्वजनिक हित मे और दीन-दुखियो को साता पहुचाने में न लगाया तो याद रखना, इसका व्याज चुकाना तुम्हे कठिन हो जायगा। ऐसे द्रव्य के स्वामी बनकर आप फूले न समाते होंगे कि चलो हमारा द्रव्य वढ़ा है, मगर शास्त्र कहता है और अनुभव उसका समर्थन करता है कि द्रव्य के साथ क्लेश वढता है। जब आप बैंक से ऋण रूप

मे रुपया लेते हैं तो उसे चुकाने की कितनी चिन्ता रहती है ? उतनी ही चिन्ता पुण्य रूपी बैंक के द्रव्य को चुकाने की क्यो नही करते ? समझ रखो, यह सम्पत्ति तुम्हारी नही है। इसे परोपकार के अर्थ अर्पण कर दो। याद रखो कि दूसरे की यह जोखिम मेरे पास धरोहर है। अगर इसे अपने पास रख छोड़ूंगा तो यह तो यही रह जायगी, लेकिन इसका वदला चुकाना मेरे लिए बहुत भारी पड जायगा।

श्रावक के तीन मनोरथो में से एक मनोरथ यह भी है कि—'लोभ की वृद्धि करने वाले और शरावी पैदा करने वाले परिग्रह का त्याग करके कव मैं आत्म-कल्याण में लगूंगा ?' अतएव परिग्रह के पाश को ढीला होने दो—उससे बाहर निकलने का प्रयत्न करो।

गाधीजी ने आगन्तुक पुरुप से कहा—'तुम इस धन के ट्रस्टी रहो। जब किसी कार्य में इसे लगाने की आवश्यकता होगी, तब उस काम में लगा दिया जायगा।'

(२)

एक महिला को उसके पिता से वहुत-सी सम्पत्ति मिली। उसका पति आचार भ्रष्ट है और उसने दूसरा विवाह भी कर लिया है। वह महिला उससे अलग रहती है। जैसे पूर्वोक्त पुरुष ने अपनी सम्पत्ति का त्याग किया, उसी प्रकार वह भी अपनी पैत्रिक सपत्ति का दान करना चाहती है। वह देश-सेवा के फलस्वरूप दो वार जेलयात्रा कर चुकी है और चर्खा आदि कात कर उसी की आमदनी से अपना निर्वाह करती है। वह भी एक वार गाधीजी के

पास आई और अपनी सम्पत्ति के दान के विषय में गाधी जी से निवेदन किया। गाधीजी ने उससे भी वही बात कही कि उस सम्पत्ति को तुम अपनी न समझ कर अपने को उसका ट्रस्टी मानो और उसे सम्भालो।

मित्रो! अगर आप लोग भी अपनी सम्पत्ति से पाप न करके, उसके ट्रस्टी भर बने रहे तो क्या उस सम्पत्ति को कुछ दाग लग जायगा? हां, उस अवस्था मे अपने भोग-विलास में उसका दुरुपयोग न कर सकोगे। लेकिन बहुत लोगो की तो ट्रस्टी बनने की भावना ही नही होती। क्या श्रावक की जिन्दगी ऐसी होती है कि वह धन के कीचड़ में फंसा रहे और उससे अपनी आत्मा को मलिन बना डाले, उसे परोपकार मे न लगावे? क्या श्रावक को धर्म पर विश्वास नही है? बैंक पर विश्वास करके उसमे लाखो रुपया जमा करा देने वालो को धर्म रूपी बैंक पर क्या विश्वास नही है?

७० : समझदारी

भक्त तुकाराम का कहना है कि निन्दक का घर मेरे समीप ही हो तो अच्छा है। वह जब–तब मेरी निन्दा करेगा और उसके द्वारा की हुई निन्दा से मुझे बहुत कुछ जानने को मिलेगा। इससे मेरी अवनति रुकेगी और उन्नति होगी।

मेरी आत्मा की अशुद्धि हटेगी और शुद्धि की वृद्धि होगी ।

किसी कवि ने राजा से कहा—'आप के शत्रु चिरंजीव हो ।' यह विचित्र आशीर्वाद सुनकर राजा नाराज हो गया । दूसरे सुनने वालों को भी इस आशीर्वाद से बुरा लगा । मगर उनमें एक पकी हुई बुद्धि का समझदार आदमी था । उसने राजा से कहा—आप यह आशीर्वाद सुनकर नाराज क्यों होते है ? आपको तो प्रसन्न होना चाहिए ।

राजा झुंझलाकर कहने लगा—यह तो शत्रुओं के लिए आशीर्वाद दे रहा है ! तब उस समझदार आदमी ने कहा, ऐसा आशीर्वाद देकर कवि ने आपका हित ही चाहा है । जब आपके शत्र जीवित रहेगे तो आप में बल, बुद्धि, पराक्रम और सावधानी जागृत रहेगी । आप सावधानी रखने के कारण ही राजा हैं । राजा को सदा सावधान रहना चाहिए । सावधानी तभी रह सकती है, जब शत्रु का भय हो । शत्रु के होने पर ही होशियारी आती है । इस प्रकार कवि ने आपको दुराशीष नही वरन् शुभाशीष ही दिया है । कवि ने सूचित किया है कि आप आलसी और भोग के कीडे मत बन जाना किन्तु बलवान् और सावधान रहना । इसमे आप के नाराज होने योग्य कोई बात नही ।



७१ : अदृश्य शक्ति

एक मजदूर था। मजदूरो की स्थिति बड़ी बेढंगी होती है। अगर वह किसी दिन मजदूरी न करे तो उसे भूखा रहना पडता है। खास कर वर्षा ऋतु मे तो मजदूरो की हालत और भी खराब हो जाती है। इस ऋतु में इन्हे बराबर काम नही मिलता। एक दिन जोरो की वर्षा हुई और इस कारण उस मजदूर को कोई काम नही मिला। वह इसी चिन्ता में बैठा था कि कल क्या होगा ? इतने मे एक सेठ उसके घर आया। उसने कहा—यह दो हजार की थैली है। अगर अमुक गाव मे, अमुक के घर पहुचा आओ तो आठ आना मजदूरी दी जायगी। मजदूर ने थैली ले ली और नियत जगह पहुचाना स्वीकार कर लिया।

उसी मजदूर के घर के पास एक मकरानी पठान रहता था। उसने सोचा—यह रुपयो की थैली लेकर पर-गाव जा रहा है। आज लूटने का अच्छा अवसर मिला है। रास्ते मे मजदूर के प्राण लेकर रुपया लूट लेना कोई कठिन बात नही है। यह सोचकर पठान ने कहा—मुझे भी किसी काम से उस गाव जाना है।

मजदूर ने कहा—चलो, एक से दो भले। अच्छा हुआ कि तुम्हारा साथ मिल गया।

पठान ने अपनी बन्दूक ले ली। उसने सोचा—इसी बदूक से मजदूर का काम तमाम कर दूंगा और उससे रुपया ले लूंगा। बेचारे भोले मजदूर को पठान की बदनियत का पता नही था। दोनो रवाना हुए। जब वे रास्ते मे जा रहे थे तो अचानक घन-घोर घटा छा गई और मूसलाधार पानी बरसने लगा। दोनो के कपडे पानी में भीग गए। दोनो एक सघन के पेड के नीचे जा खडे हुए। वर्षा होते देख मजदूर कहने लगा—लोग परमात्मा-परमात्मा चिल्लाते हैं परमात्मा है कहा ? अगर सचमुच परमात्मा होता तो हम जैसे गरीबो के ऊपर दया न करता ? देखो न, मेरे सारे कपडे पानी से तरबतर हो गए हैं और दूसरे कपडे मेरे पास है नही।

मजदूर की बात सुनकर पठान ने कहा—तुम यही समझ लो कि खुदा ने तुम्हारे ऊपर आज बडी मेहरबानी की है।

मजदूर—पानी बरसने मे मेरे ऊपर खुदा की क्या मेहरबानी हुई ?

पठान—देख, यह बन्दूक मैं इसलिये लाया था कि रास्ते मे तुम्हे इससे ठिकाने लगा दूंगा और तुम्हारे पास जो रुपये हैं, छीन लूंगा। मगर कुदरत को तुम्हारी मौत मजूर नही थी। मूसलाधार पानी बरसा और बन्दूक मे डाला बारूद गीला हो गया। अब यह बन्दूक बेकार है। इस प्रकार तू कुदरत की मेहर से ही आज बच सका है। पानी न बरसा होता तो आज तुम इस बन्दूक के शिकार हो गए होते और तुम्हारे पास के रुपये मेरे कब्जे मे होते।

तुम चाहो तो मुझसे बदला ले सकते हो। मगर सच्ची बात मैंने तुम्हे बता दी ।

मजदूर, पठान की बात सुनकर प्रसन्न हुआ। उसे ऐसा लगा मानो उसने नया जीवन पा लिया हो। वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए परमात्मा को धन्यवाद देने लगा। वह सोचने लगा—"मैं बाहर ही बाहर देख रहा था, पर कौन जानता है कि भीतर ही भीतर कुदरत की करामात कैसी है ? दरअसल दुःख का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही मजदूर वर्षा और परमात्मा को कोस रहा था ।

७२ : दूसरा विवाह

साधारण लोग अपने विषय में जो बात सोचते है, वही दूसरो के विषय मे नही सोचते। इसी कारण घोर अन्याय हो जाता है। आज पुरुषो मे यह पद्धति प्रचलित हो गई है कि वे अपना स्वार्थ देखते हैं। उन्हे लेश-मात्र भी यह विचार नही आता कि जो काम स्वय उन्हे पसन्द नही है, वह स्त्रियो को कैसे पसन्द आता होगा! इस विषय में गुलिश्ता मे एक कथा कही गई है। उसमें कहा है—

एक अमीर की स्त्री मर गई। अमीर के मित्रो ने उससे कहा—तुम्हारे पास अखूट धन-सम्पत्ति है। तुम दूसरा विवाह कर लो ।

अमीर ने कहा—मुझे बूढी स्त्री पसन्द नही है ।

मित्र—यह कौन कहता है कि तुम बुढिया के साथ विवाह करो । किसी नवयुवती के साथ शादी कर लो । तुम्हे किस चीज की कमी है ?

अमीर—तुम मेरे कहने का मतलब नही समझे । मेरे कहने का आशय यह है, जब मुझे बूढी स्त्री पसन्द नही है तो नवयुवती स्त्री को मुझ जैसा बूढा क्यो पसन्द आने लगा ? मैं अपना ही मतलब समझू और दूसरो के हिताहित का विचार न करू, यह किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ?

क्या आपको अमीर की बात युक्तिसगत जान पडती है ? अगर वास्तव में आप अमीर के कथन को सत्य और न्यायसंगत समझते हैं तो आपको विवाह सम्बन्धी अन्याय-पूर्ण कार्यो मे कदापि भाग नही लेना चाहिए । जहा किसी वृद्ध का तरुणी के साथ विवाह होता हो तो वहा आपको सम्मिलित नही होना चाहिए । वृद्ध-विवाह मे भाग लेने से तुम पाप के भागी हो और उसमे अपना सहयोग न देकर अपने आपको पाप से बचा सकते हो ।

७३ : चार ब्राह्मण

अगर सब जीवो को मित्र बनाने से काम नही चलेगा

तो क्या सब को शत्रु मानने से ससार का काम ठीक चलेगा ? अगर आपका यह विचार हो कि सबको शत्रु बनाने से ही ठीक काम चल सकता है तो आप भी सबके शत्रु माने जायेगे और इस दशा मे ससार मे एक क्षण का जीवन भी कठिन हो जाएगा। सब को मित्र बनाने से क्या फल होता है और शत्रु बनाने का परिणाम क्या निकलता है, इसके लिए एक उदाहरण लीजिए—

किसी दातार ने चार ब्राह्मणो को एक गाय दी। चारो भाई-भाई थे, मगर अलग-अलग हो गये थे। उनके चूल्हे अलग-अलग जलते थे और दरवाजे भी अलग-अलग हो गये थे। दान मे मिली हुई गाय पहले बडे भाई के यहां लाई गई। उसने सोचा—'गाय को आज मैं खिलाऊगा तो कल उसका दूध होगा। वह दूध मेरे किस काम का ? कल वह दूसरे के यहा चली जायगी और वही कल दूध दुहेगा। ऐसा सोचकर उसने दूध तो दुह लिया, मगर खाने को नही दिया। दूसरे दिन दूसरा भाई गाय अपने घर ले गया। उसके मन मे भी यही विचार आया—कल यह दूसरे घर चली जायगी, फिर आज खिलाने से मुझे क्या लाभ है? कल का दूध तो मुझे मिलना नही। अतएव इसके स्तनो का दूध ले लू। कल वह आप खिलाएगा। ऐसा सोचकर उसने भी दूध दुह लिया और खाने को नही दिया। शेष दो भाइयो के घर भी यही हुआ। 'भूख के मारे गाय की हड्डिया निकल आई। चार ही रोज मे गाय का काया-कल्प हो गया। उसकी दुर्दशा देखकर लोग कहने लगे—यह ब्राह्मण है या कसाई ! इन्हे गाय की रक्षा करते हुए दूध लेना था, मगर यह तो उसका खून पीने पर उतारू हो गये हैं।

इसी प्रकार किसी दूसरे दाता ने किन्ही चार भाइयों को गाय दी । उन्होने सोचा—'दाता ने उदारतापूर्वक कृपा करके हमे गाय दी है तो हम उसे माता के समान मानकर उसकी रक्षा करेंगे । उसे किसी प्रकार का कष्ट न देगे ।' इस प्रकार विचार कर उन्होने गाय को खिलाया-पिलाया । उन्हे दूध भी मिला और गाय की रक्षा भी हुई ।

७४ : छोटा और बड़ा

एक अमीर अपने बाएं हाथ की छोटी अगुलि में अगूठी पहने था । किसी गरीब ने उसके पास आकर पूछा—'दाहिना हाथ बडा होता है या बाया ?' अमीर ने उत्तर दिया—'जो हाथ ज्यादा काम करता है, इस कारण वही बडा माना जाता है ।' अब गरीब ने कहा—तो आपने अगूठी बाए हाथ में क्यो पहन रखी है ? दाहिने हाथ को क्यो न पहनाई ? अमीर बोला—मैंने पहले ही कहा कि जो ज्यादा काम करे, वही बडा है । जो छोटे से काम कराता है, वह बडा नही है । मैंने बाए हाथ मे अगूठी पहन रखी है, इससे दाहिने हाथ का बडप्पन आप ही प्रकट हो जाता है । छोटे को देना ही तो बडप्पन है । बडप्पन और क्या है ? मैंने दुनियाँ को यही सीख देने के लिए बाए हाथ में अगूठी पहनी है । इस से यह जाहिर हो जाता है कि छोटे को शृंगार करादो, जिससे बडे के बडप्पन को धक्का न लगे ।

गरीब ने फिर अमीर से पूछा—अच्छा, यह अगूठी बडी उगली को न पहना कर सब से छोटी को किसलिए पहनाई है ?

अमीर ने कहा—दाहिना हाथ बडा और बाया हाथ छोटा है, यह बात तो मै बता चुका हू, लेकिन यह और जान लो कि इस हाथ मे यह उगलो सब से छोटी है। सबसे छोटी होने के कारण ही इसे अंगूठी पहना रखी है। छोटे की सार-सम्भाल करने वाला ही बडा कहलाता है।

जो बडा कहलाने वाला पुरुप इस बात का ध्यान रखता है, वह नीचे नही गिरता, किन्तु चढता ही जाता है। यद्यपि बडप्पन और छुटपन सापेक्ष हैं, तथापि छोटो की रक्षा करने वालो का बडप्पन बढता ही है, घटता नही।

अमीर की बात सुनकर गरीब ने कहा—'आपके विचार बडे उत्तम हैं, इसी कारण आप बडे हैं। जो मनुष्य अपने शरीर के सम्बन्ध में ऐसा विचार रखता है, वह छोटो को क्यो नही बढाएगा ?'

७५ : सत्यनिष्ठा

मनुष्यों को जब तक अनुभव नही हो जाता, तब तक सत्य का महत्त्व उसकी समझ में नही आता। जब उसके सिर

पर कोई ऐसी आपत्ति आ पडती है, जो असत्य का आश्रय लेने से उत्पन्न हुई हो तो तत्काल ही वह समझ जाता है कि सत्य का क्या महत्त्व है। इसके लिए प्राचीन कथा का उदाहरण दिया जाता है—

एक मनुष्य ने, अपने पुत्र को नाना प्रकार की शिक्षाए देने का प्रयत्न किया, अनेक प्रकार से उसे समझाने की चेष्टा की, किन्तु उसके दिमाग मे एक भी न जची और वह कुसगति छोडने को तैयार न हुआ। अन्तत कुसगति का जो फल हो सकता है, वही हुआ। धीरे-धीरे वह चोरी करने लगा। पिता ने अनेक प्रयत्न किये, किन्तु सब निष्फल। वह लडका न सुधर सका और दिन-दिन चोर-कर्म मे नैपुण्य प्राप्त करने लगा। पिता से तिरस्कृत होकर भी, उसने अपना काम बन्द न किया और एक दिन राजा के भण्डार पर छापा मारा।

राजा की निपुणता से चोरी का पता लग गया। चोर भी पकडा गया। पकड लिए जाने पर उस लडके ने यह जाल रचा कि जिस दिन राज-भण्डार मे चोरी हुई, उस दिन मैं इस नगर मे था ही नही। इस बात को उसने अपने मित्रो की गवाही दिला कर प्रमाणित कर दिया। चालाकी पूरी चली, यह देखकर राजा दग रह गया। उस ने अपने मन में सोचा कि यद्यपि चोरी इसी ने की है, तथापि जब तक इसकी चोरी नियमानुसार प्रमाणित न हो जाय, तब तक इसे चोर कैसे ठहराया जा सकता है? इतने ही में राजा को युक्ति याद आई। उस लडके का पिता सत्य-भाषण के लिए प्रख्यात था। राजा ने उसी की साक्षी

पर मुकदमे का निर्णय छोड दिया ।

लडके ने जब यह जाना कि मेरे पिता की साक्षी पर ही मेरा भाग्य निर्भर है तो वह दौडा हुआ अपने पिता के पास गया । वहा जाकर उसने पिता के पैरो पर गिरकर प्रार्थना की यद्यपि चोरी मैंने ही की है, तथापि यदि आप राजा के सम्मुख यह कह देंगे कि उस दिन मेरा लडका नगर मे नही था तो मैं बच जाऊंगा ।

लडके ने यद्यपि उक्त प्रार्थना नम्रता-पूर्वक की, किन्तु वह श्रावक ऐसा न था । उसे सत्य की अपेक्षा अपना अन्यायी पुत्र कदापि प्रिय नही हो सकता था । वह एक विद्वान् के निम्न कथन का कट्टर समर्थक था कि—

आत्मार्थे वा परार्थे वा, पुत्रार्थे वापि मानवा ।
अनृत ये न भाषन्ते, ते बुधा स्वर्गगामिनः ।।

'जो अपने या पराये मतलब के लिए या अपने पुत्र के लिये भी असत्य नही बोलते, वे ही बुद्धिमान देवलोक को जाते हैं ।'

पिता ने उत्तर दिया—यद्यपि पिता होने के कारण तेरी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है, लेकिन 'सत्य' मेरा सर्वस्व है । सत्य ही मेरा परम मित्र है, सत्य से ही मेरी रक्षा होती है, उस परम प्रिय सत्य को छोड़ कर, मैं तेरे अन्याय का समर्थन करने के लिए झूठ बोलूं, यह कदापि सम्भव नही है । यदि सत्य से तू बचता हो, तो मैं सब कुछ कर सकता हूं ।

अन्यायी मनुष्य में क्रोध वहुत होता है। पिता का यह उत्तर सुनकर, इस लडके का क्रोध उमड़ पडा। उसने कहा—तुम मेरे बाप क्यो हुए ? पुत्र पर दया नही आती और उसकी जान लिवाने को तैयार हो ! क्या तुम ही अनोखे बाप हो, या दुनिया में और भी किसी के बाप है ? अच्छी सत्य की पूंछ पकड रखी है ! लड़का चाहे बचे या मर जाय, किन्तु आप अपने सत्य को ही चाटा करेंगे !

पिता—पुत्र ! तुझ पर मेरी अनन्त दया है लेकिन तेरे सिर पर इस समय क्रोध का भूत सवार है। इसी से मेरा अच्छा स्वरूप भी तुझे उल्टा दीख रहा है। ऐसा न होता तो तू स्वय समझता कि मैं तुझे बचाने के लिए असत्य भाषण कर दूं तो मेरा 'सत्य-व्रत' भग हो जायगा।

पुत्र—तुम्ही मेरी जान ले रहे हो।

पिता—मैं तेरी जान नही ले रहा हू, लेकिन तेरा पाप तेरी जान ले रहा है। मैं तो तेरी रक्षा ही चाहता हू। इसलिए मैं तुझे बचपन से ही बुरे कर्म से बचने का उपदेश देता रहा। लेकिन तू मेरी शिक्षा की उपेक्षा करता रहा। अब भी मैं तुझे यही उपदेश देता हू कि सत्य की शरण जा, सत्य ही तेरी रक्षा करेगा। यदि असत्य से प्राण बच भी गये, तब भी मृतक के ही समान है और सत्य मे प्राण गये, तब भी जीवन से श्रेष्ठ है।

निश्चित समय पर राजा ने श्रावक को बुलाया और गवाह के कठघरे में खडा कर के पूछा—कहिये सेठजी, जिस दिन राज्य-भण्डार मे चोरी हुई, उस दिन क्या तुम्हारा लड़का यहा नही था और उसने चोरी नही की है ?

सेठ—उस दिन वह नगर मे ही था और चोरी उसी ने की है।

धन्य है इस श्रावक को, जिसने अपने पुत्र के लिये भी झूठ बोलना उचित न समझा ! यदि यह चाहता तो झूठ बोलकर अपने लडके को निरपराध सिद्ध कर सकता था, लेकिन उसने अपने लडके से भी सत्य को कही विशेष उच्च समझा। यह श्रावक तो अपने लडके के लिए भी झूठ नही बोला, लेकिन आज के लोग कौडी–कौडी के लिए झूठ बोलने मे नही हिचकिचाते। इतना ही नही बल्कि अकारण ही हसी–मजाक और अपनी या दूसरे की प्रशसा तथा निन्दा के लिए भी, झूठ को ही महत्त्व देते है। कहा तो यह श्रावक जिसने प्राण–प्रिय सन्तान को भी सत्य के आगे तुच्छ समझा और कहा आज के लोग, जो सत्य को कौडियो से भी तुच्छ समझते है। अस्तु।

श्रावक चाहता तो झूठ बोल सकता था, लेकिन वह इस बात को जानता था कि पुत्र की रक्षा वास्तव मे सत्य-वादी ही कर सकता है, मिथ्यावादी नही।

सेठ का उत्तर सुनकर, राजा धन्यवाद देता हुआ सेठ से कहने लगा—'तुम्हारे जैसे सत्यवादी सेठ मेरे नगर में है, यह जानकार मेरे आनन्द की सीमा नही रही। मेरे नगर मे जैसे चोर हैं, वैसे ही सर्वथा सत्य बोलने वाले मनुष्य भी मौजूद है, यह अति आनन्द की वात है। मैं तुम पर प्रसन्न हू। तुम इच्छानुसार याचना कर सकते हो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने की प्राणप्रण से चेष्टा करूगा।'

सेठ प्रतीक्षा कर रहा था कि देखे लडके को उसके अन्याय का क्या दण्ड मिलता है ? किन्तु राजा के मुख से यह सान्त्वना-पूर्ण वचन सुनकर वह एकान्त मे जा बैठा और अपने लडके को बुलाकर उससे वातचीत करने लगा ।

पिता—पुत्र, तेरे ऊपर चोरी का अपराध प्रमाणित हो गया है । अब तुझे जीवित रहने की इच्छा है या मरने की ? तू मुझे कहता था कि झूठ बोलकर बचाओ, किन्तु अब देख कि सत्य बोल कर भी मैं तुझे बचा सकता हू । धर्म रहे, तो जीवित रहना उत्तम है किन्तु यदि धर्म जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाय तो धर्म जाने के पूर्व मृत्यु ही श्रेष्ठ है । यदि तुझे जीवित रहने की इच्छा हो तो पाप-कर्मो को छोडकर सत्य मार्ग-ग्रहण कर । यदि तू मेरे धर्म का अधिकारी बनना चाहे, तो मैं राजा से तुझे छोड देने की प्रार्थना करू । इसके पश्चात् यदि मैं तेरा आचरण अच्छा देखू गा, तो तुझे अपना उत्तराधिकारी बनाऊंगा, अन्यथा नही ।

पुत्र—आपने पहले भी मुझे यही उपदेश दिया था किन्तु मैं बराबर कुमार्ग पर चलता रहा । यदि अब मैं जीवित बच जाऊ गा तो सदैव अच्छा आचरण रखू गा । पिताजी ! थोड़ी देर पहले आप मुझे पिशाच के समान मालूम होते थे, किन्तु अब आपके वचन सुनकर मेरी दृष्टि ऐसी स्वच्छ हो गई है कि आप मुझे ईश्वर के समान पवित्र मालूम होते हैं । जहा सत्य है, वही ईश्वर है । यह बात मैं आज समझ सका । आप धन्य हैं, जो अपने सत्य-व्रत के सम्मुख पुत्रप्रेम को भी हेय समझते है । मैं आपको प्रणाम

करता हूं और प्रतिज्ञा करता हूं कि भविष्य मे मैं सत्य का पालन करूगा । यदि मैं अपने इस व्रत का ठीक तरह से पालन न कर सकूंगा तो प्राण त्याग दूंगा । अब आपकी इच्छा पर निर्भर है—चाहे जिलावे या मारे ।

हृदय की साक्षी हृदय करता है । जब सामने वाले का हृदय स्वच्छ होगा तो तुम्हारा भी हृदय स्वच्छ ही रहेगा ।

लडके की स्वच्छ हृदय से कही हुई बात सुनकर सेठ राजा के पास गया और प्रार्थना की मेरा लडका भविष्य में सत्य-मार्ग पर चलने का सच्चे हृदय से प्रण करता है, अत मैं आप से यही चाहता हू कि आप उसे छोड़ दे । मुझे और किसी चीज की आवश्यकता नही है ।

राजा ने कहा—हम अपराधी को इसलिए दण्ड देते है कि वह भविष्य मे अपराध न करे । किन्तु यदि कोई अपराधी, सच्चे दिल से अपने अपराध पर पश्चात्त कर ले, तो हमे उसके छोड देने मे कोई आपत्ति नही हो सकती । मैं तुम्हारे विश्वास दिलाने पर इसे छोड़ता हूं और आशा करता हू कि यह अब तुम्हारे आदर्श से पवित्र बन जायगा ।

पहले के राजा लोग कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाने के लिए ही अपराधी को दण्ड दिया करते थे, आजकल की तरह जेलोमेठूंसकर केवल बदियो की संख्या वढाना उन्हे अभीष्ट नही था । वे राज्य में शान्ति और प्रजा को सुखी बनाने के ही इच्छुक रहा करते थे । यदि अपराधी सच्चे हृदय से, अपने अपराध का पश्चात्ताप करके, भविष्य मे फिर अपराध न करने की

प्रतिज्ञा करता तो उसे क्षमा कर दिया जाता था। ऐसी ही उदारता का प्रभाव, मनुष्य के मन पर पडा करता है और भविष्य मे वह कुमार्ग पर चलने की इच्छा नही करता।

७६ : सत्य-आचरण

सत्यव्रत के पालने वाले मनुष्यो मे ऐसी शक्ति होती है कि उनके एक बार के सम्पर्क से ही, पतित से पतित व्यक्ति, अपना कल्याण-मार्ग देख लेता है। जिसने सत्यव्रत का एक देश भी ग्रहण कर लिया, वह भविष्य मे पूर्ण सत्यव्रती वन सकता है। सत्य के प्रभाव से, परिस्थितिया ही ऐसी उपस्थित होती है कि वे उस मनुष्य को उत्थान की ओर ले जाती हैं। इसके लिये जैन ग्रन्थो मे वर्णित जिनदास नाम के एक श्रावक की कथा इस प्रकार है—

राजगृह नगर मे एक बडे व्यापारी के यहा जिनदास नाम के श्रावक कार्यवश गये। जिनदास उस समय के बडे आदमियो मे गिने जाते थे। व्यापारी ने उन्हे अपना स्व-जातीय-अतिथि समझ कर भोजन का विशेष रूप से प्रवन्ध किया। जिनदास ने व्यापारी से कहा—आप मेरे लिए कष्ट न कीजिये। मेरा नियम है कि जिसकी आय सत्य द्वारा होती है, मैं उसी के यहा भोजन करता हू। मै विश्वास कर लेता हू कि जिसकी आय असत्य से होती है, उसके यहा

भोजन नही करता। यदि आप मुझे अपने यहा भोजन कराना चाहते है तो अपना आय-व्यय का लेखा मुझे बतलाइये। उससे यदि विश्वास हो गया कि आपकी आय सत्य से होती है तो मुझे भोजन करने मे किसी प्रकार की भी आना-कानी न होगी।

जिनदास श्रावक का व्यापारी से यह कहना कि—'मैं उस मनुष्य के यहा भोजन नही करता, जो असत्य से जीविकोपार्जन करता है' यथार्थ है। यह बात अनुभव सिद्ध है कि जो मनुष्य जैसा भोजन करता है, उसकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाया करती है। श्रीकृष्ण ने इसी सिद्धान्त को सामने रखकर दुर्योधन के यहा भोजन करने से इन्कार कर दिया था और विदुर के यहा जाकर साधारण भोजन किया था।

कई लोग कहते है कि सामायिक करते समय न मालूम क्यो हमारा चित्त स्थिर नही रहता, लेकिन ऐसा कहने वाले लोग, यह विचार नही करते कि अनीति से पैदा किया हुआ अन्न पेट में होने पर मन स्थिर कैसे रह सकता है! चित्त स्थिर तभी रहेगा, जब नीतिपूर्वक अर्जित अन्न पेट मे होगा तथा नीतिपूर्वक जीवन बिताने की भावना होगी।

जिनदास इस बात का अनुमान पहले ही कर लिया करते थे कि इसका भोजन कैसा है? इसलिये उन्होने व्यापारी से अपना आय-व्यय का लेखा बताने को कहा। व्यापारी ने उत्तर मे कहा कि आप तो स्वय नीतिज्ञ है, और भली-भाति जानते हैं कि अपनी आय का भेद दूसरे

को न बताया जाय । ऐसा होते हुए भी मुझे आपका आय-व्यय का लेखा बताने के लिये बाध्य करना, उचित कैसे कहा जा सकता है ?

जिनदास—आप अपना लेखा नही बताना चाहते है तो आपकी इच्छा । मैं अपने निश्चयानुसार बिना विश्वास किये भोजन करने मे असमर्थ हू ।

व्यापारी जिनदास के शब्दो को सुनकर विचारने लगा—इनकी प्रतिज्ञा तो ऐसी है और ऐसे सत्पुरुष को विना भोजन कराये घर से जाने देना भी अपने भाग्य को बुरा बनाना है । ऐसी अवस्था मे क्या करना चाहिए ? क्योकि अतिथि को निराश लौटाने के लिये कहा है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो, गृहात् प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृत दत्त्वा, पुण्यमादाय गच्छति ।।

अर्थात्—कोई अतिथि, निराश होकर घर से लौट जाये तो वह उस गृहस्थ की पुण्यवानी लेकर, अपना दुष्कृत्य उसे दे जाता है ।

इस प्रकार सोच-विचार कर व्यापारी ने जिनदास से कहा—आप लेखा देखकर क्या करेंगे, सच्ची बात मैं जबान से ही सुनाये देता हू । वास्तव मे तो मै रात को चोरी करके धन कमाता हू और दिन को व्यापार का ढोग रचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता हू ।

व्यापारी की बात सुनकर जिनदास ने कहा—ऐसी दशा मे मैं आपके यहा भोजन नही कर सकता ।

व्यापारी—यह आपका अन्याय है। दूसरो की अप्रतिष्ठा भी करना और फिर भोजन भी न करना, यह कैसे उचित है ?

जिनदास—यद्यपि मैंने आपकी कोई अप्रतिष्ठा तो नही की है, फिर भी यदि आप मेरी एक बात को स्वीकार कर ले तो मैं भोजन कर सकता हू।

व्यापारी के पूछने पर जिनदास ने कहा—आप चाहे अपने चोरी के कार्य को बन्द करे या न करें परन्तु सदा सत्य बोलने की प्रतिज्ञा करलें। यदि आपने यह प्रतिज्ञा धारण कर ली तो मैं भोजन कर लूगा।

व्यापारी के ऊपर, प्रतिभाशाली जिनदास के शब्दो का बहुत प्रभाव पड़ा। उसने जिनदास की बात स्वीकार करके असत्य न बोलने की प्रतिज्ञा करली। जिनदास भोजन करके बिदा हो गये।

सदा की भाति व्यापारी आधी रात के समय चोरी करने निकला। परन्तु आज राजा श्रेणिक और प्रधान अभय-कुमार प्रजा का सुख दु ख जानने के लिए नगर मे चक्कर लगा रहे थे।

आधी रात के समय अकेला जाते देख, अभयकुमार ने व्यापारी को रोक कर पूछा—कौन है ? व्यापारी इस प्रश्न को सुनकर भयभीत तो अवश्य हुआ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा याद आते ही, उसने निर्भय हो उत्तर दिया—चोर। व्यापारी का उत्तर सुनकर, राजा और प्रधान विचारने लगे, कही चोर भी अपने आपको चोर कहता है ? यह झूठा है।

उन्होने व्यापारी से प्रश्न किया, 'कहा जाता है ?' व्यापारी ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया, 'चोरी करने ।'

व्यापारी के इस उत्तर को सुनकर राजा और प्रधान अभयकुमार ने सोचा—यह कोई विक्षिप्त है। विनोद के लिए उन्होने फिर प्रश्न किया—'चोरी कहा करेगा ? व्यापारी ने उत्तर दिया—'राज के महल मे ।'

व्यापारी के इस उत्तर से राजा और अभयकुमार का अनुमान और भी पुष्ट हो गया कि वास्तव मे यह विक्षिप्त ही है। उन्होने व्यापारी को, अच्छा जाओ, कह कर जाने दिया। इस प्रकार चोर कहते हुए भी न पकडे जाने से, व्यापारी बडा ही प्रसन्न हुआ। वह जिनदास की प्रशसा करने लगा कि मैं अपने आपको चोर बतलाता जाता हू, परन्तु मुझे कोई पकडता नही है। यदि उस समय मैं भागता या झूठ बोलता तो अवश्य ही पकड लिया जाता, परन्तु सत्य बोलने से बच गया।

व्यापारी, इसी विचार–धारा मे मग्न राजमहल के पास जा पहुचा। योग ऐसा मिला कि व्यापारी जिस समय राजमहल को पहुचा, उस समय राजमहल के पहरेदार नीद मे झूम रहे थे। ऐसा समय पाकर व्यापारी वेधड़क महल मे जा घुसा और कोष से रत्नो के भरे हुए दो डिब्बे चुरा कर चलता बना।

लौटते समय व्यापारी को राजा और अभयकुमार फिर मिले। उनके प्रश्न करने पर, व्यापारी ने अपने आपको पुन चोर बताया। राजा और कुमार ने पहले

वाला ही विक्षिप्त समझ कर हसते हुए प्रश्न किया—'कहा चोरी की और क्या चुराया ? व्यापारी ने उत्तर दिया—राजमहल मे चोरी करके रत्नो के दो डिब्बे चुरा लाया हूं।' राजा ने व्यापारी को पहले ही विक्षिप्त समझ रखा था, इसलिए उसके इस उत्तर पर भी उन्हे कुछ सन्देह न हुआ और उसे जाने दिया ।

व्यापारी अपने घर की ओर चलता जाता था और हृदय में जिनदास को धन्यवाद देता जाता था कि उन्होने अच्छी प्रतिज्ञा कराई, जिससे मैं बच गया, अन्यथा मेरे बचने का कोई उपाय न था । अब मुझे भी उचित है कि कभी झूठ न बोल कर अपनी प्रतिज्ञा का दृढतापूर्वक पालन करू । इस प्रकार विचारता हुआ व्यापारी अपने घर आया ।

प्रात काल, कोषाध्यक्ष को कोष मे चोरी होने की खबर हुई । कोषाध्यक्ष, कोष को देखकर और यह जानकर कि चोरी मे रत्नो के दो ही डिब्बे गये है, सोचने लगा कि चोरी तो निश्चय ही हुई है, फिर ऐसे समय मे मै भी अपना स्वार्थ-साधन क्यो न कर लू ? राजा को तो मैं सूचना दूंगा तभी उन्हे मालूम होगा कि चोरी हुई है और चोरी में अमुक-अमुक वस्तु इतनी गई है ।

इस प्रकार विचार कर कोषाध्यक्ष ने कोष मे से रत्नो के आठ डिब्बे निकाल कर अपने घर रख लिये और राजा को सूचना दी कि कोष मे से रात को रत्नो से भरे हुए दस डिब्बे चोरी मे चले गये ।

इस सूचना को पाते ही राजा को रात की बात का

स्मरण हुआ। वह विचारने लगा कि रात को जिसने अपने आपको चोर बताया था, सम्भवत. वही रत्नो के डिब्बे ले गया है। लेकिन उसने तो रत्नो के दो ही डिब्बे चुरा कर लाने को कहा था, फिर दस डिब्बे कैसे चले गये? जान पडता है कि आठ डिब्बे बीच ही मे गायब हो गए है। इस तरह सोच–विचार कर राजा ने अभयकुमार को रात वाले चोर का पता लगाने की आज्ञा दी।

नगर मे घूमते-घूमते, प्रधान अभयकुमार उसी व्यापारी की दूकान पर पहुचा और उसके स्वर को पहचान कर अनुमान किया—रात को इसी ने अपने आपको चोर बतलाया था। अभयकुमार ने व्यापारी से पूछा—'क्या आपने रात को राजमहल मे चोरी की थी? यदि हा, तो क्या चुराया था और चोरी की वस्तु मुझे बतलाइये।' व्यापारी ने चोरी करना स्वीकार करके दोनो डिब्बे अभयकुमार के सामने रख दिये। वह सत्य का महत्त्व समझ चुका था, इसलिये उसे ऐसा करने में किंचित् भी हिचकिचाहट न हुई।

रत्नो के डिब्बो को देखकर विश्वास करने के लिए अभयकुमार ने व्यापारी से फिर प्रश्न किया कि क्या यही थे?

व्यापारी ने इस प्रश्न का उत्तर भी 'हा' कह कर दिया। कुमार ने डिब्बो सहित व्यापारी को साथ लेकर, राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा, कुमार की चातुरी पर प्रसन्न होकर कहने लगा कि इसने तो दो ही डिब्बे चुराये थे, जो मिल गये, शेष आठ डिब्बो का पता और लगाओ।

अभयकुमार ने अनुमान किया कि डिब्बों में कोषाध्यक्ष की ही चालाकी होगी। उसने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि चोरी गये हुए दस डिब्बो मे से दो डिब्बे तो मिल गये, शेष आठ डिब्बे कहा है? कोषाध्यक्ष घबरा उठा और कहने लगा कि चोरी हुई तब मै तो अपने घर था, ऐसी अवस्था मे मुझे यह क्या मालूम कि शेप डिब्बे कहा हैं?

अभयकुमार, कोपाध्यक्ष की घबराई हुई दशा को देख और उसका अस्थिर उत्तर सुनकर ताड गया कि आठ डिब्बो के जाने मे इसी की बेईमानी है। उसने कोषाध्यक्ष को भय दिखाते हुए कहा—सत्य कहो, अन्यथा बडी दुर्दशा को प्राप्त होओगे।

झूठ कहा तक चल सकता है? कोषाध्यक्ष के होठ भय के मारे चिपक से गये और वह कहने लगा आठ डिब्बे मैंने अपने घर मे रख दिये हैं। मैं अपने कर्त्तव्य और सत्य से च्युत हो गया, इसके लिये क्षमाप्रार्थी हू।

अभयकुमार ने कोषाध्यक्ष को भो आठ डिब्बो सहित राजा के सामने उपस्थित किया। कोषाध्यक्ष की धूर्तता और व्यापारी की सत्यपरायणता देख, राजा ने कोषाध्यक्ष को तो बन्दीगृह मे भेजा और व्यापारी को कोषाध्यक्ष नियत किया।

राजा ने व्यापारी को अपराधी होते हुए भी सत्य बोलने के कारण अपराध का कोई दण्ड न देकर, कोषाध्यक्ष नियत किया, इसका प्रभाव लोगो पर क्या पडा होगा, यह विचारणीय बात है। चोरी का अपराध तो व्यापारी और

कोषाध्यक्ष का लगभग समान ही था। लेकिन व्यापारी सत्य बोला था और कोषाध्यक्ष झूठ। झूठ के कारण ही, कोषाध्यक्ष अपने पद से हटाया जाकर जेल भेजा गया और व्यापारी को सत्य के कारण ही अपराध का दण्ड मिलने की जगह कोषाध्यक्ष पद प्राप्त हुआ। राजा के ऐसा करने से, लोगों के हृदय में सत्य के प्रति कितनी श्रद्धा और झूठ से कितनी घृणा हुई होगी, यह आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

७७ : अंतिम अवस्था

लोग बूढ़ा आदमी देखते हैं, पर क्या सब को अपनी स्थिति का विचार आता है? जवानी की मस्ती ऐसा विचार नहीं आने देती। यौवन की कोमल और मधुर प्रतीत होने वाली कल्पनाओं में यह कठोर और नीरस सत्य स्थान नहीं पाता। असत् के बाजार में सत् की कोई पूछ ही नहीं है। लेकिन अन्त में तो सत् ही सामने आता है।

एक जवान आदमी जवानी के नशे में अकड़ता जा रहा था। सामने की ओर एक बूढ़ा लकड़ी के सहारे आ रहा था। जवान आदमी की टक्कर से वह बूढ़ा गिर पड़ा। यद्यपि बूढ़े को गिराने का अपराध जवान का ही था, फिर भी वह बूढ़े पर नाराज होकर कहने लगा—'क्या जानते

नही हो कि यह सडक जवानो के चलने के लिए है। तुमने मेरे चलने मे बाधा पहुचाई है। क्या मुझे जानते नही ? आइन्दा ऐसी हरकत की तो हड्डिया चूर-चूर कर दी जाएगी।

बूढा दबने वाला नही था। उसने कहा—अकडते क्यों हो ? मैं तुम्हे ही न्ही, तुम्हारी बुनियाद को भी जानता हू।

जवान – मेरी बुनियाद को क्या जानते हो ?

बूढा—तुम्हारी बुनियाद दो बूंद पेशाब ही तो है। दो बूंद पेशाब से मास का लोथ बना, वह बढा और तब तुम बाहर आये। यह तो तुम्हारी बुनियाद है और उस पर भी इतना घमण्ड करने हो !

७८ : असलियत

किसी जगह बाजार के बीच मे एक पेड था। एक आदमी ने उस पेड को अपनी अकवार(बाथ) मे लपेट लिया और फिर चिल्लाना शुरु किया—अरे दौडो ! मुझे छुडाओ ? पेड ने मुझे पकड रखा है !

लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने कहा—मूर्ख कही के ! पेड ने तुझे पकड़ रखा है या तूने पेड़ को पकड़ रखा है ?